वर्णीजी और उनका दिव्य दान

श्री गणेशवर्णी अहिंसा प्रतिष्ठान
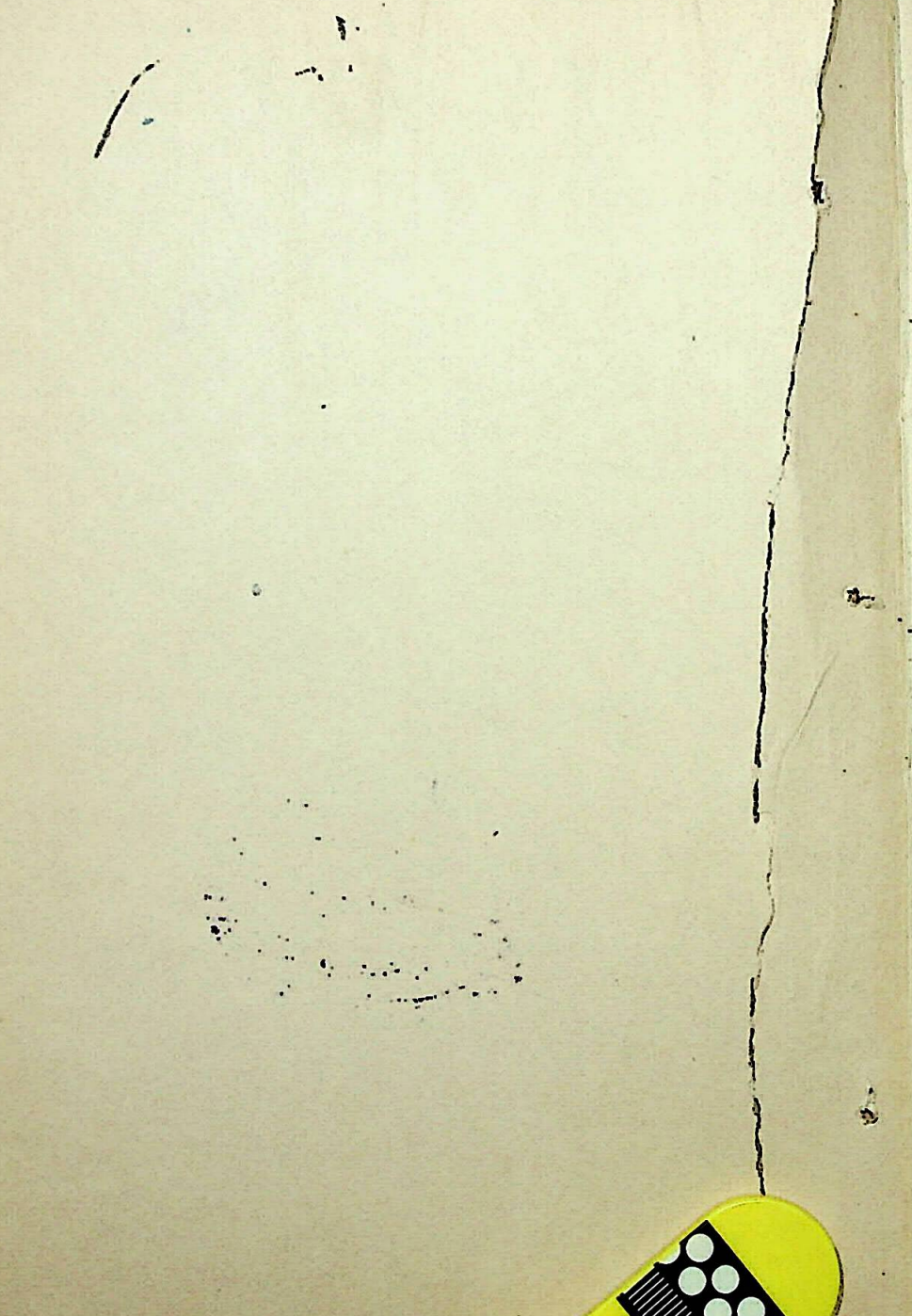
श्री पूज्य स्वामी जी के
चरणों में समर्पित
ईश्वर मठ अस्सी, वाराणसी को

द्वारा एक लघु शिष्य- जिनेन्द्र जैन, जबलपुर
स्याद्वाद जैन महाविद्यालय, वाराणसी

१-५-६७
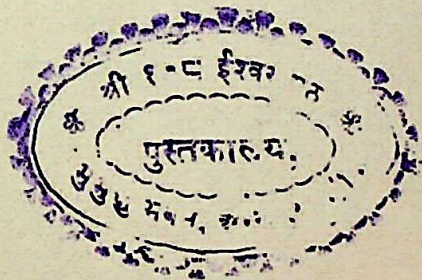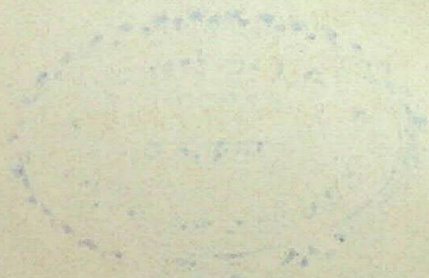
वर्णीजी
और
उनका दिव्य दान

(पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी का
संक्षिप्त परिचय तथा प्रवचन)
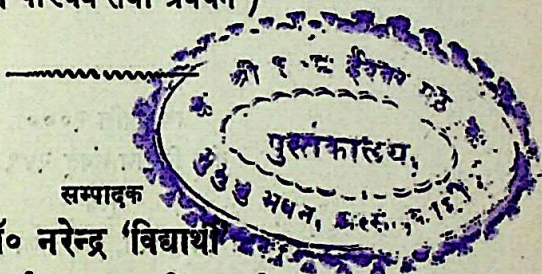
सम्पादक
डॉ० नरेन्द्र 'विद्यार्थी'
साहित्याचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०
तथा
सौ० रमादेवी
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम० ए०, बी० एड०

प्रकाशक
श्री गणेशवर्णी अहिंसा प्रतिष्ठान, दिल्ली

श्री गणेश ही सतत साधना--पथिक तुम्हारा नाम है,
अतल ज्ञान-गंगाके ओ भागीरथ ! तुम्हें प्रणाम है।

—नीरज

अपनी बात

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी न्यायाचार्य महाराज भारत के आध्यात्मिक महामना सन्त थे। उनके सम्वन्धमें जितना कहा जाय, जितना लिखा जाय; थोड़ा है। अपने अत्यन्त वयोवृद्ध जीवनमें भी वह परहितकातर करुण हृदय लिये अपने प्रवचनसे जन-कल्याण करते रहे हैं। यही उनका व्रत था, यही उनका नियम और यही उनका करणीय कार्य था। ऐसे परम साधक सन्तके जीवनसे लोग अधिकाधिक शिक्षा ग्रहण कर सकें यही सोचकर उनके द्वारा लिखित—'मेरी जीवन गाथा' नामक उनकी जीवनीके पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध—दोनों भागोंका संक्षिप्त रूप उनका जीवन-परिचय ('जीवन-यात्रा) जो १२०० पृष्ठोंकी दोनों भागकी सामग्री को पूज्य श्रीके शब्दोंमें ही संक्षिप्त करते करते २०८ पृष्ठोंमें लाया गया है। यही पुस्तकका प्रथम खण्ड—'वर्णीजी' है। इस प्रकरणकी विशेषता यह है कि (१) 'मेरी जीवन गाथा' में यत्र-तत्र बिखरी हुई घटनाओंको इसमें क्रमबद्ध कर दिया गया है, तथा (२) शीर्षक एवं उपशीर्षक प्रायः बदल कर रोचक रखे गये हैं।

यद्यपि पूज्य श्रीवर्णीजी अब हमारे वीच नहीं हैं इससे अब उनका प्रत्यक्ष प्रवचन सुन सकनेका सौभाग्य भी हमें प्राप्त नहीं है। परन्तु अब उनके प्रवचनोंकी जो निधि हमारे पास संगृहीत है, वही हमारी मार्गदर्शक मशाल या मंगल ज्योति है। हमारे लिए वही उनका दिव्यदान है। प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय खण्ड 'दिव्य दान' में 'सब जन हिताय, सब जन सुखाय' उसी-का संग्रहण और समर्पण है।

यह प्रकरण 'वर्णी वाणी' भाग १-२ से संकलित किया गया है जिसके लिए हम श्रीगणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला काशीके मन्त्री श्रीमान् पं० दरबारी-लालजी 'कोठिया' न्यायाचार्य, एम. ए. के आभारी हैं।

वर्णीजीका जीवन-परिचय तथा प्रवचन प्रकाशित कराकर घर-घर पहुँचानेकी उदारता के लिए श्रीगणेश वर्णी अहिंसा प्रतिष्ठान दरियागंज, दिल्ली के धर्मप्रेमी अनन्य वर्णी भक्त लाला फिरोजीलालजी जैनको अनेक धन्यवाद देते हैं।

श्री फागुल्लजीने पुस्तकको जिस सुन्दर रूपसे प्रकाशित किया उसके लिए उनको धन्यवाद।

आशा है पाठक पूज्य श्री वर्णीजीके आदर्श जीवन तथा कल्याणकारी प्रवचनोंसे सत्‌शिक्षा ग्रहणकर आत्मकल्याण करेंगे।

ईसरी (विहार,)
वर्णी-स्मारक उद्‌घाटन समारोह
१५ फरवरी १९६७

विनीत
'नरेन्द्र'
'रमा'

कहाँ क्या है ?

खण्ड १ — वर्णीजी

खण्ड २ ... दिव्य दान

मंगल प्रभात

सफलताके साधन

लाला फिरोजीलालजी तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती वस्सीदेवी

ला० फिरोजीलालजी और उनकी धर्मपत्नीका जीवन-परिचय

जीवन-झाँकी

लालाजीके प्रपितामह श्री लाला मथुरादासजी कदानी जिला रोहतकके रहनेवाले थे और लगभग १२५ वर्ष पूर्व गोहाना आकर गल्लेका व्यापार करने लगे थे। इनके दो पुत्र थे—ज्येष्ठ पुत्रका नाम लाला निहालचन्द्रजी था और द्वितीय पुत्रका नाम सुगनचन्द्रजी था। लाला सुगनचन्द्रजीके चार पुत्र थे—१ लाला सीतारामजी, २ लाला श्योचन्द्ररायजी, ३ लाला उग्रसेनजी और ४ लाला बालमुकुन्दजी। साथ ही एक कन्या भी हुई। कन्याका नाम कृष्णादेवी है, जिनका विवाह दिल्लीके सुप्रसिद्ध समाजसेवी लाला राजकृष्णजीके साथ हुआ है।

लाला सीतारामजी चारों भाइयोंमें सबसे बड़े थे। इनका विवाह स्वर्गीया श्रीमती मनोहरी देवीके साथ हुआ था। अपने पति लाला सीतारामजीका स्वर्गवास २४ वर्षकी स्वल्प आयुमें ही हो जानेके कारण इन्हें ही अपने दोनों पुत्रों लाला वसन्तलालजी और लाला फिरोजीलालजीका भरण-पोषण तथा देखभाल स्वयं करनी पड़ी। लाला वसन्तलालजी बड़े हैं जो अपने पिताजीके वियोगके समय तीन वर्षके थे और फिरोजीलालजी पिताजीके परलोकवासी होनेके २ माह बाद पैदा हुए थे। अतएव इन दोनों भाइयोंको पितृ-सुख न मिल सका और अपनी माता मनोहरी देवीकी छत्रछायामें ही उनका पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा हुई। लाला फिरोजीलालजीका जन्म वैसाख सुदी ५ वि० सं० १९६३ को हुआ था।

इन दोनों भाइयोंमें लाला वसन्तलालजीने गोहाना और रोहतकमें मेट्रिक तक शिक्षा प्राप्त कर प्रारम्भमें कपड़ेकी दुकान की। बादमें सन्

१९२५ में ये ब्यावर चले गये और वहाँ कोल कम्पनियोंमें १-२ वर्ष काम करके स्वयं कोलका व्यापार करने लगे। जबसे ये ब्यावर गये हैं तबसे वहींके निवासी बन गये हैं। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं जो सभी योग्य और सदाचारी हैं।

लाला फिरोजीलालजीकी शिक्षा गोहाना, रोहतक और दिल्लीमें हुई। इन्होंने सन् १९२४ में गवर्नमेंट हाईस्कूल दिल्लीसे मैट्रिक परीक्षा पास की। पिताजीके अभावमें सारा बोझ माताजीपर ही आ पड़नेके कारण इन्हें भी अपने बड़े भाईके समान बीचमें ही अपनी शिक्षा समाप्त कर आजीविका अर्जन करनेमें जुट जाना पड़ा। इनका विवाह सन् १९२४ में ही रेवाड़ी निवासी बाबू छाजूरामजी असिस्टेंट स्टेशन-मास्टरकी सुपुत्री श्री बस्सीदेवीके साथ सम्पन्न हुआ था।

लाला फिरोजीलालजी मैट्रिक परीक्षा पास करनेके बाद उसी वर्ष सुजानगढ़के जैन हाईस्कूलमें अंग्रेजीके अध्यापनका कार्य करने लगे। किन्तु वहांकी सर्विस इनकी रुचिके अनुकूल न होनेसे ३ माहमें ही उसे छोड़कर ये अपने घर चले आये। इसके बाद ये मथुरामें सेठ उदयसिंहजी ठेकेदार इमारतानके यहाँ सर्विस करने लगे। ये होनहार तो थे ही, इसलिए इन्हें इमारत कण्ट्राक्टरके कार्यका अनुभव प्राप्त करनेमें डेढ़ वर्षसे अधिक समय नहीं लगा। इनकी योग्यता, प्रामाणिकता और दक्षतासे प्रभावित होकर सेठ उदयसिंहजीने इन्हें अलीगढ़के बिजलीघरके बनानेका कार्यभार सौंपकर वहाँ भेज दिया। इस कार्यमें इन्होंने अपनी योग्यताका तो परिचय दिया ही। साथ ही इनके अन्य अनेक गुणोंसे प्रभावित होकर सेठजी दूसरे प्रकारके कार्योंका भार भी इन्हींपर डालने लगे। इन्होंने उनके यहाँ रहते हुए वाटर-सप्लाई और नल फिटिंग आदिके कार्योंमें भी दक्षता प्राप्त कर ली। इनका और सेठजीका यह मधुर सम्बन्ध सन् १९३५ तक चलता रहा। किन्तु इस वर्ष सेठजीकी इहलीला समाप्त हो जानेके कारण इन्होंने वहाँसे विश्राम ले लेना ही उचित समझा। इतना अवश्य है कि ये वहाँसे सहसा नहीं चले आये। किन्तु सेठजीके उत्तरा-

धिकारियोंको उनके कार्योंकी पूरी जानकारी करानेके बाद ही इन्होंने मथुरा छोड़ा।

मथुरा छोड़नेके बाद ये दिल्ली आये और यहाँपर श्रीमान् लाला राजकृष्णजीके साथ कोलोनाइजेशन लि० कम्पनीके डायरेक्टर बनकर जमीनकी खरीद-विक्रीका कार्य करने लगे। किन्तु कुछ ही दिनोंमें इनकी इस कार्यसे रुचि हट गई, इसीलिए अपने हिस्सेके शेयरज लाला राजकृष्णजीको सौंपकर ये सन् १९३८ से श्रीमान् लाला हरिश्चन्द्रजीके साथ लकड़ीका व्यापार करने लगे। इस कार्यको यद्यपि इन्होंने सन् १९५२ तक निभाया। परन्तु अन्तमें ये इससे भी विरक्त हो गये और उस समयसे ये अपना स्वतन्त्र व्यवसाय कर रहे हैं।

पूज्य वर्णीजीसे परिचय और सम्बन्ध :

एक ओर जहाँ ये अपनी भौतिक उन्नतिमें लगे हुए थे वहाँ दूसरी ओर इन्होंने अपने धार्मिक जीवनको नहीं भुलाया। विशेषतः अपनी माताके धार्मिक जीवनकी इनके जीवनपर गहरी छाप पड़ी, जिससे प्रभावित होकर ये निरन्तर योग्य गुरुकी तलासमें रहते थे। तीर्थयात्रा और दूसरे धार्मिक कार्योंमें तो ये रुचि रखते ही थे। साथ ही जहाँ-कहीं इन्हें धार्मिक प्रवचन सुननेका अवसर मिलता था, उससे भी लाभ उठाते थे। ऐसा ही एक अवसर इन्हें सन् १९३३-३४ में आया। ये सम्मेदशिखरजीको यात्राके लिए मधुवनमें ठहरे हुए थे और उसी समय पूज्य वर्णीजी भी वहाँ पधारे हुए थे। पूज्य वर्णीजीके पधारनेसे मधुवनकी चहल-पहल बढ़ गई। आगत धर्मबन्धुओंको उनके प्रवचनोंका लाभ मिलने लगा। उनमें ये भी सम्मिलित हुए। यद्यपि उस समय ये उनके प्रवचनसे विशेष लाभ न उठा सके। फिर भी उनके प्रवचनोंसे इनके जीवनपर ऐसी गहरी छाप पड़ी, जिससे ये सदाके लिए उनके अनुयायी बन गये। इसके बाद ये पूज्य वर्णीजीसे विशेष सम्पर्क स्थापित करनेमें तब सफल हुए जब पूज्य वर्णीजीने अपना दिल्लीमें चतुर्मास किया। तबसे लेकर ये

अवसर मिलते ही वर्णीजीके सद्भावमें उनकी सेवामें उपस्थित होकर अपने आध्यात्मिक जीवनके संशोधनमें उत्साह दिखलाते रहे और उनके स्वर्गस्थ हो जानेके बाद भी उनके प्रति आपकी भक्ति पूर्ववत बनी हुई हैं। इन्होंने उनके उपदेशोंसे प्रभावित होकर अबतक जो लोकोपयोगी धार्मिक कार्य किये हैं उनका विवरण आगे दिया जाता है।

लालाजी द्वारा किये गये सेवा-कार्यों का विवरण :

१. सन् १९५६ में दिल्लीमें श्रीगणेश वर्णी अहिंसा प्रतिष्ठानकी स्थापना। लालाजीने इस संस्थाका कार्य सुचारु रूपसे चलता रहे, इसके लिए ७५०००) पचहत्तर हजार रुपयाकी लागतका अपना दरियागंज २१, दिल्लीमें स्थित एक तिमंजला मकान उसके लिए अर्पित कर दिया है। जिसकी मासिक आमदनी ६५०) के लगभग है। लालाजीने इसका एक ट्रष्ट भी बना दिया है। ट्रष्टियोंके नाम ये हैं—१ लाला फिरोजीलालजी, २ लाला वसन्तलालजी, ३ बाबू ज्ञानचन्द्रजी, ४ श्रीमती बस्सीदेवीजी और ५ श्रीमती सुशीलादेवीजी।

२. सन् १९५७ में गोहानामें अपनी पूज्य माता मनोहरी देवीकी स्मृतिमें जनता अस्पतालकी स्थापना। इसके लिए लालाजीने जमीन खरीद कर ३३०००) तैंतीस हजारकी लागतका अस्पतालके योग्य एक सुन्दर भवन भी बनवा दिया हैं।

३. २१ मार्च सन् १९५९ में जनता अस्पतालका कार्य सुचारु रूपसे चलता रहे, इसके लिए २६०००) छब्बीस हजार रुपया प्रदानकर उसका एक ट्रस्ट भी स्थापित कर दिया है। ट्रष्टियोंमें श्रीगणेश वर्णी अहिंसा प्रतिष्ठानके ट्रष्टियोंके नाम तो हैं ही। उनके सिवा ये नाम और हैं—बाबू मोहनलालजी ब्यावर, बाबू सोहनलालजी ब्यावर, लाला शिखरचन्द्रजी गोहाना, लाला हुकुमचन्द्रजी गोहाना, लाला पद्मचन्द्रजी गोहाना और लाला नेमीचन्द्रजी गोहाना।

४. इटारसी जैन मन्दिरमें वेदी-निर्माणके लिए २०००) दो हजार रुपया प्रदान किये। यह दान जनवरी सन् ५९ में दिया था।

५. स्याद्वाद-महाविद्यालयके ध्रुव फण्डमें १०००) एक हजार और उसके धाटका निर्माण करनेके लिए १०००) एक हजार रुपये दिये। (ध्रुव फण्डके रुपया ट्रष्टमें जमा हैं)

६. श्रीगणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसीके लिए ५००) पाँच सौ रुपये। (ट्रष्टमें जमा)

७. स्वर्णीया धर्मपत्नी श्रीमती वस्सी देवीकी स्मृतिमें 'वस्सीदेवी जैन चेरिटेवल अस्पताल'की अभी हालमें ४ जनवरी १९६७ को स्थापना की ।

पूज्य वर्णीजीका प्रभाव :

पूज्य वर्णीजीमें इनकी अटूट श्रद्धा है। सन् १९४९ में इनके जीवनमें एक ऐसा अवसर आया, जब ये नाथ बैंक लि० के फेल हो जानेपर अपनी संचित पूंजी लगभग सत्तर हजार रुपया गँवा बैठे थे, फिर भी इनके मनमें रंचमात्र भी खेद नहीं हुआ। इस सम्बन्धमें लालाजी अक्सर कहा करते हैं कि यह सब पूज्य वर्णीजीके उपदेशों और उनके सम्पर्कका प्रभाव है कि मेरी पूंजी चले जानेपर भी मुझे रंचमात्र भी दुःख नहीं हुआ। यदि उनके सम्पर्कमें आनेका अवसर न मिलता तो न जाने उस समय मेरा क्या हाल हुआ होता ।

तीर्थ-यात्राएँ :

आपने अपने जीवनको सुसंस्कृत बनानेके लिए सकुटुम्ब सात बार श्री सम्मेदशिखरजी, चार बार श्री गिरनारजी, दो बार दक्षिणके तीर्थों और तीन बार समस्त क्षेत्रोंकी यात्राएँ की हैं।

इस प्रकार लालाजीने हर दृष्टिसे जीवनको सफल बनानेकी चेष्टा की है और आज भी आप देव-दर्शन, शास्त्र-प्रवचन आदि धार्मिक क्रियाओंमें प्रवृत्त रहते हैं।

स्वर्गीया श्रीमती वस्सीदेवी :

सौभाग्यसे आपको धर्मपत्नी श्रीमती वस्सीदेवी भी आपके स्वभावके अनुरूप मिली थीं और प्रत्येक धार्मिक कार्यमें आपको उत्साहित करती रहती थीं। खेद है कि गत १८ जून १९६६ को आपका समाधि पूर्वक स्वगवास हो गया। आपको कैंसरकी बीमारी हो गई थी, जो लगभग एक वर्षतक रही और अन्तमें वही उनकी घातक हुई। लालाजीने अच्छे-अच्छे डाक्टरोंसे उनका इलाज़ कराया और अनेकविध उपचार किये। पर उन्हें कराल कालसे बचाया न जा सका। आपके वियोगसे लालाजी-को असह्य दुःख हुआ। पर आपने अपने विवेक, शास्त्र-ज्ञान और धैर्यसे उसे सहन किया। श्रीमती वस्सीदेवीजी बड़ी धार्मिक, दयालु, सहृदय और उदार नारी-रत्न थीं। अपनी दत्तक पुत्री सौ, सुशीला देवी, उनके बच्चों और दामाद बा० ज्ञानचन्द्रजी पर तो अपूर्व स्नेह रखती हो थीं, अपने अधीन नौकर-चाकरों, गरीब भाई-बहिनों और अनाथ बच्चों-पर भी उनका सदा स्नेह और करुणाका प्रवाह प्रवाहित रहता था। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि आपके पिता बा० छाजूरामजी थे, जो हिसारमें असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर थे और जो रेवाड़ीके निवासी थे। आपके दो भाई और एक बहिन हैं। भाईयोंके नाम हैं—१. ला० मुन्ना-लालजी, २. ला० शीतलप्रसादजी और बहिनका नाम है—श्रीमती कलावतीजी। आपका जन्म पोह वदी ८ वि० सं० १९६५ में हुआ था और स्वर्गवास आषाढ़ वदी १५ वि० सं० २०२३ (१८ जून १९६६) को हो गया।

लालाजीका औदार्य :

लाला फिरोजीलालजीने उल्लिखित लोकोपकारक कार्योंके अलावा अभी हालमें ४ जनवरी १९६७ को अपनी धर्मपत्नीकी स्मृतिमें 'वस्सी देवी जैन चेरिटेबल अस्पताल' की दरियागंज २१, दिल्लीमें स्थापना की है। इसके साथ ही इस 'मेरी जीवन-गाथा प्रथम भाग' की ३०० प्रतियोंका प्रकाशन-

व्यय भी श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमालाको दिया है। लालाजीकी उदारताका विशेष परिचय हमें तब और मिला जब उन्होंने हमें और विद्यार्थी नरेन्द्रजी जैन एम० ए०, पी-एच० डी० को दिल्ली बुलाया तथा हम लोगोंके परामर्शपर पूज्य वर्णीजी द्वारा लिखित समयसारकी हिन्दी-व्याख्याके प्रकाशनके लिए ११०००) ग्यारह हजार रुपयोंकी घोषणा की। यह ग्रन्थ लालाजी द्वारा स्थापित श्रीगणेश-वर्णी अहिंसा-प्रतिष्ठान ट्रस्ट दिल्लीसे श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसीके तत्त्वावधानमें शीघ्र प्रकाशित होगा।

लालाजीके ये सभी जन-सेवा और साहित्य-सेवाके कार्य निश्चय ही सराहनीय हैं। हमें आशा है उनके द्वारा भविष्यमें और भी प्रशंसनीय सत्कार्य सम्पन्न होंगे।
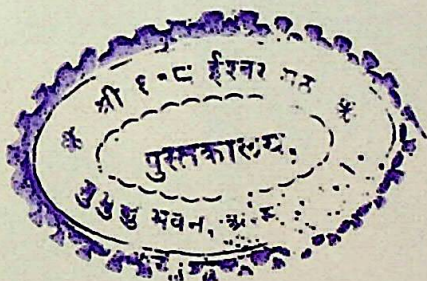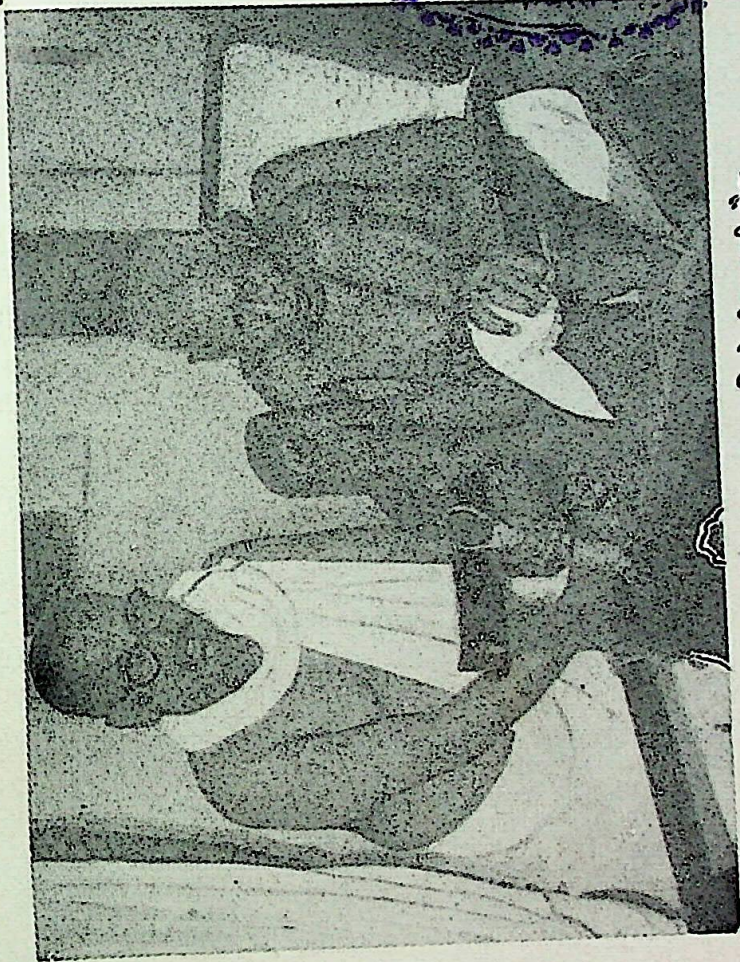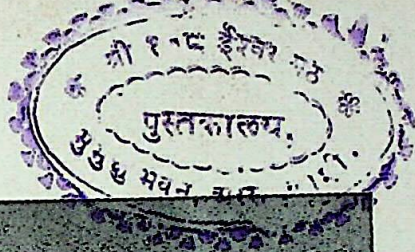
वर्णीजीकी परिचर्यामें प्रवृत्त ला० फिरोजीलालजी जैन

वर्णीजी और उनका दिव्यदान

मङ्गलाचरण

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

इस भव वन के मध्य में, जिन बिन जाने जीव ।
भ्रमण यातना सहन कर, पाते दुःख अतीव ॥१॥

सर्व हितङ्कर ज्ञानमय, कर्मचक्र से दूर ।
आत्म लाभ के हेतु तस, चरण नमूं हत क्रूर ॥२॥

आदीश्वर जिन बन्द कर, आगम गुरु चित लाय ।
अन्य वस्तु को त्याग कर, मेटहु जगत उपाय ॥३॥

भव दुःख सागरपार को, गुरुवच निश्चय धार ।
सदाचार नौका चढ़हु, उतरत लगहिं न बार ॥४॥

कब आवे वह सुभग दिन, जा दिन होवे सूझ ।
पर पदार्थ को भिन्न लख, होवे अपनी बूझ ॥५॥

१

जीवनके प्रभातमें

जन्म समय तथा पितृ परिचय

मेरा नाम गणेश वर्णी है। विक्रम सम्वत् १९३१ के कुंवार वदि ४ को गाँव हसेरा जिला ललितपुर (झाँसी) में मेरा जन्म हुआ। पिताका नाम श्री हीरालाल जी तथा माताका नाम उजयारी था। पिताजीके दो भाई और थे। पिताजीकी स्थिति सामान्य थी। वे साधारण दूकानदारीके द्वारा अपने कुटुम्बका पालन करते थे। उस समय एक रुपयामें एक मनसे अधिक गेहूँ, तीन सेर घी और आठ सेर तिल का तेल मिलता था। सब लोग कपड़ा प्रायः घरके काते सूतका पहिनते थे। सबके घर चरखा चलता था। घर-घर दूध दही की नदियाँ बहती थीं। अनाचार नहींके बराबर था। मनुष्योंके शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ होते थे। वे अत्यन्त सरल प्रकृतिके होते थे, प्रसन्न चित्त दिखाई देते थे, क्षय रोगका सर्वथा अभाव था। घर-घर गाय रहती थीं, दूध और दहीकी नदियाँ बहती थीं। देहातमें दूध और दहीकी बिक्री नहीं होती थी। तीर्थ-यात्रा सब पैदल करते थे । लोक प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे।

मेरी जाति असाटी थी। यह प्रायः बुन्देलखण्डमें पाई जाती है। इस जाति वाले वैष्णव-धर्मानुयायी होते हैं। परन्तु हमारे पिताका आचरण जैनियोंके सदृश हो गया था। वे रात्रि भोजन नहीं करते थे। उनकी जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धा थी। इसका कारण णमोकार मन्त्र था, वह एक बार दूसरे गाँवको जा

रहे थे। साथमें बैल पर दूकानदारीका सामान था। मार्गमें भयङ्कर वन पार करके जाना था। ठीक बीचमें जहाँ दो कोस इधर-उधर गाँव न था शेर शेरनी आ गये। २० गज का फासला था, मेरे पिताजीकी आँखोंके सामने अंधेरा छा गया। उन्होंने मनमें णमोकार मन्त्रका स्मरण किया, दैवयोगसे शेर-शेरनी मार्ग काट कर चले गये। यही उनकी जैनमतमें श्रद्धाका कारण हुआ।

बचपन और विद्यार्थी जीवन

बचपनमें मुझे असाताके उदयसे सुकी (सूखा) रोग हो गया था साथ ही लीवर आदि भी बढ़ गया था। फिर भी आयुष्कर्मके निषेकोंकी प्रबलताके कारण इस संकटसे मेरी रक्षा हो गई थी। मेरी आयु जब ६ वर्षकी हुई तब मेरे पिता मड़ावरा आ गये थे। मैंने ७ वर्षकी अवस्थामें विद्यारम्भ किया और १४ वर्षकी अवस्थामें मिडिल पास हो गया। चूँकि यहाँ पर यहीं तक शिक्षा थी अतः आगे नहीं बढ़ सका। मेरे विद्यागुरु श्रीमान् पण्डित मूलचन्द्रजी ब्राह्मण थे जो बहुत सज्जन थे। उनके साथ मैं गाँवके बाहर श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरमें जाया करता था। वहीं रामायण पाठ होता था। उसे मैं सानन्द श्रवण करता था किन्तु मेरे घरके सामने एक जिनालय था इसलिए वहाँ भी जाया करता था। उस मुहल्लेमें जितने घर थे सब जैनियोंके थे, उन लोगोंके सहवाससे प्रायः हमारे पिताका आचरण जैनियोंके सदृश हो गया था।

मैं १० वर्ष का था। सामने मन्दिरजीके चबूतरे पर प्रति दिन पुराण-प्रवचन होता था। एक दिन त्यागका प्रकरण आया। बहुतसे भाइयोंने प्रतिज्ञा ली, मैंने भी उसी दिन

आजन्म रात्रि भोजन त्याग दिया। इसी त्यागने मुझे जैनी बना दिया।

गुरुजी बहुत ही भद्र प्रकृतिके थे अतः वे मेरे श्रद्धानके साधक हो गये। एक दिन मैं उनका हुक्का भर रहा था, मैंने हुक्का भरने के समय तमाखू पीनेके लिये चिलमको पकड़ा, हाथ जल गया। मैंने हुक्का जमीन पर पटक दिया और गुरुजीसे कहा, 'महाराज! जिसमें ऐसा दुर्गन्धित पानी रहता है उसे आप पीते हैं? मैंने तो उसे फोड़ दिया, अब जो करना हो सो करो।'

गुरुजी प्रसन्न होकर कहने लगे 'तुमने दस रुपयेका हुक्का फोड़ दिया, अच्छा किया, अब न पियेंगे, एक बला टली।' मेरी प्रकृति बहुत भीरु थी, मैं डर गया था परन्तु उन्होंने सान्त्वना दी 'कहा—भय की बात नहीं।'

१२ वर्ष की अवस्थामें मेरे कुल पुरोहित ने मेरा यज्ञोपवीत संस्कार कराया, मन्त्रका उपदेश दिया। साथमें यह भी कहा कि यह मन्त्र किसी को न बताना अन्यथा अपराधी होगे।

मैंने कहा—'महाराज! आपके तो हजारों शिष्य हैं। आपको सबसे अधिक अपराधी होना चाहिये।

इस पर पुरोहितजी मेरे ऊपर बहुत नाराज हुए। माँने भी बहुत तिरस्कार किया, यहाँ तक कहा कि ऐसे पुत्रसे तो अपुत्रवती ही मैं अच्छी थी।

मिडिल क्लासमें पढ़ते समय मेरे एक मित्र थे जिनका नाम तुलसीदास था। ये ब्राह्मण पुत्र थे। मुझे दो रुपया मासिक छात्रवृत्ति मिलती थी। वह रुपया मैं इन्हीं को दे देता था। जब मैं मिडिल पास कर चुका तब मेरे गाँवमें पढ़नेके साधन न थे अतः अधिक विद्याभ्याससे मुझे वञ्चित रहना पड़ा। ४ वर्ष मेरे खेल कूदमें गये। पिताजीने बहुत कुछ कहा—'कुछ धंधा करो' परन्तु मुझसे कुछ नहीं हुआ।

• गृहस्थ-जीवन में प्रवेश तथा पितृ-वियोग

मेरे दो भाई और थे, एक का विवाह हो गया था, दूसरा छोटा था। वे दोनों ही परलोक सिधार गये। मेरा विवाह १८वें वर्षमें हुआ था। विवाह होनेके बाद ही पिताजीका स्वर्गवास हो गया था।

स्वर्गवासके समय उन्होंने मुझे यह उपदेश दिया—

'वेटा, संसारमें कोई किसी का नहीं, यह श्रद्धान दृढ़ रखना, तथा मेरी एक बात और दृढ़ रीतिसे हृदयंगम कर लेना। वह यह कि मैंने णमोकार मन्त्रके स्मरणसे अपनेको बड़ी बड़ी आपत्तियोंसे बचाया है। तुम निरन्तर इसका स्मरण रखना। जिस धर्ममें यह मंत्र है उस धर्मकी महिमाका वर्णन करना हम।रेसे तुच्छ ज्ञानियों-द्वारा होना असम्भव है, तुमको यदि संसार बन्धनसे मुक्त होना इष्ट है तो इस धर्म में दृढ़ श्रद्धान रखना और इसे जानने का प्रयास करना। बस हमारा यही कहना है।'

जिस दिन उन्होंने यह उपदेश दिया था उसी दिन सायंकाल को मेरे दादा जिनकी आयु ११० वर्ष की थी बड़े चिन्तित हो उठे। मेरी अपकीर्ति होगी—'बुड्ढा तो बैठा रहा पर लड़का मर गया।' इतना कह कर वे सो गये, प्रातःकाल मैं दादा को जगाने गया पर कौन जागे ? दादाका स्वर्गवास हो चुका था। उनका दाह कर आये ही थे कि मेरे पिताका भी वियोग हो गया। हम सब रोने लगे, अनेक वेदनाएँ हुईं पर अन्तमें सन्तोष कर बैठ गये।

कर्म क्षेत्रमें मेरे पिता ही व्यापार करते थे, मैं तो बुद्धू था ही—कुछ नहीं जानता था। अतः पिताके मरनेके बाद मेरी माँ बहुत व्यथित हुई। इससे मैंने मदनपुर गाँवमें मास्टरी कर

ली। वहाँ चार मास रह कर नार्मल स्कूलमें शिक्षा लेने के अर्थ आगरा चला गया परन्तु वहाँ दो मास ही रह सका। इसके बाद अपने मित्र ठाकुरदासके साथ जयपुरकी तरफ चला गया। एक मास बाद इन्दौर पहुँचा, शिक्षा विभागमें नौकरी कर ली। देहात में रहना पड़ा। वहाँ भी उपयोगकी स्थिरता न हुई अतः फिर देश चला आया।

●

२

जीवन संग्राम

दो मास के बाद द्विरागमन हो गया। मेरी स्त्री भी माँके बहकावेमें आ गई और कहने लगी 'तुमने धर्म परिवर्तन कर बड़ी भूल की, अब फिर अपने सनातन धर्ममें आ जाओ और सानन्द जीवन बिताओ। ये विचार सुन कर मेरा उससे प्रेम हट गया। मुझे आपत्तिसी जँचने लगी; परन्तु उसे छोड़नेमें असमर्थ था। थोड़े दिन बाद मैंने कारीटोरन गाँव की पाठशाला-में अध्यापकी कर ली और वहीं उसे बुला लिया। दो माह आमोद-प्रमोदमें अच्छी तरह निकल गये। मेरे चचेरे भाई लक्ष्मण का विवाह आ गया, उसमें वह गई, मेरी माँ भी गईं, और मैं भी गया। वहाँ पंक्ति भोजमें मुझसे भोजन करनेके लिये आग्रह किया गया। मैंने काकाजीसे कहा कि 'यहाँ तो अशुद्ध भोजन बना है। मैं पंक्तिभोजनमें सम्मिलित नहीं हो सकता।' इससे मेरी जाति वाले क्रोधित हो उठे, नाना अवाच्य शब्दोंसे मैं कोसा गया। उन्होंने कहा—'ऐसा आदमी जाति बहिष्कृत क्यों न किया जाय, जो हमारे साथ भोजन नहीं करता किन्तु जैनियोंके चौकों में खा आता है।'

मैंने उन सबसे हाथ जोड़ कर कहा कि 'आपकी बात स्वीकार है, और दो दिन रह कर टीकमगढ़ चला आया। वहाँ आकर मैं श्रीराम मास्टरसे मिला। उन्होंने मुझे जतारा स्कूल का अध्यापक बना दिया।

यहाँ मेरी जैनधर्ममें और अधिक श्रद्धा बढ़ने लगी। दिन रात धर्म श्रवणमें समय जाने लगा। संसारकी असारता पर निरन्तर परामर्श होता था। यहाँ कड़ोरेलालजी भायजी अच्छे तत्त्वज्ञानी थे। पूजनके बड़े रसिक थे। मैं कुछ कुछ स्वाध्याय करने लगा था और खाने पीनेके पदार्थोंके छोड़नेमें ही अपना धर्म समझने लगा था। चित्त तो संसारसे भयभीत था ही।

एक दिन हम लोग सरोवर पर भ्रमण करनेके लिये गये। वहाँ मैंने भायजी साहबसे कहा 'कुछ ऐसा उपाय बतलाइये जिस कारण कर्मबन्धनसे मुक्त हो सकूँ।'

उन्होंने कहा—'उतावली करनेसे कर्मबन्धनसे छुटकारा न मिलेगा।'

मैंने कहा—'आपका कहना ठीक है परन्तु मेरी स्त्री और माँ हैं जो कि वैष्णवधर्म की पालनेवाली हैं। मैंने बहुत कुछ उनसे आग्रह किया कि यदि आप जैनधर्म स्वीकार करें तो मैं आपके सहवासमें रहूँगा अन्यथा मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं। मेरी माता और स्त्री अत्यन्त दुखी होकर रोने लगीं पर मैं निष्ठुर होकर यहाँ चला आया।'

यह बात जब भायजीने सुनी तब उन्होंने बड़ा डाँटा और कहा—'तुम बड़ी गलती पर हो, तुम्हें अपनी माँ और स्त्रीका सहवास नहीं छोड़ना चाहिये। एक पत्र डालकर उन दोनोंको बुला लो। यहाँ आनेसे उनकी प्रवृत्ति जैनधर्ममें हो जायगी।'

उनका आदेश था मैंने उसे शिरोधार्य किया और एक पत्र उसी दिन अपनी माँको डाल दिया। पत्रमें लिखा था—

'हे माँ! मैं आपका बालक हूँ,बाल्यावस्थासे ही बिना किसीके उपदेश तथा प्रेरणाके मेरा जैनधर्ममें अनुराग है। बाल्यावस्थामें ही मेरे ऐसे भाव होते थे कि हे भगवन्! मैं किस कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ? जहाँ न तो विवेक है और न कोई धर्मकी ओर प्रवृत्ति ही है। ऐसी दुर्दशामें रहकर मेरा कल्याण कैसे होगा? हे प्रभो! मैं किसी जैनोका बालक क्यों न हुआ? जहाँ पर छना पानी, रात्रि भोजनका त्याग, निरन्तर जिनेन्द्र देवका पूजन, स्तवन, स्वाध्याय, शास्त्र सभा, व्रत नियमोंके पालनेका उपदेश होना आदि धर्मके कार्य होते हैं। मैं यदि ऐसे कुलमें जन्मता तो मेरा भी कल्याण होता, परन्तु आपके भयसे मैं नहीं कहता था। आपने मेरे पालन पोषणमें कोई त्रुटि नहीं की। यह सब आपका मेरे ऊपर महोपकार है। मैं हृदयसे वृद्धावस्थामें आपकी सेवा करना चाहता हूँ, अतः आप अपनी वधूको लेकर यहाँ आ जावें, मैं यहाँ मदरसामें अध्यापक हूँ मुझे छुट्टी नहीं मिलती, अन्यथा मैं स्वयं आपको लेनेके लिए आता। किन्तु आपके चरणोंमें मेरी एक प्रार्थना अब भी है। वह यह कि आपने अब तक जिस धर्ममें अपनी ६० वर्षकी आयु पूर्ण की अब उसे बदल कर श्रीजिनेन्द्रदेव द्वारा प्रकाशित धर्मका आश्रय लीजिये जिससे आपका जन्म सफल हो और आपकी चरणसेविका बहूका भी संस्कार उत्तम हो। आशा है, मेरी विनयसे आपका हृदय द्रवीभूत हो जायगा, मैं चार मास तक आपके चरणोंकी प्रतीक्षा करूंगा। मैंने यह नियम कर लिया है कि जिसके जिन धर्मकी श्रद्धा नहीं उसके हाथका भोजन नहीं करूंगा। अब आपकी जैसी इच्छा हो सो करें।'

पत्र डालकर निःशल्य हो गया और श्रीभायजी तथा वर्णी

मोतीलालजी के सहवाससे धर्म साधनमें काल बिताने लगा। तब मर्यादाका भोजन, देवपूजा, स्वाध्याय, तथा सामायिक आदि कार्योंमें सानन्द काल जाता था।

●

३

धर्म माताकी गोदमें

एक दिन श्रीभायजी व वर्णीजीने कहा सिमरामें चिरौंजाबाई बहुत सज्जन और त्यागकी मूर्ति हैं, उनके पास चलो।'

मैं उन दोनों महाशयोंके साथ सिमरा गया। जिनालयोंके दर्शन कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। दर्शन करनेके बाद शास्त्र पढ़नेका प्रसङ्ग आया। भायजी ने मुझसे शास्त्र पढ़नेको कहा। मैं डर गया। मैंने कहा—'मुझे तो ऐसा बोध नहीं जो सभामें शास्त्र पढ़ सकूँ' परन्तु भाई साहबके आग्रहसे शास्त्रकी गद्दी पर बैठ गया। पद्मपुराण दस पत्र बांच गया। शास्त्र सुनकर जनता प्रसन्न हुई।

बाईजी हम तीनों को भोजन के लिये ले गईं। दोनों जनें बाईजीसे वार्तालप करने लगे, परन्तु मैं नीची दृष्टि किये चुपचाप भोजन करता रहा। यह देख बाईजीसे न रहा गया। उन्होंने भायजी व वर्णीजीसे पूछा—'क्या यह मौनसे भोजन करता है ?' उन्होंने कहा—'नहीं यह आपसे परिचित नहीं है इसीसे इसकी ऐसी दशा हो रही है'।

इस पर बाईजीने कहा—'बेटा ! सानन्द भोजन करो, मैं तुम्हारी धर्ममाता हूँ, यह घर तुम्हारे लिए है, कोई चिन्ता न करो, मैं जब तक हूँ तुम्हारी रक्षा करूँगी'।

भोजन करके बाईजीकी स्वाध्यायशालामें चला गया। वहीं पर भायजी व वर्णीजी आ गये। बाईजी भी वहीं पर आ गईं। उन्होंने मेरा परिचय पूछा। मैंने जो कुछ था वह बाईजी से कह दिया। परिचय सुनकर प्रसन्न हुईं, और उन्होंने भायजी तथा वर्णीजी से कहा—'इसे देखकर मुझे पुत्र जैसा स्नेह होता है—इसको देखते ही मेरे भाव हो गये हैं कि इसे पुत्रवत् पालूँ'।

बाईजीके ऐसे भाव जानकर भायजीने कहा 'इसकी माँ और धर्मपत्नी दोनों हैं।'

बाईजीने कहा—'उन दोनोंको भी बुला लो, कोई चिन्ता की बात नहीं, मैं इन तीनों की रक्षा करूंगी।'

भायजी साहबने कहा—'इसने अपनी माँ को एक पत्र डाला है. जिसमें लिखा है कि यदि तुम चार मास में जैनधर्म स्वीकार न करोगी तो मैं तुमसे सम्बन्ध छोड़ दूँगा।'

यह सुन बाईजीने भायजी को डाँटते हुए कहा—'तुमने पत्र क्यों डालने दिया ?' साथ ही मुझे भी डाँटा-'बेटा ! ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं, इस संसारमें कोई किसी का स्वामी नहीं, तुमको कौन सा अधिकार है जो उनके धर्मका परिवर्तन कराते हो ?'

मैंने कहा—'गलती तो हुई, परन्तु मैंने तो प्रतिज्ञा ले ली थी कि यदि वह जैनधर्म न मानेगी तो मैं उससे सम्बन्ध तोड़ दूँगा।' बहुत तरहसे बाईजीने समझाया परन्तु यहाँ तो मूढ़ता थी, एक भी बात समझमें न आई।

यदि दूसरा कोई होता तो मेरे इस व्यवहारसे रुष्ट हो जाता। फिर भी बाईजी शान्त रहीं, और उन्होंने समझाते हुए कहा—'अभी तुम धर्म का मर्म नहीं समझते हो इसीसे यह गलती करते हो।'

मैं फिर भी जहाँ का तहाँ बना रहा। बाईजी के इस उपदेश-का मेरे ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा। अन्तमें बाईजीने कहा—अविवेक का कार्य अंतमें सुखावह नहीं होता। अस्तु,

सायंकालको बाईजी ने दूसरी बार भोजन कराया, परन्तु मैं अबतक बाईजीसे संकोच करता था। यह देख बाईजीने फिर समझाया—'बेटा! माँसे संकोच मत करो।'

प्रातःकाल क्षुल्लक महाराजकी वन्दना करके बहुत ही प्रसन्न चित्तसे याञ्चा की—निवेदन किया—

'महाराज! ऐसा उपाय बताओ जिससे मेरा कल्याण हो सके। मैं अनादिकालसे इस संसार बंधनमें पड़ा हूँ। आप धन्य हैं यह आपकी ही सामर्थ्य है जो इस पदको अङ्गीकार कर आत्महितमें लगे हो। क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे मेरा भी हित हो?'

क्षुल्लक महाराजने कहा—'हमारे समागममें रहो और शास्त्र लिखकर आजीविका करो। साथ ही व्रत नियमोंका पालन करते हुए आनन्दसे जीवन बिताओ। आत्महित होना दुर्लभ नहीं।'

मैंने कहा—'आपके साथ रहना इष्ट है परन्तु आपका यह आदेश कि शास्त्रोंको लिखकर आजीविका करो मान्य नहीं।'

यह सुन पहले तो महाराज अचरजमें पड़ गये बादमें उन्होंने कहा 'यदि तुमको मेरा कहना इष्ट नहीं तो जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो।'

वहाँ पर बाईजी भी बैठी थीं सुनकर कुछ उदास हो गईं और बोलीं—'बेटा! घर पर चलो' मैं उनके साथ घर पर चला गया।

बाईजीने घर पहुँचने पर सान्त्वना देते हुए कहा—'बेटा! चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारा पुत्रवत् पालन करूँगी। तुम

निःशल्य होकर धर्मसाधन करो और दश-लक्षण पर्वमें यहीं आ जाओ; किसीके चक्करमें मत आओ, क्षुल्लक महाराज स्वयं पढ़े नहीं हैं तुम्हें वे क्या पढ़ायेंगे ? यदि तुम्हें विद्याभ्यास करना ही इष्ट है तो जयपुर चले जाना ।'

यह बात आजसे ६० वर्ष पहलेकी है । उस समय इस प्रान्त में कहीं भी विद्याका प्रचार न था । ऐसा सुननेमें आता था कि जयपुरमें बड़े-बड़े विद्वान् हैं । मैं बाईजीकी सम्मतिसे सन्तुष्ट हो मध्याह्नोपरान्त जतारा चला आया ।

भाद्रमास था, संयमसे दिन बिताने लगा, पर संयम क्या वस्तु है ? यह नहीं जानता था । संयम समझकर भाद्रमास भरके लिये छहों रस छोड़ दिये थे । रस छोड़नेका अभ्यास तो था नहीं इससे महान् कष्टका सामना करना पड़ा । खुराक कम हो गई और शरीर शक्तिहीन हो गया ।

व्रतोंमें बाईजीके यहाँ आनेपर उन्होंने व्रतका पालन सम्यक् प्रकारसे कराया और अन्तमें यह उपदेश दिया—'तुम पहले ज्ञानार्जन करो पश्चात् व्रतोंको पालना । शीघ्रता मत करो, जैनधर्म संसारसे पार करनेकी नौका है, इसे पाकर प्रमादी मत होना, कोई भी काम करो, समतासे करो । जिस कार्यमें आकुलता हो उसे मत करो ।'

मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और भाद्रमासके बीतनेपर निवेदन किया कि 'मुझे जयपुर भेज दो ।'

बाईजीने कहा—'अभी जल्दी मत करो, भेज देंगे ।'

मैंने पुनः कहा—'मैं तो जयपुर जाकर विद्याभ्यास करूँगा ।'

बाईजी बोलीं—'अच्छा बेटा, जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो ।'

●

४

जयपुरकी असफल यात्रा

जाते समय बाईजीने कहा 'भैया ! तुम सरल हो, मार्गमें सावधानीसे जाना, ऐसा न हो कि सब सामान खोकर फिर वापिस आ जाओ।' मैं श्री बाईजीके चरणोंमें प्रणाम कर यात्राको चल पड़ा। ग्वालियर पहुँचा। चम्पाबागकी धर्मशालामें ठहर गया। यहाँके मन्दिरोंकी रचना और जिन-बिम्बोंके दर्शन कर जो आनन्द हुआ वह वर्णनातीत है। दो दिन इसी तरह निकल गये। तीसरे दिन दो बजे दिनमें शौचकी बाधा होनेपर आदतके अनुसार गाँवके बाहर दो मील तक चला गया। धर्मशालामें लौटकर देखता हूँ कि जिस कोठरीमें ठहरा था उसका ताला टूटा पड़ा है और पासमें जो कुछ सामान था वह सब नदारत है। केवल बिस्तर बच गया था। इसके सिवा अंटीमें पाँच आना पैसे, एक लोटा, छन्ना, डोरी, एक छतरी और एक धोती जो बाहर ले गया था इतना सामान शेष बचा था, चित्त बहुत खिन्न हुआ। 'जयपुर जाकर अध्ययन करूंगा' यह विचार अब वर्षोंके लिए टल गया। शोक-सागरमें डूब गया। किस प्रकार सिमरा जाऊं ? इस चिन्तामें पड़ गया।

शामको भूखने सताया अतः बाजारसे एक पैसेके चने और एक छदामका नमक लेकर डेरेमें आया और आनन्दसे चने चाबकर सायंकाल जिन भगवान्‌के दर्शन किये तथा अपने भाग्यको निन्दा करता हुआ कोठरीमें सो गया। प्रातःकाल सोनागिरिके लिए प्रस्थान कर दिया। पासमें न तो रोटी बनानेको वर्तन थे और न सामान ही था। एक गाँवमें जो ग्वालियरसे १२ मील होगा वहाँ आकर दो पैसेके चने और थोड़ासा नमक लेकर एक

कुएंपर आया और उन्हें आनन्दसे चाबकर विश्रामके बाद सायंकाल फिर चल दिया। बाहर मील चल कर फिर दो पैसेके चने लेकर ब्यालू की फिर पंच परमेष्ठीका ध्यान कर सो गया। यही विचार आया कि जन्मान्तरमें जो कमाया था उसे भोगनेमें अब आनाकानी करनेसे क्या लाभ ?

इसी प्रकार ३ या ४ दिन बाद सोनागिरि आ गया। पुजारीके बर्तनोंमें भोजन बनाकर फिर पैदल चल दतिया आया। मार्गमें चने खाकर ही निर्वाह करता था। दतियामें एक पैसा भी पास न रहा, बाजारमें गया, पासमें कुछ न था केवल छतरी थी। दूकानदारसे कहा 'भैया! इस छतरीको ले लो।' उसने कहा 'चोरीकी तो नहीं है ? मैं चुप रह गया। आँखोंमें अश्रु आ गये परन्तु उसने उन अश्रुओंको देख कुछ भी समवेदना प्रकट न की। कहने लगा—'लो छह आना पैसे ले जाओ।' मैंने कहा—छतरी नवीन है कुछ और दे दो।' उसने तीव्र स्वरमें कहा 'छह आने ले जाओ नहीं तो चले जाओ।' लाचार छह आना ही लेकर चल पड़ा।

दो पैसेके चने लेकर एक कुएं पर चावे फिर चल दिया, दूसरे दिन झांसी पहुँचा। जिनालयोंकी वन्दना कर बाजारमें गया परन्तु पासमें तो साढ़े पांच आना ही थे अतः एक आनेके चने लेकर गाँवके बाहर एक कुएँ पर आया और खाकर सो गया। दूसरे दिन बरुआसागर पहुँच गया। उन दिनों मेरा किसीसे परिचय नहीं था अतः जिनालयकी वन्दना कर बाजारसे एक आनेके चने लेकर गाँवके बाहर चावे और बाईजीके गाँवके लिए प्रस्थान कर दिया।

यहाँसे चलकर कटेरा आया। थक गया। कई दिनसे भोजन नहीं किया था। पासमें कुल तीन आना ही शेष थे। यहाँ एक

जिनालय है उसके दर्शन कर बाजारसे एक आनेका आटा, एक पैसेकी उड़दकी दाल, आध आनेका घी और एक पैसेका नमक व धनियाँ आदि लेकर गाँवके बाहर एक कुएँ पर आया। पासमें बर्तन न थे, केवल एक लोटा और छन्ना था। कैसे दाल बनाई जाय ? यदि लोटामें दाल बनाऊँ तो पानी कैसे छानूं ? आटा कैसे गूनूं ? 'आवश्यकता आविष्कारकी जननी है' यह यहाँ चरितार्थ हुआ। आटाको तो पत्थर पर गून लिया। परन्तु दाल कैसे बने ? तब यह उपाय सूझा कि पहले उड़दकी दालको कपड़ेके पल्लेमें भिंगो दी। इसके भींग चुकने पर आटेकी रोटी बनाकर उसके अन्दर उसे रख दिया। उसीमें नमक धनिया व मिर्च भी मिला दी। पश्चात् उसका गोला बनाकर और उस पर पलासके पत्ते लपेट कर जमीन खोद कर एक खड्डेमें उसे रख दिया। ऊपर कण्डा रख दिये। उनकी आग तैयार होने पर शेष आटेकी ४ बाटियाँ बनाई और उन्हें सेंक कर घीसे चुपड़ दिया। उन दिनों दो पैसेमें एक छटाक घी मिलता था। इसलिये बाटियां अच्छी तरह चुपड़ी गईं। पश्चात् आगको हटाकर नीचेका गोला निकाल लिया। धीरे धीरे उसके ठण्डा होने पर उसके ऊपरसे अधजले पत्तोंको दूर कर दिया। फिर गोलेको फोड़कर छेवलेकी पत्तरमें दालको निकाल लिया। दाल पक गई थी उसको खाया। मैंने आजतक बहुत जगह भोजन किया है परन्तु उस दालका जो स्वाद था वैसी दाल आजतक भोजनमें नहीं आई। इस प्रकार चार दिनके बाद भोजन कर जो तृप्ति हुई उसे मैं ही जानता हूँ। अब पासमें एक आना रह गया। यहाँसे चलकर फिर वही चाल अर्थात् दो पैसेके चने चाबे और वहाँसे चलकर पारके गाँव पहुँच गया।

यहाँसे सिमरा नौ मील दूर था परन्तु लज्जावश वहाँ न जाकर यहीं पर रहने लगा। यहीं एक जैनी भाईके घर आनन्दसे

भोजन करता था और गाँवके जैन बालकोंको प्राथमिक शिक्षा देने लगा।

दैवका प्रबल प्रकोप तो था ही-मुझे मलेरिया आने लगा। ऐसे वेगसे मलेरिया आया कि शरीर पीला पड़ गया। औषधि रोगको दूर न कर सकी। एक वैद्यने कहा—'प्रातःकाल वायुसेवन करो और ओसमें आध घंटा टहलो।'

मैंने वही किया। पन्द्रह दिनमें ज्वर चला गया। फिर वहाँ से आठ मील चलकर जतारा आ गया। यहाँ पर भाईजी साहब और वर्णीजीसे भेंट हो गई और उनके सहवासमें पूर्ववत् धर्म साधन करने लगा।

●

९

खुरई यात्रा

बाईजीने बहुत बुलाया, परन्तु मैं लज्जाके कारण नहीं गया। उस समय यहाँ पर स्वरूपचन्द्र बनपुरया रहते थे। उनके साथ उनके गाँव माची चला गया। ये बड़े उत्साहसे मेरा अतिथि सत्कार करने लगे। मैंने बुधजन छहढाला कण्ठस्थ कर लिया। अन्तरङ्गमे जैनधर्मका मर्म कुछ नहीं समझता था।

मैं उनके साथ खुरई पहुँच गया। वे श्रीमन्तके यहाँ ठहर गये। मैं भी वहीं ठहर गया, यहाँ श्रीमन्तसे तात्पर्य श्रीमान् श्रीमन्त सेठ मोहनलालजीसे है, आप जैन शास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपके सब ठाट राजाओंके समान थे। आपके यहाँ पण्डित पन्नालालजी न्यायदिवाकर आते रहते थे। सायंकाल सबसे

अधिक प्रसन्नता श्री १००८ देवाधिदेव पार्श्वनाथके प्रतिविम्बको देखकर हुई।

श्रीप्रभु पार्श्वनाथके दर्शनके अनन्तर श्रीमान् पण्डितजीका प्रवचन सुना। पण्डितजी बहुत ही रोचक और मार्मिक विवेचन के साथ तत्त्वकी व्याख्या करते रहते थे। मेरी आत्मामें विलक्षण स्फूर्ति हुई। जब शास्त्र विराजमान हो गये तब मैंने श्रीमान् वक्ताजीसे कहा—'ऐसा भी कोई उपाय है जिससे मैं जैनधर्मका रहस्य जान सकूँ?'

आपने कहा—'तुम कौन हो?'

मैंने कहा—'मैं वैष्णव कुलके असाटी वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मेरे वंशके सभी लोग वैष्णव धर्मके उपासक हैं। मेरा वंश ही क्या जितने भी असाटी वैश्य हैं सब ही वैष्णव धर्मके उपासक हैं, किन्तु मेरी श्रद्धा भाग्योदयसे इस जैनधर्ममें दृढ़ हो गई है। निरन्तर इसी चिंतामें रहता हूँ कि जैनधर्मका कुछ ज्ञान हो जाय।'

पण्डितजी महोदयने प्रश्न किया—कि 'तुमने जैनधर्ममें कौन सी विलक्षणता देखी जिससे कि तुम्हारी अभिरुचि जैनधर्मकी ओर होगई है?'

मैंने कहा—'इस धर्मवाले दयाका पालन करते हैं, छानकर पानी पीते हैं, रात्रि भोजन नहीं करते, स्वच्छता पूर्वक रहते हैं, स्त्रीपुरुष प्रति-दिन मन्दिर जाते हैं, मन्दिरमें मूर्तियाँ बहुत सुन्दर होती हैं, प्रतिदिन मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन होता है, इत्यादि शुभाचरणकी विशेषता देखकर मैं जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धावान् हो गया हूँ।'

पण्डितजीने कहा—'यह क्रिया तो हर धर्मवाले कर सकते हैं, हर कोई दया पालता है। तुमने धर्मका मर्म नहीं समझा।

आजकल मनुष्य न तो कुछ समझें और न जानें केवल खान पानके लोभसे जैनी हो जाते हैं। तुमने बड़ी भूल की जो जैनी हो गये, ऐसा होना सर्वथा अनुचित है। वंचना करना महापाप है। जाओ, मैं क्या समझाऊँ? मुझे तो तुम्हारे ऊपर तरस आता है। न तो तुम वैष्णव ही रहे और न जैनी ही। व्यर्थ ही तुम्हारा जन्म जायगा।'

पण्डितजी की बात सुनकर मुझे बहुत खेद हुआ। मैंने कहा–'महाराज! आपने मुझे सान्त्वनाके बदले वाक्‌बाणोंकी वर्षा से आच्छन्न कर दिया। मैंने क्या आपसे चन्दा माँगा था? या कोई याचना की थी? या आजीविकाका साधन पूछा था? मेरे दुर्दैवका ही प्रकोप है। अस्तु, अब पण्डितजी! आपसे शपथ पूर्वक कहता हूँ—उस दिन ही आपके दर्शन करूँगा जिस दिन धर्मका मार्मिक स्वरूप आपके समक्ष रखकर आपको सन्तुष्ट कर सकूँगा। आज आप जो वाक्य मेरे प्रति व्यवहारमें लाये हैं वे तब आपको वापिस लेने पड़ेंगे।'

यह प्रतिज्ञा की कि किसी तरह ज्ञानार्जन करना आवश्यक है। प्रतिज्ञा तो कर ली परन्तु ज्ञान उपार्जन करनेका कोई भी साधन न था। पासमें न तो द्रव्य ही था और न किसी विद्वान् का समागम ही था। कुछ उपाय नहीं सूझता था। रेवाके तटपर पर्वत है, वहाँपर असहाय एक मृगका बच्चा खड़ा हुआ है, उसके सामने रेवा नदी है और पर्वत भी। दाएँ बाएँ दावानल की ज्वाला धधक रही है पीछे शिकारी हाथमें धनुष बाण लिये मारनेको दौड़ रहा है। ऐसी हालतमें वह हरिणका बालक विचार करता है कि कहाँ जावें और क्या करें?

पुरा रेवापारे गिरिरतिदुरारोहशिखरो,
गिरौ सव्येऽसव्ये दवदहनज्वालाव्यतिकरः।

धनुःपाणिः पश्चान्मृगयुहतको धावति भृशं,
क्व यामः किं कुर्यः हरिणशिशुरेवं विलपति ॥

क्या करें कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। दो या तीन दिन खुरईमें रहकर मैं मड़ावरा मेरी माँके पास चला गया। रास्तेमें तीन दिन लगे। लज्जावश रात्रिको घर पहुँचा।

मुझे आया हुआ देख माँ बड़ी प्रसन्न हुई। बोली 'बेटा! आ गये?'

मैंने कहा—'हाँ माँ! आ गया।'

माँ ने उपदेश दिया—'बेटा! आनन्दसे रहो, क्यों इधर उधर भटकते हो? अपना कौलिक धर्म पालन करो, और कुछ व्यापार करो, तुम्हारे काका समर्थ हैं। वे तुम्हें व्यापारकी पद्धति सिखा देंगे।'

मैं माँ की शिक्षा सुनता रहा परन्तु जैसे चिकने घड़े पर पानी का असर नहीं होता वैसे ही मेरे ऊपर उस शिक्षाका कोई भी असर नहीं हुआ। मैं तीन दिन वहाँ रहा पश्चात् माँ की आज्ञा से बमराना चला गया।

यहाँ श्री सेठ व्रजलाल, चन्द्रभान व श्री लक्ष्मीचन्द्रजी साहब रहते थे। तीनों भाई धर्मात्मा थे। इन तीनों में लक्ष्मीचन्द्र जी सेठ प्रखरबुद्धि थे। आपकी चित्तवृत्ति भी निरन्तर परोपकार में रत रहती थी।

उन्होंने मुझसे कहा 'आपका शुभागमन कैसे हुआ?'

मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ था अतः सारी बातें तो न बता सका, केवल लौट जानेकी इच्छा जाहिर की। यह सुन श्रीसेठ लक्ष्मीचन्द्र जीने विना माँगे ही दस रुपया मुझे दिये और कहा आनन्दसे जाइये। साथ ही यह आश्वासन भी दिया कि यदि कुछ व्यापार करने की इच्छा हो तो सौ या दो सौ की पूँजी लगा देंगे।

●

६

तीर्थ यात्रा

रेशंदीगिरि

मैं दस रुपया लेकर बमरानासे मड़ावरा आ गया। पाँच दिन रहकर माँ तथा स्त्री की अनुमतिके बिना ही कुण्डलपुरकी यात्राके लिये प्रस्थान कर दिया। मड़ावरासे चलकर चौदह मील बरायठा नगरमें आया। वहाँ से श्री सिद्धक्षेत्र नैनागिरिके लिये चल पड़ा। मार्गमें महती अटवी थी, जहाँ पर वनके हिंसक पशुओंका संचार था। मैं एकाकी चला जाता था। कोई सहायी न था। केवल आयु कर्म सहायी था। क्षेत्र पर दिनके दस बजे पहुँच गया। स्नानादिसे निवृत्त हो श्री जिन मन्दिरोंके [दर्शनके लिये उद्यमी हुआ। प्रथम तो सरोवरके दर्शन हुए जो अत्यन्त रम्य था चारों ओर सारस आदि पक्षीगण शब्द कर रहे थे। चकवा आदि अनेक प्रकारके पक्षीगणोंके कलरव हो रहे थे। कमलोंके फूलोंसे वह ऐसा सुशोभित था मानों गुलाबका बाग ही हो। सरोवरका बंधान चंदोल राजाका बंधाया हुआ है। इसी परसे पर्वत पर जानेका मार्ग था। पर्वत बहुत उन्नत न था। दस मिनट में ही मुख्य द्वार पर पहुँच गया।

यह वही पर्वतराज है जहाँ श्री १००८ देवाधिदेव पार्श्वनाथ प्रभुका समवसरण आया था और वरदत्तादि पाँच ऋषिराजोंने निर्वाण प्राप्त किया था।

यहाँ मैं तीन दिन रहा। चित्त जानेको नहीं चाहता था। चित्तमें यही आता था कि 'सर्व विकल्पोंको त्यागो और धर्म साधन करो।' परन्तु साधनोंके अभावमें दरिद्रोंके मनोरथोंके

समान कुछ न कर सका। चार दिनके बाद श्री अतिशय क्षेत्र-कुंण्डलपुरके लिए प्रस्थान किया। प्रस्थानके समय आँखोंमें अश्रु धारा आगई। चलनेमें गतिका वेग न था, पीछे-पीछे देखता जाता था और आगे-आगे चला जाता था। मार्गको तय करता हुआ तीन दिन बाद कुण्डलपुर पहुँच गया।

कुण्डलपुर

अवर्णनीय क्षेत्र है। यहाँ पर कई सरोवर तथा आमके बगीचे हैं। एक सरोवर अत्यन्त सुन्दर है। उसके तटपर अनेक जैन मन्दिर गगनचुम्बी शिखरोंसे सुशोभित एवं चारों तरफ आमके वृक्षोंसे वेष्टित भव्य पुरुषोंके मनको विशुद्ध परिणामोंके कारण बन रहे हैं। उनके दर्शन कर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे जो आनन्द होता है उसे प्रायः सब ही आस्तिक जान जानते हैं और नित्यप्रति उसका अनुभव भी करते हैं। अनन्तर पर्वतके ऊपर श्री महावीर स्वामीके पद्मासन प्रति-बिम्बको देखकर तो साक्षात् श्री वीरदर्शनका ही आनन्द आ गया। ऐसी सुभग पद्मासन प्रतिमा मैंने तो आजतक नहीं देखी। यह प्रतिमा 'बड़े बाबा'के नामसे विख्यात है। तीन दिन इस क्षेत्र पर रहा और तीनों ही दिन श्री वीरप्रभुके दर्शन किये।

रामटेक

श्री कुण्डलपुरसे यात्रा करनेके पश्चात् कई दिवसोंके बाद रामटेक क्षेत्र पर पहुँच गया। यहाँके मन्दिरोंकी शोभा अवर्णनीय है। यहाँ पर श्री शान्तिनाथ स्वामीके दर्शन कर बहुत आनन्द हुआ।

मुक्तागिरि

चार दिन बाद यहाँसे चलकर कई दिवसोंके बाद श्री सिद्ध-

क्षेत्र मुक्तागिरि पहुँच गया। क्षेत्रकी शोभा अवर्णनीय है। सर्वतः वनोंसे वेष्टित पर्वत है। ऊपर अनेक जिनालय हैं। नीचे भी कई मन्दिर और धर्मशालाएँ हैं। तपोभूमि है, सानन्द वन्दना की।

पासमें पाँच रुपये मात्र रह गये। कपड़े विवर्ण हो गये। शरीरमें खाज हो गई। एक दिन बाद ज्वर आने लगा। सहायी कोई नहीं। केवल दैव ही सहायी था। क्या करूँ? कुछ समझ में नहीं आता था—कर्तव्यमूढ़ हो गया। कहाँ जाऊँ? यह भी निश्चय नहीं कर सका। किससे अपनी व्यथा कहूँ? यह भी समझमें नहीं आया। कहता भी तो सुननेवाला कौन था? खिन्न होकर पड़ गया। रात्रिको स्वप्न आया—'दुःख करनेसे क्या लाभ?' कोई कहता है—'श्रीगिरिनारजी चले जाओ।' 'कैसे जावें? साधन तो कुछ हैं नहीं....' मैंने कहा। यही उत्तर मिला—'नारकी जीवोंकी अपेक्षा तो अच्छे हो।'

प्रातःकाल हुआ। श्री सिद्धक्षेत्रकी वन्दना कर बैतूल नगरके लिये चल दिया। तीन कोस चलकर एक हाट मिली। वहाँ एक स्थानपर पत्तेका जुआ हो रहा था। १) के ५) मिलते थे। हमने विचार किया—'चलो ५) लगा दो २५) मिल जावेंगे, फिर आनन्दसे रेलमें बैठकर श्रीगिरिनारजीकी यात्रा सहजमें हो जावेगी; इत्यादि। १) के ५) मिलेंगे इस लोभसे ३) लगा दिये पत्ता हमारा नहीं आया। ३) चले गये। अब बचे दो रुपया सो विचार किया कि अब गलती न करो अन्यथा आपत्ति में फँस जाओगे। मनमें संतोष कर वहाँसे चल दिया। किसी तरह कष्टोंको सहते हुए बैतूल पहुँचे।

उन दिनों अन्न सस्ता था। दो पैसेमें ऽ॥ जवारीका आटा मिल जाता था। उसकी रोटी खाते हुए मार्ग तय करते थे। जब बैतूल पहुँचे तब ग्रामके बाहर सड़कपर कुली लोग काम कर रहे थे। हमने विचार किया कि यदि हम भी इस तरहका काम

करें तो हमें भी कुछ मिल जाया करेगा। मेटसे कहा—'भाई ! हमको भी लगालो' दयालु था, उसने हमको भी एक गेंती दे दी और कहा कि 'मिट्टी खोदकर इन औरतोंकी टोकनीमें भरते जाओ। तीन आने शामको मिल जावेंगे।' मैंने मिट्टी खोदना आरम्भ किया और एक टोकनी किसी तरहसे भर कर उठा दी, दूसरी टोकनी नहीं भर सका। अन्तमें गेंतीको वहीं पटक कर रोता हुआ आगे चल दिया। मेटने दयाकर बुलाया—'रोते क्यों हो ? मिट्टीको ढोओ दो आना मिल जावेंगे।' परन्तु वह भी न बन पड़ा तब मेटने कहा—'आपकी इच्छा सो करो।' मैंने कहा—'जनाब बन्दगी, जाता हूँ।' उसने कहा—'जाइये, यहाँ तो हट्टे कट्टे पुरुषोंका काम है।'

उस समय अपने भाग्यके गुण गान करता हुआ आगे बढ़ा, कुछ दिन बाद ऐसे स्थानपर पहुँचा जहाँपर जिनालय था। जिनालयमें श्री जिनेन्द्र देवके दर्शन किये। पश्चात् यहाँसे गजपन्थाके लिए प्रस्थान कर दिया। मार्गमें कैसे कैसे कष्ट उठाये उनका इसीसे अनुमान कर लो कि जो ज्वर एक दिन बाद आता था वह अब दो दिन बाद आने लगा। इसको हमारे देशमें तिजारी कहते हैं। उसमें इतनी ठंडी लगती है कि चार सोड़रोंसे भी नहीं जाती, पर पासमें एक भी नहीं थी। साथमें पकनूँ खाज हो गई, शरीर कृश हो गया। इतना होनेपर भी प्रतिदिन २० मील चलना और खाने को दो पैसेका आटा। वह भी कभी ज्वारका और कभी बाजरेका और वह भी बिना दाल सागका। केवल नमक की कंकरी साग थी। घी क्या कहलाता है ? कौन जाने, उसके दो माससे दर्शन भी न हुये थे। दो मास से दालका भी दर्शन न था। किसी दिन रूखी रोटी बनाकर रक्खी और खानेकी चेष्टा की कि तिजारी महारानीने दर्शन देकर कहा—'सो जाओ, अनधिकार चेष्टा न करो, अभी

तुम्हारे पाप कर्मका उदय है, समतासे सहन करो।'

पापके उदयकी पराकाष्ठाका रूप यदि देखा तो मैंने देखा। एक दिनको बात है—सघन जङ्गलमें जहाँपर मनुष्योंका संचार न था, एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गया। वहीं बाजरेके चूनकी लिट्टी लगाई, खाकर सो गया। निद्रा भङ्ग हुई, चलनेको उद्यमी हुआ इतनेमें भयङ्कर ज्वर आ गया। बेहोश पड़ गया। रात्रिके नौ बजे होश आया। भयानक वनमें था। सुध बुध भूल गया। रात्रिभर भयभीत अवस्थामें रहा। किसी तरह प्रातःकाल हुआ।

गजपन्था

श्री भगवान् का स्मरणकर मार्गमें अनेक कष्टोंकी अनुभूति करता हुआ श्री गजपन्थाजी पहुँच गया और आनन्दसे धर्मशालामें ठहर गया।

वहाँ पर आरवीके एक सेठ ठहरे थे। प्रातःकाल उनके साथ पर्वतकी वन्दनाको चला, आनन्दसे यात्रा समाप्त हुई। धर्मकी चर्चा भी अच्छी तरहसे हुई। आपने कहा—'कहाँ जाओगे?' मैंने कहा–'श्री गिरिनारजीकी यात्राको जाऊँगा।' कैसे जाओगे? 'पैदल जाऊँगा।' उन्होंने मेरे शरीरकी अवस्था देखकर बहुत ही दयाभावसे कहा—'तुम्हारा शरीर इस योग्य नहीं। अच्छा इस विषयमें फिर बातचीत होगी, अभी तो चलें भोजन करें, आज तुम्हें मेरे ही डेरे में भोजन करना होगा।' स्थान पर आकर उनके यहाँ आनन्दसे भोजन किया। तीन माससे मार्गके खेदसे खिन्न था तथा जबसे माँ और स्त्रीको छोड़ा मड़ावरासे लेकर मार्गमें आज ही वैसा भोजन किया। दरिद्रको निधि मिलनेमें जितना हर्ष होता है उससे भी अधिक हर्ष मुझे भोजन करने में हुआ।

भोजनके अनन्तर वह मन्दिरके भण्डारमें द्रव्य देनेके लिये गये। पाँच रुपये मुनीमको देकर उन्होंने जब रसीद ली तब मैं भी वहीं बैठा था। मेरे पास केवल एक आना था। और वह इस लिये बच गया था कि आजके दिन आरवीके सेठके यहाँ भोजन किया था। मैंने विचार किया कि यदि आज अपना निजका भोजन करता तो यह एक आना खर्च हो जाता और ऐसा मधुर भोजन भी नहीं मिलता, अतः इसे भण्डारमें दे देना अच्छा है। निदान, मैंने वह एक आना मुनीमको दे दिया। मैंने अन्तरङ्गसे दिया था अतः उस एक आनाके दानने मेरा जीवन पलट दिया।

●

७

मोहमयोंकी मायामें

सेठजी कपड़ा खरीदने बम्बई जारहे थे। उन्होंने मुझसे कहा—'बम्बई चलो वहाँसे गिरनारजी चले जाना।' उनके आग्रह करने पर मैंने भी उन्हींके साथ बम्बईके लिये प्रस्थान कर दिया। नासिक होता हुआ रात्रिके नौ बजे बम्बईके स्टेशन पर पहुँचा। सेठजीके साथ घोड़ागाड़ीमें बैठ कर जहाँ सेठ साहब ठहरे उसी मकानमें ठहर गया। प्रातःकाल सामान लेकर मन्दिर गया, नीचे धर्मशालामें सामान रखकर ऊपर दर्शन करने गया। सेठजी आठ आने देकर चले गये।

मैं किंकर्तव्यविमूढ़की तरह स्वाध्याय करने लगा। इतनेमें ही एक बाबा गुरुदयालसिंह जो खुरजाके रहनेवाले थे मेरे पास आये और पूछने लगे—'कहाँसे आये हो? और बम्बई आकर

क्या करोगे ?' मुझसे कुछ नहीं कहा गया प्रत्युत गद्गद हो गया। श्रीयुत लाला गुरुदयालसिंहजीने कहा—'हम आध घंटा बाद आवेंगे तुम यहीं मिलना।' मैं शान्तिपूर्वक स्वाध्याय करने लगा।

उनकी अमृतमयी वाणीसे इतनी तृप्ति हुई कि सब दुःख भूल गया। आध घंटाके बाद बाबाजी आगये और दो धोती, दो जोड़े दुपट्टे, रसोईके सब बर्तन, आठ दिनका भोजनका सामान, सिगड़ी कोयला तथा दस रुपया नकद देकर बोले आनन्दसे भोजन बनाओ कोई चिन्ता न करना हम तुम्हारी सब तरहसे रक्षा करेंगे। अशुभ कर्मके विपाकमें मनुष्योंको अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ता है और जब शुभ कर्मका विपाक आता है तब अनायास जीवोंको सुख सामग्रीका लाभ हो जाता है। कोई न कर्ता है, न हर्ता है। देखो, हम खुरजाके निवासी हैं। आजीविकाके निमित्त बम्बई रहते हैं। दलाली करते हैं तुम्हें मन्दिरमें देख स्वयमेव हमारे यह परिणाम हो गये कि इस जीव की रक्षा करना चाहिये। आप न तो हमारे सम्बन्धी हैं, और न हम तुमको जानते ही हैं। तुम्हारे आचारादिसे भी भिज्ञ नहीं हैं फिर भी हमारे परिणामोंमें तुम्हारी रक्षाके भाव हो गये। इससे अब तुम्हें सब तरहकी चिन्ता छोड़ देना चाहिये तथा श्रीजिनेन्द्र देवके प्रतिदिन दर्शनादि कर स्वाध्यायमें उपयोग लगाना चाहिये। तुम्हारी जो आवश्यकता होगी हम उसकी पूर्ति करेंगे। इत्यादि वाक्यों द्वारा मुझे संतोष कराके चले गये।

तीन घण्टे बाद बाबा गुरुदयालजी आ गये और १०० कापियाँ देकर यह कह गये कि इन्हें बाजारमें जाकर फेरीमें बेच आना। छह आनासे कममें न देना। यह पूर्ण हो जानेपर मैं

और ला दूँगा। उन कापियोंमें रेशम आदि कपड़ोंके नमूने विलायतसे आते थे।

मैं शामको बाजारमें गया और एक ही दिनमें बीस कापी बेच आया। कहनेका यह तात्पर्य है कि छः दिनमें वे सब कापियाँ बिक गईं और उनकी बिक्रीके मेरे पास ३१.३७ न० पै० हो गये। अब मैं एकदम निश्चिन्त हो गया।

यहाँ पर मन्दिरमें एक जैन पाठशाला थी। जिसमें श्री जीवाराम शास्त्री गुजराती अध्यापक थे। वे संस्कृतके प्रौढ़ विद्वान् थे। साथमें श्री गुरुजी पन्नालाल वाकलीवाल सुजानगढ़-वाले ऑनरेरी धर्म शिक्षा देते थे। कातन्त्र व्याकरण श्रीयुत शास्त्री जीवारामजीसे पढ़ना प्रारम्भ कर दिया, और रत्नकरण्ड-श्रावकाचार श्री पण्डित पन्नालालजीसे पढ़ने लगा। मैं पण्डित-जीको गुरुजी कहता था।

बाबा गुरुदयालजीसे मैंने कहा—'बाबाजी! मेरे पास ३१.३७ न० पै० कापियोंके आ गये। १०) आप दे गये थे। अब मैं भाद्रमास तकके लिये निश्चिन्त हो गया। आपकी आज्ञा हो तो मैं संस्कृत अध्ययन करने लगूँ।' उन्होंने हर्षपूर्वक कहा—'बहुत अच्छा विचार है, कोई चिन्ता मत करो, सब प्रबन्ध कर दूँगा, जिस किसी पुस्तककी आवश्यकता हो। हमसे कहना।'

मैं आनन्दसे अध्ययन करने लगा और भाद्रमासमें रत्न-करण्डश्रावकाचार तथा कातन्त्र व्याकरणकी पञ्चसन्धिमें परीक्षा दी। उसी वर्ष बम्बई परीक्षालय खुला था। रिजल्ट निकला। मैं दोनों विषयोंमें उत्तीर्ण हुआ साथमें पच्चीस रुपये इनाम भी मिला। समाज प्रसन्न हुई।

श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजी वरैया उस समय वहीं पर रहते थे। आप बहुत ही सरल तथा जैनधर्मके मार्मिक

पण्डित थे, साथमें अत्यन्त दयालु भी थे। वह मुझसे बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि 'तुम आनन्दसे विद्याध्ययन करो, कोई चिन्ता मत करो। वह एक साहबके आफिसमें काम करते थे। साहब इनसे अत्यन्त प्रसन्न था। पण्डितजीने मुझसे कहा 'तुम शामको मुझे आफिसमें बियालू ले आया करो तुम्हारा जो मासिक खर्च होगा मैं दूँगा। यह न समझना कि मैं तुम्हें नौकर समझूँगा।' मैं उनके समक्ष कुछ नहीं कह सका।

परीक्षाफल देखकर देहलीके एक जवेरी लक्ष्मीचन्द्रजीने कहा कि—'दस रुपया मासिक हम बराबर देंगे तुम सानन्द अध्ययन करो।' मैं अध्ययन करने लगा किन्तु दुर्भाग्यका उदय इतना प्रबल था कि बम्बईका पानी मुझे अनुकूल न पड़ा। शरीर रोगी हो गया।

पूना चला गया। धर्मशालामें ठहरा। एक जैनीके यहाँ भोजन करने लगा। वहाँ की जलवायु सेवन करनेसे मुझे आराम हो गया। पश्चात् एक मास बाद मैं बम्बई आ गया। यहाँ कुछ दिन ठहरा कि फिरसे ज्वर आने लगा।

श्री गुरुजीने मुझे अजमेरके पास केकड़ी है, वहाँ भेज दिया। यहाँ पर औषधालयमें जो वैद्यराज दौलतरामजी थे वह बहुत ही सुयोग्य थे। वैद्यराजने मूंगके बराबर गोली दी और कहा इसे खा लो तथा ऽ४ दूधकी एक छटाक चावल डालकर खीर बनाओ और जितनी खाई जावे खाओ। कोई विकल्प न करना।' मैंने दिन भर खीर खाई। पेट खूब भर गया। रात्रिको आठ बजे वमन हो गया। उसी दिनसे रोग चला गया। पन्द्रह दिन केकड़ीमें रहकर जयपुर चला गया।

८

पुनः विद्यार्थी वेषमें

जयपुर

जमुनाप्रसादजी कालाने श्री वीरेश्वर शास्त्रीके पास—जो कि राज्यके मुख्य विद्वान् थे—मेरा पढ़नेका प्रबन्ध कर दिया। मैं आनन्दसे जयपुरमें रहने लगा। यहाँपर सब प्रकारकी आपत्तियोंसे मुक्त हो गया। यहाँ श्रीनेकरजी की दूकान का कलाकन्द भारतमे प्रसिद्ध था। मैंने एक पाव कलाकन्द लेकर खाया। अत्यन्त स्वाद आया। फिर दूसरे दिन भी एक पाव खाया। कहनेका तात्पर्य यह है कि मैं बारह मास जयपुरमें रहा परन्तु एक दिन भी उसका त्याग न कर सका। अतः मनुष्योंको उचित है कि ऐसी प्रकृति न बनावें जो कष्ट उठानेपर भी उसे त्याग न सकें। जयपुर छोड़नेके बाद ही वह आदत छूट सकी।

यहाँपर मैंने बारह मास रहकर श्रीवीरेश्वरजी शास्त्रीसे कातन्त्र व्याकरणका अभ्यास किया और श्रीचन्द्रप्रभ चरित भी पाँच सर्ग पढ़ा। श्रीतत्त्वार्थसूत्रजीका अभ्यास किया और एक अध्याय श्री सर्वार्थसिद्धिका अध्ययन किया। इतना पढ़ कर बम्बईकी परीक्षामें बैठ गया।

जब कातन्त्र व्याकरणका प्रश्नपत्र लिख रहा था तब एक पत्र मेरे ग्रामसे आया। उसमें लिखा था कि तुम्हारी स्त्रीका देहावसान हो गया। मुझे अपार आनन्द हुआ। मैंने मन ही मन कहा—हे प्रभो! आज मैं बन्धनसे मुक्त हुआ। यद्यपि अनेक बन्धनोंका पात्र था परन्तु यह बन्धन ऐसा था जिससे

मनुष्यकी सर्व सुध-बुध भूल जाती है। उसी दिन श्रीबाईजीको एक पत्र सिमरा दिया कि अब मैं निशल्य होकर अध्ययन करूँगा। उन दिनों जयपुरमें एक महान् मेला हुआ था।

मेला इतना भव्य था कि मैंने अपनी पर्यायमें वैसा अन्यत्र नहीं देखा। उस मेलामें विद्वानों, सेठों आदि प्रमुख व्यक्तियोंका सद्भाव था। श्री महाराधिराज जयपुर नरेश भी पधारे थे। आपने मेलाकी सुन्दरता देख बहुतही प्रसन्नता व्यक्त की थी, तथा श्रीजिन बिम्बको देखकर स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा था कि— 'शुभ ध्यानकी मुद्रा तो इससे उत्तम संसारमें हो ही नहीं सकती। जिसे आत्मकल्याण करना हो वह इस प्रकार की मुद्रा बनानेका प्रयत्न करे। मैं यही भावना भाता हूँ कि मैं भी इसी पदको प्राप्त होऊँ।'

द्रव्यका होना तो पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे होता है परन्तु उसका सदुपयोग बिरले ही पुण्यात्माओंके भाग्यमें होता है। जो वर्तमानमें पुण्यात्मा हैं वही मोक्षमार्गके अधिकारी हैं। संपत्ति पाकर मोक्षमार्गका लाभ जिसने लिया। उसी नर-रत्नने मनुष्य जन्मका लाभ लिया।

बम्बईका परीक्षाफल निकला। श्री जीके चरणोंके प्रसादसे मैं परीक्षामें उत्तीर्ण हो गया। महती प्रसन्नता हुई। श्रीमान् पण्डित गोपालदासजीका पत्र आया कि मथुरामें दिगम्बर जैन महाविद्यालय खुलनेवाला है यदि तुम्हें आना हो तो आ सकते हो। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

आगरा

मैं श्री पण्डितजी की आज्ञा पाते ही आगरा चला गया और श्री गुरु पन्नालालजी वाकलीवाल भी आ गये। आप श्रीमान्

पं० बलदेवदासजीसे सर्वार्थसिद्धिका अभ्यास करने लगे। मैं भी आपके साथमें जाने लगा।

उन दिनों छापेका प्रचार जैनियोंमें न था। मुद्रित पुस्तक का लेना महान् अनर्थ का कारण माना जाता था अतः हाथसे लिखे हुये ग्रन्थों का पठन-पाठन होता था। हम भी हाथ की लिखी सर्वार्थसिद्धि पर ही अभ्यास करते थे।

गर्मीके दिन थे। पण्डितजीके घर जानेमें प्रायः पत्थरोंसे पटी हुई सड़क मिलती थी। पण्डितजीका मकान एक मीलसे अधिक दूर था अतः मैं जूता पहिने ही हस्त लिखित पुस्तक लेकर पण्डितजीके घर पर जाता था। यहाँ पर श्रीमान् पं० नन्दरामजी रहते थे जो कि अद्वितीय हकीम थे। जैनधर्मके विद्वान् तथा सदाचारी भी थे।

एक दिन मैं पण्डितजीके पास पढ़ने को जा रहा था। दैव-योग से आप मिल गये। कहने लगे—'कहाँ जाते हो?' मैंने कहा— 'महाराज! पण्डितजीके पास पढ़नेको जा रहा हूँ' बग-लमें क्या है?' मैंने कहा—'पाठ्य पुस्तक सर्वार्थसिद्धि है।' आपने मेरा वाक्य श्रवण कर कहा—'पञ्चम काल है, ऐसा ही होगा, तुमसे धर्मोन्नति की क्या आशा हो सकती है? और पण्डितजी-से क्या कहें?' मैंने कहा—'महाराज निरुपाय हूँ।' उन्होंने 'इससे तो निरक्षर अच्छा।' मैंने कहा—'महाराज! अभी गर्मीका प्रकोप है पश्चात् यह अविनय न होगी।'

ऐसी ही एक गलती और हो गई वह यह कि मथुरा विद्या-लयमें पढ़ानेके लिए श्रीमान् पं० ठाकुरप्रसादजी शर्मा उन्हीं दिनों यहाँ पर आये थे। आपके भोजनादिको व्यवस्था श्रीमान् वरैयाजीने मेरे जिम्मे कर दी। चतुर्दशी का दिन था। पण्डितजीने कहा—'बाजारसे पूड़ी तथा साग लाओ। मैं बाजार

गया और हलवाई के यहाँसे पूड़ी तथा साग ले आ रहा था कि मार्गमें दैवयोगसे वही श्रीमान् पं० नन्दरामजी साहब पुनः मिल गये। पण्डितजी साहब अत्यन्त कुपित हुए। बोले—हम पं० गोपालदासजीसे तुम्हारे अपराधोंका दण्ड दिलाकर तुम्हें मार्गपर लावेंगे। यदि मार्गपर न आये तो तुम्हें पृथक् करा देंगे।

मैं उनकी मुद्रा देखकर बहुत खिन्न हुआ परन्तु हृदयने यह साक्षी दी कि 'भय मत करो तुमने कोई अपराध नहीं किया—तुमने तो नहीं खाया, गुरुजीकी आज्ञासे तुम लाये हो। श्रीमान् पं० गोपालदासजी महान् विवेकी और दयालु जीव हैं वह तुम्हें पृथक् न करेंगे। ऐसे-ऐसे अपराधों पर यदि छात्र पृथक् किये जाने लगे तो विद्यालयमें पढ़ेगा ही कौन ?' इत्यादि ऊहापोह चित्तमें होता रहा पर अन्तमें सब शान्त हो गया।

एक दिन मैंने कह ही दिया कि 'महाराज ! मुझसे दो अपराध बन गये हैं—एक तो यह है कि मैं दोपहरीके समय जूता पहिने धर्मशास्त्रकी पुस्तक लेकर पण्डितजीके यहां पढ़नेके लिए जाता हूँ और दूसरा यह कि चतुर्दशीके दिन श्रीमान् पं० ठाकुरप्रसादजीके लिये आलू तथा बेंगनका साग लाया। क्या इन अपराधोंके कारण आप मुझे खुलने वाले विद्यालयमें न रक्खेंगे ?

पण्डितजी सुनकर हँस गये और मधुर शब्दोंमें कहने लगे कि, क्या श्री पं० नन्दरामजीने तुम्हें साग लाते हुए देख लिया है ?' मैंने कहा—'हां महाराज ! बात तो यही है।' तूंने तो नहीं खाया'—उन्होंने पूछा। 'नहीं महाराज ! मैंने नहीं खाया और न मैं कभी खाता ही हूँ—मैंने स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया। पण्डितजीने प्रेम प्रदर्शित करते हुए कहा कि 'सन्तोष करो, चिन्ता छोड़ो, जो पाठ दिया जावे उसे याद करो, तुम्हारे वह सब अपराध माफ किये जाते हैं। आगामी यदि अष्टमी या चतुर्दशी

का दिन हो तो कहारको ले जाया करो और जो भी काम करो विवेकके साथ करो। जैनधर्मका लाभ बड़े पुण्योदयसे होता है।

मथुरा

श्रीमान् पं० गोपालदासजी वरैया स्वाभिमानी एवं प्राचीन पद्धितके संरक्षक थे। आप ही के प्रभावसे बम्बई परीक्षालयकी स्थापना हुई, आपके ही सदुपदेशसे महाविद्यालयकी स्थापना हुई तथा आपके ही प्रयत्न और पूर्ण हस्तदानके द्वारा ही महासभा स्थापित एवं पल्लवित हुई।

आप विद्वान् ही न थे, लेखक भी थे। और परीक्षक भी प्रथम श्रेणीके थे। एक बारका जिक्र है—मैंने मथुरासे एक पत्र श्रीमान् पण्डितजीको इस आशयका लिखा कि 'बाईजीका स्वास्थ्य अत्यन्त ख़राब है अतः उन्होंने मुझे १५ दिनके लिये सिमरा बुलाया है।' आपने उत्तर दिया कि 'बाईजीका जो पत्र आया है उसे हमारे पास भेज दो।' मैंने क्या किया ? एक पत्र बाईजीके हस्ताक्षरका लिखकर मथुरामें डाल दिया। दूसरे दिन वह पत्र चौरासीमें मुझे मिल गया। मैंने उसे ही लिफाफामें बन्दकर श्री पण्डितजीके पास भेज दिया। उन्होंने बाँचकर उत्तर लिखा कि 'तुम शीघ्र ही चले जाओ परन्तु जब देशसे लौटो तब आगरासे हमसे मिलकर मथुरा जाना।'

मैं जतारा गया और १५ दिन बाद आगरा आ गया। जब पण्डितजीसे मिला तब उन्होंने मुसकराते हुए पूछा 'बाईजीका स्वास्थ्य अच्छा है ?' मैंने कहा 'हाँ महाराज ! अच्छा है।' पण्डितजीने कहा 'अच्छा यह श्लोक याद कर लो और फिर विद्यालय चले जाओ।' श्लोक यह था—

उपाध्याये नटे धूर्त्ते, कुट्टिन्यां च तथैव च।
माया तत्र न कर्तव्या माया तैरेव निर्मिता॥

एक ही बारमें श्लोक याद हो गया साथ ही भाव भी समझ में आ गया। मैंने गुरुजासे महती नम्र प्रार्थना की कि 'महाराज मैंने बड़ी गलती की है जो आपको मिथ्या पत्र देकर असभ्यताका व्यवहार किया।' गुरुजीने कहा—'जाओ हम तुमसे खुश हैं, यदि इस प्रकारकी प्रकृतिको अपनाओगे तो आजन्म आनन्दसे रहोगे। हम तुम्हारे व्यवहारसे सन्तुष्ट हैं और तुम्हारा अपराध क्षमा करते हैं। तुम्हें जो कष्ट हो हमसे कहो हम निवारण करेंगे। जितने छात्र हैं हम उन्हें पुत्रसे भी अधिक समझते हैं। यदि अब जैनधर्मका विकास होगा तो इन्हीं छात्रोंके द्वारा होगा, इन्हींके द्वारा धर्मशास्त्र तथा सदाचारकी परिपाटी चलेगी। मैं तुम्हें दो रुपया मासिक अपनी ओरसे दुग्ध-पान के लिये देता हूँ।' मैं मथुरा चल गया।

आज जो जयधवलादि ग्रन्थोंकी भाषा टीका हो रही है वह आपके द्वारा व्युत्पन्न-शिक्षित विद्वानोंके द्वारा ही हो रही है। वह आपका ही भगीरथ प्रयत्न था जो आज भारतवर्षके जैनियों में करणानुयोगका प्रचार हो रहा है। अस्तु आपके विषयमें कहाँ तक लिखूँ। आपने मेरा जो उपकार किया है उसे मैं आजन्म नहीं भूल सकता।

खुरजा

मैं मथुरा विद्यालयमें अध्ययन करता था। यहाँ दो वर्ष रहा पश्चात् कारणवश खुरजा चला गया। उस समय जैन समाजमें श्री रानीवालों की कीर्ति दिगदिगन्त तक फैल रही थी। आपके यहाँ संस्कृत पढ़ानेका पूर्ण प्रबन्ध था। श्रीमान् स्वर्गीय मेवारामजी साहब रानीवाले संस्कृत विद्याके अपूर्व प्रेमी थे।

खुरजामें एक ब्राह्मणोंकी भी संस्कृत पाठशाला थी, छात्रोंको सब प्रकारकी सुविधा थी। यहाँपर मैं दो वर्ष पढ़ा। बनारस की प्रथमा परीक्षा तथा न्यायमध्यमाका प्रथम खण्ड यहींसे पास किया। यद्यपि मुझे यहाँ सब प्रकारकी सुविधा थी परन्तु फिर भी खुरजा छोड़ना पड़ा।

शिखरजी की यात्रा

एक दिनकी बात है—मैंने एक ज्योतिषीसे पूछा—'बतलाइये, मैंने न्याय मध्यमाके प्रथम खण्डमें परीक्षा दी है, पास हो जाऊँगा ?' ज्योतिषीने कहा—'पास हो जाओगे पर यह निश्चित है कि तुम वैशाख सुदि १३ के ९ बजेके बाद खुरजा नहीं रह सकोगे—चले जाओगे।' 'मैं आपके निर्णयको मिथ्या कर दूंगा'....मैंने हँसते हुए कहा। उस दिनसे मुझे निरन्तर यह चिन्ता रहने लगी बैशाख सुदि १३ की कथाको मिथ्या करना है।

बैशाख सुदि १२ के दोपहरका समय था, अचानक बहुत ही भयानक स्वप्न आया। निद्रा भंग होते ही मनमें चिन्ता हुई कि यदि असमयमें मरण हो जावेगा तो शिखरजीकी यात्रा रह जावेगी अतः शिखरजी अवश्य ही जाना चाहिये। कुछ देर बाद विचार आया कि कैसे जाऊँ ? गर्मीके दिन हैं, एकाकी जानेमें अनेक आपत्तियाँ हैं। मैं विचारमें मग्न ही था कि सेठ मेवारामजी आ गये। बोले गर्मीके दिन हैं, १८ मील की यात्रा कैसे करोगे ? मैंने कहा—जिस दिन हमारी यात्रा होगी उसके पहले रात्रिको मेघराज कृपा करेंगे ? मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि यात्राके ४ घंटा पहले अखंड जलधारा गिरेगी।

श्री सेठजी हँस गये और हँसते-हँसते बोले—'अच्छा, पानी बरसै तो हमें भी पत्र देना' प्रातःकाल हमने श्री जिनेन्द्रदेवके

दर्शन पूजन कर भोजन किया और साढ़े आठ बजे स्टेशन पर पहुँच गये। ९ बजे जब गाड़ी छूटने लगी तब याद आई कि ज्योतिषीने कहा था कि 'तुम बैशाख सुदि १३ को ९ बजेके बाद खुरजा न रह सकोगे तथा साथमें यह भी कहा था कि फिर खुर्जा नहीं आओगे।'

दूसरे दिन अलाहाबाद पहुँच गये। गंगा यमुना का संगम देखनेके लिऐ गये। हमारा जो साथी था, उसने कहा—चलो हम तुम भी स्नान करलें, हम दोनोंने गङ्गास्नान किया। घाटके पण्डेके पास वस्त्रादि रख दिये। जब स्नान कर चुके तब पंडा महाराजने दक्षिणा माँगी। हमने कहा—आपको कौन सा दान दिया जाय ? आप त्यागी तो हैं नहीं जिससे कि पात्र दान दिया जावे। करुणा दानके पात्र मालूम नहीं होते क्योंकि आपके शरीरमें रईसोंका प्रत्यय होता है फिर भी यदि आप नाराज होते हैं तो लीजिये यह एक रुपया है।'

शामको हम दोनों वहाँ से चले और पटना—सुदर्शन सेठके निर्वाणस्थान पर पहुँच गये। श्री सुदर्शन निर्वाण क्षेत्रकी वन्दना की। मध्याह्नमें भोजनादिसे निवृत्त होकर गिरेडीके लिए चल दिया।

श्री पार्श्वप्रभुकी निर्वाणभूमिका साधारण दर्शन तो गिरेडीसे ही हो गया था पर ज्यों ज्यों आगे बढ़ते थे त्यों त्यों स्पष्ट दर्शन होते जाते थे। श्री पार्श्वप्रभुके मन्दिर पर सर्व प्रथम दृष्टि पड़ती थी। मनमें ऐसी उमङ्ग आई कि यदि पङ्ख होते तो उड़कर इसी क्षण प्रभुके दर्शन करते। चित्तमें ऐसी भावना उत्पन्न हो रही थी कि कब प्रभुके चरणोंका स्पर्श करें। पैर उतावलीके साथ आगे बढ़ रहे थे, एक एक क्षण, एक एक दिन सा प्रतीत होता था।

अन्तमें मधुवन पहुँच गये। श्री पार्श्वप्रभुके दर्शन कर परम

आनन्दका अनुभव किया। रात्रिके नौ बजेसे लेकर दस बजे तक अखण्ड वर्षा हुई। मन आह्लादसे भर गया और हम दोनों पार्श्व-प्रभुके गुण गाने लगे। हृदयमें इस बातकी दृढ़ श्रद्धा हो गई कि 'अब तो पार्श्व प्रभुकी वन्दना सुख पूर्वक होगी। निद्रा नहीं आई, हम दोनों ही श्री पार्श्वके चरित्रकी चर्चा करते रहे। चर्चा करते करते ही एक बज गया उसी समय शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर स्वच्छ वस्त्र पहिने और एक आदमी साथ लेकर श्रीगिरि-राजकी वन्दनाके लिये प्रस्थान कर दिया। मार्गमें स्तुति पाठ किया।

स्तुतिपाठके अनन्तर मैं मन ही मन कहने लगा कि 'हे प्रभो! यह हमारी वन्दना निर्विघ्न हो जावे इसके उपलक्ष्यमें हम आपका पञ्चकल्याणक पाठ करेंगे। ऐसा सुनते हैं कि अधम जीवोंको वन्दना नहीं होती। यदि हमारी वन्दना नहीं हुई तो हम अधम पुरुषोंकी श्रेणीमें गिने जावेंगे; इत्यादि—कहते कहते श्री कुन्थु-नाम स्वामीके शिखर पर पहुँच गया। हम दोनोंने बड़े ही उत्साहके साथ श्री कुन्थुनाथ स्वामीकी टोंक पर देव, शास्त्र, गुरु का पूजन किया और वहाँसे अन्य टोंकोंकी वन्दना करते हुए श्रीचन्द्रप्रभुकी टोंकपर पहुँचे। अपूर्व दृश्य था। मनमें आया कि धन्य है उन महानुभावोंको जिन्होंने इन दुर्गम स्थानोंसे मोक्ष लाभ लिया।

श्री चन्द्रप्रभ स्वामीकी पूजनकर शेष तीर्थंकरोंकी वन्दना करते हुए जलमन्दिर आये। वहाँसे वन्दना कर श्रीपार्श्वनाथकी टोंकपर पहुँच गये। पहुँचते ही ऐसी मन्द मन्द सुगन्धित वायु आई कि मार्गका परिश्रम एकदम चला गया। आनन्दसे पूजा की पश्चात् मनमें अनेक विचार आये परन्तु शक्तिकी दुर्बलतासे सब मनोरथ विफल हुए।

वन्दना निर्विघ्न होनेसे अनुपम आनन्द आया और मनमें जो यह भय था कि यदि वन्दना न हुई तो अधम पुरुषोंमें गणना की जावेगी, वह मिट गया। फिर वहाँसे चलकर ग्यारह बजे श्री मधुवनकी तेरापन्थी कोठीमें आगये। एक दिन आराम किया, फिर यह विचार हुआ कि परिक्रमा करना चाहिये, साथी ने भी स्वीकार किया, एक आदमीको भी साथ लिया और प्रातःकाल होते होते तीनोंने परिक्रमाके लिये प्रस्थान कर दिया। मार्ग भूल गये, तृषाने बहुत सताया, जो आदमी साथ था उसे भी मार्गका पता नहीं था, बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। हे भगवन् ! यह क्या आपत्ति आगई ?

जेठका महीना, मध्याह्नका समय, मार्गका परिश्रम, नीरस भोजनका प्रभाव आदि कारणोंसे पिपासा बढ़ने लगी, कण्ठ सूखने लगा, बेचैनीसे चित्तमें अनेक प्रकारके विचार आने लगे, कुछ स्थिर भाव नहीं रहा। फिर यह विचार आया कि श्री पार्श्वप्रभु संसारके विघ्नहर्ता हैं। हमें पानीके लिये भक्ति करना उचित न था परन्तु क्या करें ? उस समय तो हमें पानीकी प्राप्ति मुक्तिसे भी अधिक भान हो रही थी। अतः हमने याचना पार्श्वप्रभुसे की कि 'हे प्रभो ! जब कि आपकी भक्तिसे वह निर्वाणपद मिलता है जहाँ कि यह कोई रोग ही नहीं है, तब केवल पानी माँगनेवाले मनुष्यको पानी न मिले यह क्या न्याय है ? यदि इस समय मेरी अपमृत्यु हो गई तो यह लांछन किसे लगेगा ? आखिर जनसमुदाय यही तो कहेगा कि शिखरजीकी परिक्रमामें तीन आदमी पानीके बिना प्राण विहीन हो गये। मेरी यह भावना थी कि एकबार आपकी यात्रा करके मनुष्यजन्म सफल करूँ। मुझे सम्पत्तिकी इच्छा नहीं, एक लोटा पानी मिल जावे यही विनय है। हे दीनबन्धो ! कृपा कीजिये जिससे कि पानीका कुण्ड मिल जावे, इत्यादि विकल्पोंने आत्माकी दशा चिन्तातुर

बना दी। इतनेमें अन्तरात्मासे यह उत्तर मिला यह पार्श्वनाथका दरबार है, इसमें कष्ट होनेका विकल्प छोड़ो। जो बीचमें गली है उसीसे प्रस्थान करो अवश्य ही मनोभिलषितकी पूर्ति हो जावेगी।

हम तीनों एक फर्लाङ्ग चले होंगे कि सामने पानीसे लबालब भरा हुआ एक कुंड दिखाई पड़ा। देखकर हर्षका पारावार न रहा, मानों अन्धेको नेत्र मिल गये हों या दरिद्रको निधि। एक-दम तीनों आदमी कुण्डके तटपर बैठ गये। देखकर ही तृषाकी शान्ति हो गई। थोड़ी देर बाद जलपान किया फिर प्रभु पार्श्वके गुण गान करने लगे—'धन्य है प्रभु तेरी महिमा' जब कि आपकी महिमा प्राणियोंको संसार बन्धनसे मुक्त कर देती है तब उससे यह क्षुद्र बाधा मिट गई इसमें आश्चर्य ही क्या है? हम मोही जीव संसारकी बाधाओंके सहनेमें असमर्थ हैं अतः इन क्षुद्र कार्योंकी पूर्तिमें ही भक्तिके अचिन्त्य प्रभावोंको खो देते हैं।

आनन्दसे कुण्डके किनारे आराम में तीन घण्टे बिता दिये, पश्चात् भोजन कर श्री णमोकर मन्त्रकी माला फेरी। दिन अस्त हो गया। तीनों आदमी वहाँसे मधुवनको चल दिये और डेढ़ घंटेमें मधुवन पहुँच गये। सुखपूर्वक वन्दना और परिक्रमा कर हम बहुत ही कृतकृत्य हुए। मनमें यह निश्चय किया कि एक बार फिर पार्श्वप्रभु के निर्वाण क्षेत्रकी वन्दना करूंगा।

मैंने प्रायः बहुतसे सिद्ध क्षेत्रोंकी वन्दना की है परन्तु परि-णामोंकी जो निर्मलता यहाँ हुई उसकी उपमा अन्यत्र नहीं मिलती। प्रातःकाल प्रभु पार्श्वनाथके दर्शन पूजन कर मैं मऊ चला गया और साथी खुरजा को। श्री शिखरजीकी मेरी यह यात्रा सम्वत् १९५२ में हुई थी।

मऊसे श्री बाईजीके यहाँ सिमरा पहुँच गया। डेढ़ मास सिमरामें सानन्द बिताया।

टीकमगढ़

अनन्तर यह सुना कि टीकमगढ़में मैथिल देशके बड़े भारी विद्वान् दुलार झा राजाके यहाँ प्रमुख विद्वान् हैं और न्याय-शास्त्रके अपूर्व विद्वान् हैं। मैं उनके पास चला गया, दुलार झा बहुत ही व्युत्पन्न और प्रतिभाशाली विद्वान् थे। उन्होंने लगातार पच्चीस वर्ष तक नवद्वीप (नदिया-शान्तिपुर) में न्यायशास्त्रका अध्ययन किया था।

उनके पास मैंने मुक्तावली, पञ्चलक्षणी, व्यधिकरणादि ग्रन्थों का अध्ययन किया। उनकी मेरे ऊपर बहुत अनुकम्पा थी परन्तु उनके एक व्यवहारसे मेरी उनमें अरुचि हो गई। चूँकि वे मैथिल थे अतः बलि प्रथाके पोषक थे—देवीको बकरा चढ़ानेका पोषण करते थे। मैंने कहा—जीवोंकी रक्षा करना ही तो धर्म है। जहाँ जीव घातमें धर्म माना जावे वहाँ जितनी भी बाह्य क्रियायें हैं सब विफल हैं। धर्म तो वह पदार्थ है जिसके द्वारा यह प्राणी संसार बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जहाँ प्राणीका बध धर्म बताया जावे वहाँ दयाका अभाव निश्चित है, जहाँ दयाका अभाव है वहाँ धर्म का अंश नहीं, जहाँ धर्म नहीं वहाँ संसारसे मुक्ति नहीं अतः महाराज ! आप इतने विद्वान् होकर भी इन असत् कर्मोंकी पुष्टि करते हैं—यह सर्वथा अनुचित है।'

बहुत कुछ बात हुई पर उनका प्रभाव न हमपर पड़ा और न हमारा प्रभाव उनपर पड़ा। अन्तमें मैंने यही निश्चय किया कि यहाँसे अन्यत्र चला जाना ही उत्तम है। बश, क्या था ? वहाँसे चलकर सिमरा आ गया।

हरिपुर

सम्वत् १९६० की बात है, बाईजीसे आज्ञा लेकर श्रीमान् पं० ठाकुरदासजीसे यहाँ हरिपुर चला गया। आनन्दसे प्रमेय-कमलमार्तण्ड पढ़ने लगा। सिद्धान्तकौमुदी का भी कुछ अंश पढ़ा था। पण्डितजी इसी समय योगवाशिष्ठकी हिन्दी टीका करते थे। मैंने भी कुछ उसे पढ़ा, वेदान्त विषयक चर्चा उसमें थी। पण्डितजीके घर पर मैं तीन या चार मास रहा। एक दिन पण्डितजीने कहा—हाथसे भोजन मत बनाया करो, तुम्हारी माँ बना देंगी।

माँजीने भी कहा—बेटा! क्यों कष्ट उठाते हो? हमारे यहाँ भोजन कर लिया करो। मैंने कहा—माँजी ठीक है, परन्तु आपके यहाँ न तो पानी छाना जाता है और न ढीमरके जलका परहेज ही है साथ ही हमें शामको भोजन न मिल सकेगा। माँजीने बड़े प्रेमसे उत्तर दिया—जिसप्रकार तुम कहोगे उसी प्रकार भोजन बना दूँगी और हम लोग भी रात्रिका भोजन शामको ही कर लिया करेंगे, अतः तुम्हें शामका भोजन मिलनेमें कठिनाई न होगी। लाचार, मैंने उनके यहाँ भोजन करना स्वीकर कर लिया।

एक दिनकी बात है—पण्डितजीका एक शिष्य भङ्ग पीता था, उसने मुझसे कहा कि महादेवजीके साक्षात् दर्शन करना हों तो तुम भी एक गोली खा लो। मैंने विचार किया कि मुझे भी श्रीजिनेन्द्रदेवके साक्षात् दर्शन होने लगेंगे ऐसा विचार कर मैंने भांगकी एक गोली खा ली। एक घण्टा बाद जब भांगका नशा आ गया, जाकर खाटपर लेट गया। पण्डितजीने माँजीसे कहा 'देखो, आज इसने भंग खा ली है अतः इसे दही और खटाई खिला दो।' मैंने उस नशाकी दशामें भी विचार किया कि

मैं तो रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ लेता नहीं पर आज प्रतिज्ञा भंग होती दिखती है। उक्त विचार मनमें आया था कि पण्डितजी महराज दही और खटाई लेकर पहुँच गये तथा कहने लगे—'लो, यह खटाई व दही खालो, तुम्हारा नशा उतर जावेगा।' मैंने कहा—'महाराज ! मैं तो रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ भी नहीं लेता, यह दही-खटाई कैसे ले लूं ? पण्डितजीने डाँटते हुए कहा—'भंग पीनेको जैनी न थे।' मैंने कहा—महाराज मैं शास्त्रार्थ नहीं करना चाहता, कृपा कर मुझे शयन करने दीजिये।' पण्डितजी विवश होकर चले गये, मैं पछताता हुआ पड़ा रहा—बड़ी गलती की जो भंग पीकर पण्डितजीकी अविनय की। किसी तरह रात्रि बीत गई प्रातः-काल सोकर उठा। पण्डितजीके चरणोंमें पड़ गया और बड़े दुःखके साथ कहा कि महाराज ! मुझसे बड़ी गलती हुई।

वहाँ पर कुछ दिन रहकर सं. १९६१ में बनारस चला गया।

काशी

उस समय क्वीन्स कालेजमें न्यायके मुख्य अध्यापक जीव-नाथ मिश्र थे। बहुत ही प्रतिभाशाली विद्वान् थे। आपकी शिष्य मण्डलीमें अनेक शिष्य प्रखर बुद्धिके धारक थे। एक दिन मैं उनके निवास स्थानपर गया और प्रणाम कर महाराजसे निवेदन किया कि महाराज ! मुझे न्यायशास्त्र पढ़ना है, यदि आपकी आज्ञा हो तो आपके बताये हुए समयसे आपके पास आया करूँ। मैंने एक रुपया भी उनके चरणोंमें भेंट किया। पण्डित-जीने पूछा—कौन ब्राह्मण हो ?' निर्भीक होकर कहा—'महाराज ! मैं ब्राह्मण नहीं हूँ और न क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, यद्यपि मेरा कौलिक मत श्रीरामका उपासक था, परन्तु मेरे पिता तथा मेरा विश्वास जैनधर्ममें दृढ़ हो गया।

श्रीमान् नैयायिकजी एकदम आवेगमें आगये और रुपया फेंकते हुए बोले–'चले जाओ, हम नास्तिक लोगोंको नहीं पढ़ाते। तुम्हारे साथ सम्भाषण करना भी प्रायश्चित्तका कारण है, जाओ यहाँ से।'

मैंने कहा—'महाराज! इतना कुपित होनेकी बात नहीं। आखिर हम भी तो मनुष्य हैं, इतना आवेग क्यों? आप विद्वान् हैं, राजमान्य हैं, ब्राह्मण हैं तथा उस देशके हैं जहाँ ग्राम-ग्राममें विद्वान् हैं, फिर भी प्रार्थना करता हूँ कि आप शयन समय विचार कीजियेगा कि मनुष्यके साथ ऐसा अनुचित व्यवहार करना क्या सभ्यताके अनुकूल था। समयकी बलवत्ता है कि जिस धर्मके प्रवर्तक वीतराग सर्वज्ञ थे और जिस नगरीमें श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरका जन्म हुआ था आज उसी नगरीमें जैनधर्मके माननेवालोंका इतना तिरस्कार?

अन्तमें उन्होंने यही उत्तर दिया कि यहाँसे चले जाओ इसीमें तुम्हारी भलाई है। मैं चुपचाप वहाँसे चल दिया और मार्गमें भाग्यकी निन्दा तथा पञ्चम कालके दुष्प्रभावकी महिमाका स्मरण करता हुआ श्री मन्दाकिनी आकर कोठरीमें रुदन करने लगा पर सुननेवाला कौन था?

मनमें आता—कि हे प्रभो! क्या करें? कहाँ जावें? कोई उपाय नहीं सूझता। क्या आपकी जन्म नगरीसे मैं विफल मनोरथ ही देशको चला जाऊँ? इस तरहके विचार करते-करते कुछ निद्रा आ गई। स्वप्नमें क्या देखता हूँ कि—

एक सुन्दर मनुष्य सामने खड़ा है, कहता है—'क्यों भाई! उदास क्यों हो?' मैंने कहा—'आपको क्या प्रयोजन? न आपसे हमारा परिचय है और न आपसे हम कुछ कहते हैं, फिर आपने कैसे जान लिया कि मैं उदासीन हूँ?' उस भले आदमीने कहा

कि 'तुम्हारा मुख वैवर्ण्य तुम्हारे शोकको कह रहा है। मैंने उसे इष्ट समझकर नैयायिक महाराजकी पूरी कथा सुना दी। उसने सुनकर कहा—'रोनेसे किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होती, पुरुषार्थ करनेसे मोक्षलाभ हो जाता है फिर विद्याका लाभ कौनसी भारी बात है।' तुम्हारे परम हितैषी बाबा भागीरथजी हैं उन्हें बुलाओ, उनके द्वारा तुमको बहुत सहायता मिलेगी। तुम दोनों यहाँपर एक पाठशाला खोलनेका प्रयत्न करो, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारा मनोरथ श्रुतपञ्चमी तक नियमसे पूर्ण होगा।'

विशुद्ध परिमाणोंसे पुरुषार्थ करो, सब कुछ होगा, अच्छा, हम जाते हैं, इतनेमें निद्रा भङ्ग हो गई, देखा तो कहीं कुछ नहीं। प्रातःकालके ५ बजे होंगे, हाथ पैर धोकर श्रीपार्श्वप्रभुकी स्मृतिके लिये बैठ गया और इसीमें सूर्योदय होगया। उठकर विश्वनाथजीके मन्दिरका दृश्य देखनेके लिये चला गया। जाते-जाते मार्गमें एक श्वेताम्बर विद्यालय मिल गया। मैं उसमें चला गया। वहाँ देखा कि अनेक छात्र संस्कृत अध्ययन कर रहे हैं। मैंने पाठशालाध्यक्ष श्री धर्मविजय सूरिको विनयके साथ प्रणाम किया। आपने पूछा 'कौन हैं ?' यहाँ किस प्रयोजनसे आये ?' मैंने कहा—बनारस इस उद्देश्यसे आया हूँ कि संस्कृतका अध्ययन करूँ।' कल मैं एक नैयायिक महोदयके समीप गया था उन्होंने पढ़ाना स्वीकार भी कर लिया परन्तु जैनका नाम सुनते ही उन्होंने मर्मभेदी शब्दोंका प्रयोग कर अपने स्थानसे निकाल दिया यही मेरी रामकथा है। आज इसी चिन्तामें भटकता-भटकता यहाँ आगया हूँ।'

उन्होंने कहा—हमारे साथ चलो हम तुमको न्यायशास्त्रमें अद्वितीय व्युत्पन्न शास्त्रीके पास ले चलते हैं। वे हमारे यहाँ अध्यापक हैं।' मैं श्रीधर्मविजय सूरिके साथ श्री अम्बादासजी

शास्त्रीके पास पहुँच गया। आप छात्रोंको अध्ययन करा रहे थे, मैंने बड़ी नम्रताके साथ महाराजको प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए बैठनेका आदेश दिया और मेरे आनेका कारण पूछा। मैंने जो कुछ वृत्तान्त था अक्षरशः सुना दिया। शास्त्रीजीने कहा कि अभी ठहरो, एक घण्टा बाद हम यहाँसे चलेंगे तुम हमारे साथ चलना। शास्त्रीजी अध्ययन कराने लगे, मैं उनकी पाठन प्रणालीको देखकर मुग्ध हो गया। मनमें आया कि यदि ऐसे विद्वान्से न्यायशास्त्रका अध्ययन किया जावे तो अनायास ही महती व्युत्पत्ति हो जावे।

एक घण्टाके बाद श्री शास्त्रीजीके साथ पीछे-पीछे चलता हुआ उनके घर पहुँच गया। उन्होंने बड़े स्नेहके साथ बातचीत की और कहा कि तुम हमारे यहाँ आओ हम तुम्हें पढ़ावेंगे। उनके प्रेमसे ओत-प्रोत वचन श्रवणकर मेरा समस्त क्लेश एक-साथ चला गया। वहाँसे भदैनीके मन्दिर में जो अस्सीघाटके ऊपर है चला आया। और एक पत्र श्री बाबाजी को डाल दिया उस समय आप आगरा में रहते थे।

महाराज पत्र पाते ही बनारस आ गये।

●

९

स्याद्वाद विद्यालय

विद्यालय का जन्म

माघका महीना था, सर्दी खूब पड़ती थी। हम दोनों यही चर्चा करते थे कि कौनसे उपायों से काशी में एक दिगम्बर विद्यालय स्थापित हो जावे। इसे सुनकर झम्मनलालजी कामावा-

लोंने एक रुपया विद्यालयकी सहायताके लिये दिया। मैंने बड़ी प्रसन्नतासे वह रुपया ले लिया। मैंने श्री झम्मनलालजीको सहस्रों धन्यवाद दिये और मार्गमें ही पोस्टआफिससे ६४ पोस्ट-कार्ड ले लिये। रात्रिको ही ६४ पोस्टकार्ड लिखकर ६४ स्थानों पर भेज दिये। उनमें यह लिखा था कि—

वाराणसी जैसी विशाल नगरी में जहाँ हजारों छात्र संस्कृत विद्याका अध्ययन कर अपने अज्ञानान्धकारका नाश कर रहे हों वहाँ पर हम जैन छात्रोंको पढ़नेकी सुविधा न हो, जहाँ पर छात्रोंको भोजन प्रदान करनेके लिये सैकड़ों भोजनालय विद्य-मान हैं वहाँ अधिककी बात जाने दो पाँच जैन छात्रोंके लिये भी निर्वाह योग्य स्थान न हो, क्या हमारी दिगम्बर समाज १० या २० छात्रोंके अध्ययनका प्रबन्ध न कर सकेगी? आशा है आप लोग हमारी वेदनाका प्रतिकार करेंगे, यह मेरी एक की ही वेदना नहीं है किन्तु अखिल समाजके छात्रोंकी वेदना है।

एक मासके भीतर बहुतसे महानुभावोंके आशाजनक उत्तर आगये साथ ही १००) मासिक सहायता के भी वचन मिल गये। हम लोगोंके हर्षका ठिकाना न रहा, मारे हर्षके हृदय कमल खिल गये अब श्रीमान् गुरु पन्नालालजी वाकलीवालको भी एक पत्र लिखा। १० दिनके बाद आपका भी शुभागमन होगया। रात्रिदिन इसी विषयकी चर्चा होती थी, और इसी विष-यका आन्दोलन प्रायः समस्त दिगम्बर जैन पत्रोंमें कर दिया गया कि काशीमें एक जैन विद्यालय की महती आवश्यकता है।

कितने ही स्थानोंसे इस आशयके भी पत्र आये कि आप लोगोंने यह क्या आन्दोलन मचा रक्खा है। काशी जैसे स्थानमें दिगम्बर जैन विद्यालयका होना अत्यन्त कठिन है। जहाँपर कोई सहायक नहीं, जैनमतके प्रेमी विद्वान् नहीं वहां क्या आप

लोग हमारी प्रतिष्ठा भंग कराओगे। परन्तु हम लोग अपने प्रयत्नसे विचलित नहीं हुए। श्रीमान् स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी रईस आराको भी एक पत्र इस आशयका दिया। एक पत्र श्रीमान् स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजी जे० पी० बम्बई को भी लिखा। आठ दिन बाद सेठजी साहबका पत्र आ गया कि हम उद्घाटनके समय अवश्य काशी आवेंगे। श्री सर्राफ मूलचन्द्रजी बरुआसागर ने कहा कि १५००) कल्दार हम देवेंगे, हमारा साहस दृढ़तम हो गया।

विद्यालय का उद्घाटन

यह निश्चय किया गया कि ज्येष्ठ सुदी पञ्चमीको स्याद्वाद विद्यालतका उद्घाटन किया जावे। कुंकुमपत्रिका सर्वत्र वितरण कर दी। ज्यों ज्यों मूहूर्त निकट आया अनुकूल कारणकूट मिलते गये। महरौनीसे श्रीयुत बंशीधरजी, श्रीयुत् गोविन्दराय जी तथा एक और छात्रके आनेकी सूचना आ गई। बम्बईसे सेठजी साहब, आरासे बाबू देवकुमारजी, देहलीसे श्रीमान् लाला मोतीलालजी तथा श्रीमान् एडवोकेट अजितप्रसादजी जेठ सुदि ४ के दिन ये सब नेतागण आ गये।

पञ्चमीको प्रातःकाल विद्यालयका उद्घाटन होना है। पण्डितोंका क्या प्रबन्ध है?'....उपस्थित लोगोंने पूछा। मैंने कहा—'मैं श्रीशास्त्री अम्बादासजीसे न्यायशास्त्रका अध्ययन करता हूँ, १५) मासिक स्कालर्शिप मुझे बम्बईसे श्रीसेठजी साहबके पाससे मिलती है वही उनके चरणोंमें अर्पित कर देता हूँ। अब २५) मासिक उन्हें देना चाहिये वे तीन घण्टेको आ जावेंगे।' सबने स्वीकार किया। २०) मासिक पर एक व्याकरणाचार्य और इतने पर ही एक साहित्याध्यापक भी मिल गया। सुपरि-

न्टेन्डेन्ट पदके लिए वर्णी दीपचन्द्रजी नियत हुये । उस समय मुझे मिलाकर केवल चार छात्र थे ।

जेठ सुदि ५ वीरनिर्वाण सं० २४३२ और विक्रम सं० १९६२ के दिन प्रातःकाल श्रीमैदागिनीमें सर्व प्रथम श्रीपार्श्वनाथ स्वामी का पूजन कार्य सम्पन्न हुआ अनन्तर गाजे बाजेके साथ श्रीस्याद्वाद विद्यालयका उद्घाटन श्रीमान् सेठ माणिकचन्द्रजीके करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ ।

बाबू शीतलप्रसादजीने प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजीवन हर तरहसे इस विद्यालयकी सहायता करूँगा और वर्षमें दो चार बार यहाँ आकर निरीक्षण द्वारा इसकी उन्नतिमें पूर्ण सहयोग दूँगा । आपने अपनी उक्त प्रतिज्ञाका आजीवन निर्वाह किया । कुछ दिन बाद आप ब्रह्मचारी हो गये परन्तु विद्यालयको न भूले—उसकी सहायता निरन्तर करते रहे । वर्षों तक आप विद्यालयके अधिष्ठाता रहे । इस तरह विद्यालयका उद्घाटन सानन्द सम्पन्न हो गया । पठनक्रम क्वीन्स कालेज बनारसका रहा । विद्यालयको सहायता भी अच्छी मिलने लगी, भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्तसे छात्र आने लगे ।

इसी विद्यालयके मुख्य छात्र पण्डित बंशीधरजी साहब हैं । आप बड़े ही प्रतिभाशाली हैं, विद्वान् ही नहीं त्यागी भी हैं, श्रीमान् पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य और श्रीमान् पं० देवकी-नन्दनजी व्याख्यानवाचस्पति भी इसी विद्यालयके छात्र थे ।

कुछ दिन बाद पं० दीपचन्द्रजी वर्णी मुझसे रुष्ट हो गये । विद्यालयको छोड़ कर इलाहाबाद चले गये उनके अनन्तर श्रीमान् बाबा भागीरथजी अधिष्ठाता हो गये । आप विलक्षण त्यागी थे, मैं आपका अनन्य भक्त प्रारम्भसे ही था । आपका शासन इतना कठोर था कि अपराधके अनुकूल दण्ड देनेमें आप

स्नेह्को तिलाञ्जलि दे देते थे। सब छात्र बाबाजीकी आज्ञा पालन करते थे। यद्यपि मैं बाबाजीके मुँह लगा था तथापि भयभीत अवश्य रहता था।

बाबाजीके शासनमें

गङ्गाके उस तट पर रामनगरमें आश्विन मास भर रामलीला होती है और अयोध्या आदिसे बड़ी बड़ी साधुमण्डली आती हैं। आश्विन सुदि ९ को मेरे मनमें आया कि रामलीला देखनेके लिए रामनगर जाऊँ। सैकड़ों नौकाएँ गङ्गामें रामनगरको जा रही थीं। मैंने भी जानेका विचार कर लिया। ५ या ६ छात्रोंको भी साथमें लिया। उचित तो यह था कि बाबाजी महाराजसे आज्ञा लेकर जाता परन्तु महाराज सामायिकके लिये बैठ गये, बोल नहीं सकते थे अतः मैंने सामने खड़े होकर प्रणाम किया और निवेदन किया कि महाराज! आज रामलीला देखनेके लिए रामनगर जाते हैं, आप सामायिकमें बैठ चुके हैं अतः आज्ञा न ले सके।

गङ्गा के घाट पर पहुँचे और नौकामें बैठ गये। नौका घाट से कुछ ही दूर पहुँची थी कि इतनेमें वायुका वेग आया और नौका डगमगाने लगी। बाबाजी की दृष्टि नौका पर गई और उनके निर्मल मनमें एकदम यह विकल्प उठा कि अब नौका डूबी, बड़ा अनर्थ हुआ, इस नादान को क्या सूझी, जो आज इसने अपना सर्वनाश किया और छात्रोंका भी। नौका पार लग गई। रात्रिके दस बजे हम लोग रामनगरसे वापिस आ गये। आते ही बाबाजीने कहा—'पण्डितजी! कहाँ पधारे थे?'

यह शब्द सुन कर हम तो भयसे अवाक् रह गये, महाराज कभी तो पण्डितजी कहते नहीं थे, आज कौनका गुरुतम अप-

राध होगया जिससे महाराज इतनी नाराजी प्रकट कर रहे हैं ?' मैंने कहा—'महाराज! रामलीला देखने गये थे।' उन्होंने कहा—'किससे छुट्टी लेकर गये थे ?' मैंने कहा—'उस समय सुपरिन्टेन्डेन्ड साहब तो मिले न थे और आप सामायिक करने लग गये थे अतः आपको प्रणाम कर आज्ञा ले चला गया था। मुझसे अपराध अवश्य हुआ है अतः क्षमा की भिक्षा माँगता हूँ।'

महाराज बोले—'यदि नौका डूब जाती तो क्या होता ?' मैंने कहा—'प्राण जाते।' उन्होंने कहा—'फिर क्या होता ?' मैंने मुसकराते हुए कहा—'महाराज! जब हमारे प्राण ही जाते तब क्या होता वह आप जानते या जो यहाँ रहते वे जानते, मैं क्या कहूँ ?' अब जीवित बच गया हूँ यदि आप पूछें कि अब क्या होगा ? तो उत्तर दे सकता हूँ। 'अच्छा कहो'.... बाबाजीने शान्त होकर कहा। मैं कहने लगा—'मेरे मनमें तो यह विकल्प आया कि आज तुमने महान् अपराध किया है जो बाबाजीकी आज्ञाके विना रामलीला देखनेके लिये रामनगर गये। यदि आज नौका डूब जाती तो पाठशालाध्यक्षोंकी कितनी निन्दा होती ? अतः इस अपराधमें बाबाजी तुम्हें पाठशालासे निकाल देवेंगे। आपके मनमें यह है, ऐसा मुझे भान होता है। बाबाजीने कुछ विस्मयके साथ कहा कि 'अक्षरशः सत्य कहते हो।'

उन्होंने सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबको बुलवाया और शीघ्र ही पत्र लिखकर उसी समय लिफाफामें बन्द किया और उसके ऊपर लेटफीस लगाकर चपरासीके हाथमें देते हुए कहा कि तुम इसे इसी समय पोस्ट आफिसमें डाल आओ। मैंने बहुत ही विनय के साथ प्रार्थना की कि महाराज! अबकी बार माफी

दी जावे आयति-कालमें अब ऐसा अपराध न होगा। बाबाजी एकदम गरम हो गये—जोरसे बोले—तुम जानते मेरा नाम भागीरथ है और मैं व्रजका रहनेवाल । अब तुम्हारी इसीमें भलाई है कि यहाँसे चले जाओ।'

'अच्छा महाराज! जाता हूँ' कह कर शीघ्र ही बाहर आया और चपरासीसे, ज ा कि बाबाजीकी चिट्ठी डाँकमें डालनेके लिये जा रहा था, मैंने कहा—भाई क्यों चिट्ठी डालते हो, बाबाजी महाराज तो क्षणिक रुष्ट हैं, अभी प्रसन्न हो जावेंगे; यह एक रुपया मिठाई खाने को लो और चिट्ठी हमें दे दो। वह भला आदमी था चिट्ठी हमें दे दी और दस मिनट बाद आकर बाबाजीसे कह गया कि चिट्ठी डाल आया हूँ। बाबाजी बोले—'अच्छा किया पाप कटा।' मैं इन विरुद्ध वाक्योंको श्रवण कर सहम गया। भगवन्! क्या आपत्ति आई? जो मुझे हार्दिक स्नेह करते थे आज उन्हींके श्रीमुखसे यह निकले कि पाप कटा, अर्थात् यह इस स्थानसे चला जावेगा तो पाठशाला शान्तिसे चलेगी।

एक भाषण

मैंने कहा—'महाराज! यदि आज्ञा हो तो छात्रसमुदायमें कुछ भाषण करूँ और चला जाऊँ' बाबाजीने कहा—'अच्छा जो कहना हो शीघ्रतासे कह कर १५ मिनटमें चले जाना' अन्तमें साहस बटोर कर भाषण करनेके लिये खड़ा हुआ। महानुभाव बाबाजी महोदय! श्रीसुपरिन्टेन्डेन्ट महाशय! तथा छात्रवर्ग! कर्मोंकी गति विचित्र है। जैसे देखिये, प्रातःकाल श्रीरामचन्द्रजी महाराजको युवराज तिलक होनेवाला था जहाँ बड़े-से-बड़े ऋषिलोग मुहूर्त शोधन करनेवाले थे, किसी प्रकारकी

सामग्रीकी न्यूनता न थी पर हुआ क्या, सो पुराणोंसे सबको विदित है। किसी कविने कहा भी है—

> यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति
> यच्चेतसापि न कृतं तदिहाभ्युपैति।
> प्रातर्भवामि वसुधाधिपचक्रवर्ती
> सोऽहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी॥

इत्यादि बहुत कथानक शास्त्रोंमें मिलते हैं। जिन कार्योंकी सम्भावना भी नहीं वह आकर हो जाते हैं और जो होनेवाले हैं वह क्षणमात्रमें विलीन हो जाते हैं। कहाँ तो यह मनोरथ कि इस वर्ष अष्टसहस्रीमें परीक्षा देकर अपनी मनोवृत्तिको पूर्ण करेंगे एवं देहातमें जाकर पद्मपुराणके स्वाध्याय द्वारा ग्रामीण जनताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करेंगे और कहाँ यह बाबाजीका मर्मघाती उपदेश। कहाँ तो बाबाजी से यह घनिष्ठ सम्बन्ध कि बाबाजी मेरे बिना भोजन न करते थे और कहाँ यह आज्ञा कि निकल जाओ""पाप कटा। यह उनका दोष नहीं, जब अभाग्यका उदय आता है तब सबके यही होता है। अब इस रोनेसे क्या लाभ? आप लोगोंसे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा, आप लोगोंके सहवाससे अनेक प्रकारके लाभ उठाये अर्थात् ज्ञानार्जन, सिंहपुरी-चन्द्रपुरीकी यात्रा, पठन पाठनका सौकर्य और सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि आज स्याद्वाद पाठशाला विद्यालयके रूपमें परिणत हो गई, जिन ग्रन्थोंके नाम सुनते थे वे आज पठन पाठनमें आ गये। जहाँ काशी में जैनियोंके नामसे पण्डितगण नास्तिक शब्दका प्रयोग कर बैठते थे आज उन्हीं लोगों द्वारा यह कहते सुना जाता है कि जैनियोंमें प्रत्येक विषयका उच्चकोटिका साहित्य विद्यमान है। हम लोग इनकी व्यर्थ ही नास्तिकोंमें गणना करते थे।

यह सब आप छात्र तथा बाबाजीका उपकार है जिसे समाजको हृदयसे मानना चाहिये। मैंने इस योग्य अपराध नहीं किया है कि निकाला जाऊँ। प्रथम तो मैंने आज्ञा ले ली थी। हाँ, इतनी गलती अवश्य हुई कि सामायिकके पहले नहीं ली थी।

बाबाजी महाराजसे कहा कि 'आज इस रामलीलाको देखकर मेरे मनमें यह भावना हो गई कि पापके फलसे कितना ही वैभवशाली क्यों न हो अन्तमें पराजित हो ही जाता है। जितने दर्शक थे सबने रामचन्द्रजीकी प्रशंसा और रावण तथा उसके अनुयायीवर्गकी निन्दा की। वह बात प्रत्येक दर्शकके हृदयमें समा गई कि परस्त्री विषयक इच्छा सर्वनाशका कारण होती है कहा भी है—

'जाही पाप रावणके न छौना रहो भौना माँहि,
ताही पाप लोकन खिलौना कर राख्यो हैं।'

मेरे कोमल हृदयमें तो यह अच्छी तरह समा गया कि पाप करना सर्वथा हेय है। रामचन्द्रजीके सदृश व्यवहार करना। रावणके सदृश असत्कार्यमें नहीं पड़ना। जो श्री रामचन्द्रजी महाराजका अनुकरण करेगा वही संसारमें विजयी होगा और जो रावणके सदृश व्यवहार करेगा वह अधःपतनका भागी होगा। अस्तु किसीका दोष नहीं, हमारा तीव्र पापका उदय आ गया जिससे बाबाजी जैसे निर्मल और सरल परिणामी भी न्यायमार्ग की अवहेलना कर गये।

बाबाजी महाराज बोले—'रात्रि अधिक हो गई, सब छात्रोंको निद्रा आती है।'

मैं बोला—'महाराज! इन छात्रोंको तो आज ही निद्रा

जानेका कष्ट है परन्तु मेरी तो सर्वदाके लिये निद्रा भङ्ग हो गई। तथा आपने कहा कि रात्रि बहुत हो गई सो ठीक है परन्तु रात्रिके बाद दिन तो आवेगा, मुझे तो सदाके लिए रात्रि हो गई।' महाराज!—

'अपराधिनि चेत्क्रोधः क्रोधे: क्रोधः कथं न हि।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि॥'

'यदि आप अपराधी पर ही क्रोध करते हो तो सबसे बड़ा अपराधी क्रोध है क्योंकि वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का शत्रु है उसी पर क्रोध करना चाहिये।' मैं सानन्द यहाँसे जाता हूँ। न आपके ऊपर मेरा कोई बैरभाव है और न छात्रों के ही ऊपर।

अन्तमें महाराजजीको प्रणाम और छात्रोंको सस्नेह जय-जिनेन्द्र कर जब चलने लगा तब नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा।

न जाने बाबाजी को कहाँसे दयाने आ दबाया आप सहसा बोल उठे—

'तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है, तथा इस आनन्दमें कल विशेष भोजन कराया जावेगा।'

सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबसे कहने लगे कि एक पत्र फिर मन्त्री जी को लिख दो कि आज मैंने गणेशप्रसाद को पाठशालासे पृथक् करनेकी आज्ञा दी थी परन्तु जब यह जाने लगा और सब छात्रोंसे व्याख्यान देने लगा तब मेरा चित्त द्रवीभूत हो गया अतः मैंने इसका अपराध क्षमा कर दिया।

एक प्रायश्चित्त

अनन्तर मैंने निवेदन किया—महाराज! आपने जो पत्र

चपरासीके हाथ पोस्ट आफिसमें डालनेके लिये दिया था उसे मैंने किसी प्रकार उससे ले लिया था। इस अपराधका दण्ड चाहता हूँ।'

बाबाजी बोले कि—'आपत्ति कालमें मनुष्य क्या क्या नहीं करता, इसका आज प्रत्यक्ष हो गया। मैं तुम्हें परम मित्र समझता हूँ क्योंकि तुम्हारे ही निमित्तसे आज मैंने आत्मीय पदको समझा है। इस अपराधका दण्ड स्वयं ले लो।'

मैं बोला—'महाराज! कल जो सामूहिक भोजन होगा मैं उसमें छात्रोंकी पंक्तिसे बाह्य स्थानपर बैठकर भोजन करूंगा और भोजनोपरान्त छात्रगणके भोजनका स्थान पवित्र करूंगा पश्चात् स्नान कर श्री पार्श्वप्रभुका वन्दन करूंगा तथा एक मास पर्यन्त मधुर भोजन न करूंगा।'

बाबाजी बहुत प्रसन्न हुए और छात्रगण भी हर्षित हो धन्यवाद देने लगे, अनन्तर हम सब लोग सो गये। प्रातःकाल विशेष भोजन हुआ सब लोग आनन्दसे पंक्ति भोजनमें एकत्रित हुए, मैंने जैसा प्रायश्चित्त लिया था उसीके अनुकूल कार्य किया।

इसके बाद मैं आनन्दसे अध्ययन करने लगा और महाराज दूसरे ही दिन इस्तीफा देकर चले गये।

एक पथ भ्रान्त पथिक

कुछ दिनके बाद सहारनपुरसे स्वर्गीय लाला रूपचन्द्रजी रईसके सुपुत्र श्रीप्रकाशजी बनारस विद्यालयमें अध्ययनके लिए आये। जहाँ मैं रहता था उसीके सामनेकी कोठरीमें रहने लगे। आप रईसके पुत्र थे, तथा पढ़नेमें कुशाग्रबुद्धि थे। आपकी भोजनादि क्रिया रईसोंके समान थी।

आपको विद्यालयका भोजन रुचिकर नहीं हुआ अतः, आपकी पृथक् रसोई बनने लगी। एक दिन आप बोले—'चलो नाटक देख आवें।' हम छात्र लोगोंने कहा—'प्रथम तो हम लोगोंके पास पैसा नहीं, दूसरे सुपरिन्टेन्डेन्ट साहबसे छुट्टी नहीं लाये।' हम लोग तो साथ नहीं गये पर आप नाटक देखकर रात्रिमें दो बजे भदैनीघाट पहुँचे।

लाला प्रकाशचन्द्रजी केवल साहित्यग्रन्थ पढ़ते थे। जिस दिनसे आप नाटक देखकर आये, न जाने क्यों उस दिनसे आपकी प्रवृत्ति एकदम विरुद्ध हो गई। एक दिन बड़े आग्रहके साथ हमसे बोले—'नाटक देखने चलो।' मैंने कहा—'मैं नहीं जाता, आप तो ३) की कुर्सीपर आसीन होंगे और हम ।।)के टिकटमें गँवार मनुष्योंके बीच बैठकर सिगरेट तथा बीड़ीकी गन्ध सूँघेंगे···यह हमसे न होगा।' आप बोले 'अच्छा ३)की टिकट पर देखना।' मैंने कहा—'एक दिन देखनेसे क्या होगा?' आपने झट १०००)का नोट मेरे हाथमें देते हुए कहा—'लो बारह मासका जिम्मा मैं लेता हूँ।'

मैं डर गया, मैंने उनका नोट उन्हें देते हुए कहा कि जब रात्रिभर नाटक देखेंगे तब पाठ्य पुस्तक कब देखेंगे। आपको भी उचित है कि यदि बनारस आये हो तो विद्यार्जन द्वारा पण्डित बनकर जाओ जिसमें आपके पिताको आनन्द हो और आपके द्वारा जैनधर्मका प्रचार भी हो।

मैंने सब कुछ कहा परन्तु सुनता कौन था? जब आदमी मदान्ध हो जाता है तब हितकी बात कहनेवालेको भी शत्रु समझने लगता है। निरन्तर प्रतिरात्रि नाटक देखनेके लिये जाना और रात्रिके दो बजे वापिस आना यह उनका मुख्य

कार्य जारी रहा। कभी-कभी तो प्रातःकाल आते थे, अतः अन्य पापकी भी शङ्का होने लगी और वह भी सत्य ही निकली। उनके पिता व भाई साहब आदि सबको उनका कृत्य विदित हो गया।

जब एक बार मैं सहारनपुर लाला जम्बूप्रसादजीके यहाँ गया था तब अचानक आपसे भेंट हो गई, आप मुझे अपने भवनमें ले गये और नाना प्रकारके उपालम्भ देने लगे। 'तुम्हें उचित था कि हमें सुमार्ग पर लानेका प्रयत्न करते परन्तु तुमने हमारी उपेक्षा की। आज हमारी यह दशा हो गई कि हमारा १०००) मासिक व्यय है फिर भी त्रुटि रहती है, ये व्यसन ऐसे हैं कि इनमें अरबोंकी सम्पत्ति विला जाती है।'

मैंने कहा—'मैंने तो काशीमें आपको बहुत ही समझाया था परन्तु आपने एक न मानी और मुझे ही डाँटा कि तुम लोग दरिद्र हो, तुम्हें इन नाटकादि रसोंका क्या स्वाद? मैं चुप रह गया, भवितव्य दुर्निवार है। कहनेका तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य बालकपनसे अपनी प्रवृत्तिको सुमार्ग पर नहीं लाते उनकी यही गति होती है जो कि हमारे अभिन्न मित्रकी हुई। माँ बाप सहस्रों-लाखों रुपया बालक बालिकाओंके विवाह आदि कार्योंमें पानीकी तरह बहा देते हैं परन्तु जिसमें उनका जीवन सुखमय बीते ऐसी शिक्षामें पैसा व्यय करनेके लिये कृपण ही रहते हैं यही कारण है कि भारतके बालक प्रायः बालकपनसे ही कुसंगतिमें पड़कर अपना सर्वस्व नष्ट कर लेते हैं।

अन्तमें लाला प्रकाशचन्द्रजीका जीवन राग रङ्गमें गया, आपके कोई पुत्र नहीं हुआ। इस प्रकार संसार की दशा देखकर उत्तम पुरुषोंको उचित है कि अपने बालकोंको सुमार्ग पर लानेके लिये स्कूली शिक्षाके पहले धार्मिक शिक्षा दें और उनकी कुत्सित प्रवृत्ति पर प्रारम्भसे ही नियन्त्रण रखें।

गुरु दक्षिणा

मैं श्री शास्त्रीजीसे न्यायशास्त्रका अध्ययन करने लगा। अष्ट-सहस्री ग्रन्थके ऊपर मेरी महती रुचि थी। श्रीशास्त्रीजीके अनुग्रह से मेरा यह ग्रन्थ एक वर्षमें पूर्ण हो गया। जिस दिन मेरा यह महान् ग्रन्थ पूर्ण हुआ उसी दिन मैंने श्रीशास्त्रीजीके चरण कमलों में ५००) की एक हीराकी अंगूठी भेंट कर दी। मैंने नम्र शब्दोंमें कहा कि महाराज! आज मुझे इतना हर्ष है कि मेरे पास राज्य होता तो मैं उसे आपके चरणों में समर्पित करके भी तृप्त नहीं होता।

•

१०

हिंदू विश्वविद्यालय में जैन पाठ्यक्रम

इन्हीं दिनों भारतके नर-रत्न श्रीमालवीयजी द्वारा हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई, उसमें सर्व दर्शनोंके शास्त्रोंके पठन पाठनके लिये बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् रक्खे गये। शास्त्रीजी महाराज संस्कृत विभागके प्रिन्सपल हुए। उन्होंने श्रीमालवीय-जीसे कहा कि जब इस यूनिवरसिटीमें सब मतोंके शास्त्रोंके अध्ययनका प्रबन्ध है तब एक चेयर जैनागमके प्रचारके लिये भी होना चाहिये। श्रीमालवीयजीने कहा—'अच्छा सीनेटमें यह प्रस्ताव रखिये जो निर्णय होगा वह किया जावेगा। सीनेटकी जिस दिन बैठक थी उस दिन शास्त्रीजीने कहा—'पुस्तकें लेकर तुम भी देखने चलो।'

मैं पुस्तकें लेकर शास्त्रीजी महाराजके पीछे-पीछे चलने लगा। बीचमें एक महाशयने, जो बहुत ही बृहत्काय एवं सुन्दर शरीर

थे तथा सीनेटके भवनकी ओर जा रहे थे, मुझसे पूछा 'कहाँ जा रहे हो ?' मैंने कहा—महानुभाव ! मैं श्री शास्त्रीजीकी आज्ञासे जैनन्यायकी पुस्तकें लेकर कमेटीमें जा रहा हूँ। आज वहाँ इस विषयपर ऊहापोह होगा।' आप बोले—'यद्यपि जैनधर्मके अनुकूल प्रायः बहुत मेम्बर नहीं हैं फिर भी मैं कोशिश करूंगा कि जैनागमको पठन-पाठनमें आना चाहिये क्योंकि यह मत अनादि है तथा इस मतके अनुयायी बहुत ही सच्चरित्र होते हैं। इस मतके माननेवालों की संख्या चूंकि अल्प रह गई है इसीलिये यह सर्वकल्याणप्रद होता हुआ भी प्रसारमें नहीं आ रहा है'.... इत्यादि कहनेके बाद मुझसे कहा—'चलो।'

मैं भवनके अन्दर पहुँच गया। जो महाशय मुझे मार्गमें मिले थे वे भी पहुँच गये। पहुँचते ही उन्होंने सभापति महोदयसे कहा कि 'आज की सभामें अनेक विषयों पर विचार होना है, एक विषय जैनशास्त्रोंका भी है 'सूची-कटाहन्यायेन' सर्व प्रथम इसी विषय पर विचार हो जाना अच्छा है क्योंकि यह विषय शीघ्र ही हो जावेगा और यह छात्र जो कि पुस्तकें लेकर आया है चला जावेगा। चूंकि यह जैन छात्र है अतः रात्रिको नहीं खाता दिनको ही चले जानेमें इसका भोजन नहीं चूकेगा।' पश्चात् श्री अम्बादासजी शास्त्रीसे आपने कहा 'अच्छा शास्त्रीजी ! आप बतलाइये कि प्रवेशिकामें पहले कौनसी पुस्तक रक्खी जावे ?' शास्त्रीजीने न्यायदीपिका पुस्तक लेकर आपको दी।

पाँच मिनटकी बहसके बाद प्रथम परीक्षामें वह पुस्तक रक्खी गई। इसके बाद १५ मिनट और बहस हुई होगी कि उतनेमें ही शास्त्री परीक्षा तकका कोर्स निश्चित हो गया। पाठकोंको यह उत्कण्ठा होगी कि वे महाशय कौन थे ? जिन्होंने कि जैन ग्रन्थोंके विषयमें इतनी दिलचस्पी ली। वे महाशय थे

श्रीमान स्वर्गीय मोतीलालजी नेहरू जिनके सुपुत्र जगत्प्रख्यात श्रीजवाहरलालजी नेहरू भारतके सरताज हैं (रहे हैं)।

•

११

सहस्रनामका अद्भुत प्रभाव

संवत् १९७७ की बात है। मैं श्री शास्त्रीजी महोदयसे न्याय-शास्त्रका अध्ययन विश्वविद्यालयमें करने लगा और वहाँकी शास्त्रीय परीक्षाका छात्र हो गया। दो वर्षके अध्ययनके बाद शास्त्री परीक्षाका फार्म भर दिया।

उन्हीं दिनों हमारे प्रान्तके ललितपुर नगरमें गजरथ महोत्सव था, अतः फार्म भरनेके बाद वहाँ चला गया। बादमें दो स्थानोंमें और भी गजरथ थे इस तरह दो माससे अधिक समय लग गया। यही दिन अभ्यासके थे, शास्त्रीजी महाराज बहुत ही नाराज हुए। बीस दिन परीक्षाके रह गये थे, कई ग्रन्थ तो ज्योंके त्यों सन्दूकमें रखे रहे जैसे सन्मतितर्क आदि। फिर भी परीक्षाका साहस किया। मेरा यह काम रह गया कि प्रातःकाल गङ्गास्नान करना, वहाँसे आकर श्री पार्श्वप्रभुके दर्शन करना. इसके बाद महामन्त्रकी एक माला जपना इसके अनन्तर सहस्रनामका पाठ करना फिर पुस्तकोंका अवलोकन करना। सायंकालको महामन्त्रकी माला करनेके बाद सहस्रनाम-का पाठ करना। इस तरह पन्द्रह दिन पूर्ण किये।

सम्वत् १९८० की बात है कि जिस दिन परीक्षा थी उस दिन श्री मन्दिरजी गये और श्री पार्श्वप्रभुके दर्शन कर सहस्र-नामका पाठ किया पश्चात् पुस्तक लेकर परीक्षा देनेके लिये

विश्वविद्यालय चले गये। मार्गमें पुस्तकके ५-६ स्थल देख लिये। आठ बजे परीक्षा प्रारम्भ हो गई, परचा हाथमें आया, श्रीमहामन्त्रके प्रसादसे पुस्तकके जो स्थल मार्गमें देखे थे वे ही प्रश्नपत्रमें आ गये। फिर क्या था ? आनन्दकी सीमा न रही। इसी प्रकार आठ दिनके परचे आनन्दसे किये और परीक्षाफलकी बाट जोहने लगा। सात सप्ताह बाद परीक्षाफल निकला, मैंने बड़ी उत्सुकताके साथ शास्त्रीजीके पास जाकर पूछा--'महाराज ! क्या मैं पास हो गया ?' महाराजजीने बड़ी प्रसन्नतासे उत्तर दिया—

'अरे बेटा ! तेरा भाग्य जबर्दस्त निकला। तू फर्स्ट डिवीजनमें उत्तीर्ण हुआ, अरे इतना ही नहीं, फर्स्ट पास हुआ, तेरे ८०० नम्बरोंमेंसे ६४० नम्बर आये, अब तू शास्त्राचार्य परीक्षा पास कर' तुझे २५) मासिक छात्रवृत्ति मिलेगी। मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ कि मेरे द्वारा एक वैश्य छात्रको यह सम्मान मिला। अब बेटा ! एक बात मेरी मानना, शास्त्राचार्य परीक्षाका अभ्यास करना। क्वीन्स कालेज बनारसकी न्याय मध्यमा तो मैं पहले ही संवत् १९६४ में उत्तीर्ण हो चुका था अतः आचार्य प्रथम खण्डके पढ़नेकी कोशिश करने लगा।

•

१२

बाईजीको सिरदर्द
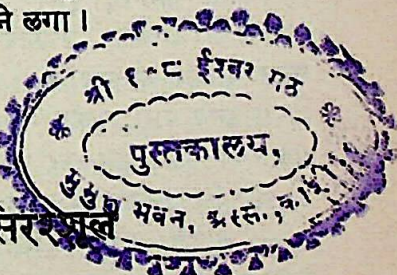
मुझे कोई व्यग्रता न हो, आनन्दसे पठन पाठन हो, इस अभिप्रायसे बाईजी भी बनारसके भेलूपुरमें रहा करती थीं। बाईजीके मस्तकमें शूलवेदना हो गई और इसी वेदनासे उनकी

आँखमें मोतियाविन्द भी हो गया। इन कारणोंसे चित्तमें निरन्तर व्यग्रता रहने लगी। बाईजी बोलीं—'भैया! व्यग्र मत हो, कर्मका विपाक है, जो किया है उसे भोगना ही पड़ेगा।'

एक दिन बोलीं—'बेटा हमको शूलकी वेदना बहुत है अतः यहाँसे देश चलो, वहाँ पर इसका प्रतिकार अनायास हो जायगा।' हम श्री बाईजीको लेकर बरुआसागर आ गये। दवाईके प्रयोगसे सिरोवेदना तो चली गई परन्तु आँखका मोतियाविन्द नहीं गया। अन्तमें सबकी यही सम्मति हुई कि झाँसी जाकर डाक्टरको आँख दिखा लाना चाहिये।

एक स्वदेशी बंगाली डाक्टर

हम बाईजीको लेकर झाँसी गये और बड़ी अस्पतालमें पहुँचे। वहाँ पर एक बंगाली डाक्टर आँखके इलाजमें बहुत ही निपुण था उसे बाईजीकी आँख दिखलाई, उसने १० मिनटमें परीक्षा कर कहा कि मोतियाविन्द है निकल सकता है, चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं, १५ दिनमें आराम हो जावेगा, हमारी ५०) फीस लगेगी, पूछा—कबसे आ जावें?' उसने कहा—'कलसे आ जाओ। डाक्टर साहब बोले—'हमारा भारतवर्ष बहुत चालाक हो गया है।' बाईजीके चिह्नसे यह प्रतीत होता है कि इनके पास अच्छी सम्पत्ति होनी चाहिये परन्तु वे इस प्रकारका वस्त्र पहिन कर आईं कि जिससे दूसरेको यह निश्चय हो सके कि इनके पास कुछ नहीं, ऐसा असद्व्यवहार अच्छा नहीं।' बाईजी बोलीं—'भैया डाक्टर! अब हम आपसे ऑपरेशन नहीं कराना चाहते, अन्धा रहना अच्छा परन्तु लोभी आदमीसे ऑपरेशन कराना अच्छा नहीं।'

डाक्टर साहबने बहुत कुछ कहा परन्तु बाईजीने ऑपरेशन

कराना स्वीकार नहीं किया। वहाँसे क्षेत्रपाल-ललितपुरको प्रस्थान कर गईं।

क्षेत्रपाल पहुँचकर बाईजी आनन्दसे रहने लगीं, उन्होंने कभी किसीसे यह नहीं कहा कि हमें बड़ा कष्ट है और न दैनिक-चर्यामें कभी शिथिलता की। मुझसे बोली—'बेटा ! अभी हमारा असाताका उदय है, अतः मोतियाविन्दकी औषधि व ऑपरेशन न होगा, तुम मेरे पीछे अपना पढ़ना न छोड़ो और शीघ्र ही बनारस चले जाओ।'

मैं बाईजीके विशेष आग्रहसे बनारस चला गया और श्री शास्त्रीजीसे पूर्ववत् अध्ययन करने लगा परन्तु चित्त बाईजीकी बीमारीमें था अतः अभ्यासकी शिथिलता रहती थी फल यह हुआ कि मैं परीक्षामें अनुत्तीर्ण हो गया। परीक्षा देनेके बाद शीघ्र ही मैं ललितपुर लौट आया।

एक विदेशी अंग्रेज डाक्टर

एक दिन बाईजी बगीचेमें सामायिक पाठ पढ़नेके अनन्तर-

'राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार,
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार,

आदि बारह भावना पढ़ रही थीं अचानक एक अंग्रेज जो उसी बागमें टहल रहा था उनके पास आया और कहा—'हम झाँसी की बड़ी अस्पतालके सिविलसर्जन हैं, आँखके डाक्टर हैं और लन्दनके निवासी अंग्रेज हैं।' तुम्हारे नेत्रोंमें मोतियविन्द हो गया है एक आंखका निकालना तो अब व्यर्थ है क्योंकि उसके देखनेकी शक्ति नष्ट हो चुकी है पर दूसरी आँखमें देखनेकी शक्ति है उसका मोतियाविन्द दूर होनेसे तुम्हें दीखने लगेगा।' अब बाईजीने उसे अपनी आत्मकथा सुनाई, सुनकर डाक्टर साहब

बहुत प्रसन्न हुए, बोले—'अच्छा हम अपना दौरा कैंसिल करते हैं, सात बजे डांकगाड़ीसे झाँसी जाते हैं, तुम पेंसिजर गाड़ीसे झाँसी अस्पतालमें कल नौ बजे आओ वहीं तुम्हारा इलाज होगा।'

बाईजीने कहा—'मैं अस्पतालमें न रहूँगी, शहरकी परवार धर्मशालामें रहूँगी और नौ बजे श्रीभगवान्का दर्शन पूजन कर आऊंगी। यदि आपकी मेरे ऊपर दया है तो मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये।' डाक्टर महोदय न जाने बाईजीसे कितने प्रसन्न थे। बोले—'तुम जहाँ ठहरोगी मैं वहीं आ जाऊंगा परन्तु आज ही झाँसी जाओ, मैं जाता हूँ।'

डाक्टर साहब चले गये। हम, बाईजी और बिनिया रात्रि के ११ बजे की गाड़ीसे झाँसी पहुँच गये। प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर धर्मशालामें आ गये, इतने में ही डाक्टर साहब मय सामानके आ पहुँचे। आते ही साथ उन्होंने बाईजीको बैठाया और आँखमें एक औजार लगाया जिससे वह खुली रहे। जब डाक्टर साहबने आँख खुली रखनेका यन्त्र लगाया तब बाईजी ने कुछ सिर हिला दिया। डाक्टर साहबने एक हलकी सी थप्पड़ बाईजीके सिरमें दे दी, न जाने बाईजी किस विचारमें निमग्न हो गईं। इतनेमें ही डाक्टर साहबने अस्त्रसे मोतियाबिन्द निकाल कर बाहर कर दिया आँखमें दवाई आदि लगाई पश्चात् सीधा पड़े रहनेकी आज्ञा दी। इसके बाद डाक्टर साहब १६ दिन और आये। प्रति दिन दो बार आते थे अर्थात् ३२ बार डाक्टर साहबका शुभागमन हुआ साथमें एक कम्पाउण्डर तथा डाक्टर साहबका एक बालक भी आता था। बालककी उमर १० वर्षके लगभग होगी—बहुत ही सुन्दर था वह। प्रतिदिन डाक्टर साहबके साथ आता और पूड़ी तथा पापड़ खाता। बाईजीके

साथ उसको अत्यन्त प्रीति हो गई–आते ही साथ कहने लगता–
'पूड़ी पापड़ मंगाओ।' अस्तु,

सोलहवें दिन डाक्टर साहबने बाईजीसे कहा कि आपकी आँख अच्छी हो गई कल हम चश्मा और एक शीशी में दवा देंगे। अब आप जहाँ जाना चाहें सानन्द जा सकती हैं। यह कहकर डाक्टर साहब चले गये। जो लोग बाईजीको देखनेके लिये आते थे वे बोले 'बाईजी! डाक्टर साहबकी एक बारकी फीस १६) है अतः ३२ बारके ५१२) होंगे। उन्होंने ५१२) रुपये व ४०) का मेवा फल आदि मँगाया और डाक्टर साहबके आने के पहले ही सबको थालियोंमें सजाकर रख दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल डाक्टर साहबने आकर आँखमें दवा डाली और चश्मा देते हुए कहा—'अब तुम आज ही चली जा सकती हो' जब बाईजीने नकद रुपयों और मेवा आदिसे सजी हुई थालियों की ओर संकेत किया तब उन्होंने विस्मयके साथ पूछा—'यह सब किसलिये?'

बाईजीने नम्रताके साथ कहा—'मैं आपके सदृश महापुरुष का क्या आदर कर सकती हूँ? पर यह तुच्छ भेंट आपको समर्पित करती हूँ। आपने मुझे आँख दी जिससे मेरे सम्पूर्ण कार्य निर्विघ्न समाप्त हो सकेंगे। आपके निमित्तसे मैं पुनः धर्मध्यानके योग्य बन सकी। इसके लिये आपको जितना धन्यवाद दिया जावे उतना ही अल्प है। आप जैसे दयालु जीव बिरले ही होते हैं, मैं आपको यही आशीर्वाद देती हूँ, कि आप के परिणाम इसी प्रकार निर्मल और दयालु रहें जिससे संसार का उपकार हो।

इतना कहकर बाईजीकी आँखोंमें हर्षके अश्रु छलक पड़े और कण्ठ अवरुद्ध हो गया। डाक्टर साहब बाईजी की कथा

श्रवण कर बोले 'बाईजी ! किसीके कहनेसे तुम्हें भय हो गया है पर भयकी बात नहीं, हम तुम्हारे धार्मिक नियमोंसे बहुत खुश हैं, और यह जो मेवा फलादि रखे हैं इनमेंसे तुम्हारे आशीर्वाद रूप कुछ फल लिये लेते हैं शेष आपकी जो इच्छा हो सो करना तथा ११ रुपया कम्पाउन्डरको दिये देते हैं, अब आप किसीको कुछ नहीं देना।

बाईजीने कहा—मैं आपके व्यवहारसे बहुत ही प्रसन्न हूँ आप मेरे पिता हैं, अतः एक बात मेरी भी स्वीकार करेंगे।' डाक्टर साहबने कहा—'कहो, हम उसे अवश्य पालन करेंगे।' बाईजी बोलीं—'मैं और कुछ नहीं चाहती केवल यह भिक्षा मांगती हूँ कि रविवार आपके यहाँ परमात्माकी उपासनाका दिन माना गया है अतः उस दिन आप न तो किसी जीवको मारें, न खानेके वास्ते खानसामासे मरवावें और न खानेवालेकी अनुमोदना करें।'

डाक्टर साहबने बड़ी प्रसन्नतासे कहा 'हमें तुम्हारी बात मान्य है। न हम खावेंगे, न मेम साहबको खाने देवेंगे और यह बालक तो पहलेसे ही तुम्हारा हो रहा है, इसे भी हम इस नियमका पालन करावेंगे। आप निश्चिन्त रहिये मैं आपको अपनी माताके समान मानता हूँ।' इतना कहकर डाक्टर साहब चले गये। हम लोग आधा घंटा तक डाक्टर साहबके गुणगान करते रहे। पुण्यके सद्भावमें, जिनकी सम्भावना नहीं, वे कार्य भी अनायास हो जाते हैं, अतः जिन जीवोंको सुखकी कामना है उन्हें पुण्य कार्योंमें सदा उपयोग लगाना चाहिये।

●

१३

बुंदेलखण्डके दो महान् विद्वान्

बाईजीके स्वस्थ होनेके अनन्तर हम सब लोग बरुआसागर चले गये और आनन्दसे अपना समय व्यतीत करने लगे। बाईजीने कहा—'बेटा ! तुम्हारा पढ़ना छूट गया इसका रंज है अतः फिर बनारस चलो और अध्ययन प्रारम्भ कर दो। बाईजी की आज्ञा स्वीकार कर मैं बनारस चला गया और श्रीमान् शास्त्रीजीसे न्यायशास्त्रका अध्ययन कर तीन खण्ड न्यायाचार्यके पास हो गया परन्तु सुपरिन्टेन्डेन्टसे मनोमालिन्य होनेके कारण मैं बनारस छोड़कर फिरसे टीकमगढ़ आ गया और श्रीमान् दुलार झा जीसे पढ़ने लगा।

इसी समय उनके सुपुत्र श्रीशान्तिलाल झा जो कि न्यायशास्त्र के प्रखर विद्वान् थे अपने पिताके दर्शनार्थ आये उनसे हमारा अधिक स्नेह हो गया। मैं शान्तिलालजीको लेकर बरुआसागर चला आया। श्री सर्राफ मूलचन्द्रजी उन्हें ३० रुपया मासिक देने लगे मैं उनसे पढ़ने लगा। मैं जब यहाँके मन्दिरमें जाता था तब श्री देवकीनन्दनजी भी दर्शनके लिये पहुँचते थे। इनके पिता बहुत बुद्धिमान् और जातिके पञ्च थे। बहुत ही सुयोग्य व्यक्ति थे। उनका कहना था कि यह बालक बुद्धिमान् तो है परन्तु दिन भर उपद्रव करता है अतः इसे आप बनारस ले जाइये। मैंने देवकीनन्दनसे कहा—'क्यों भाई ! बनारस चलोगे ?' बालकने कहा—'हाँ, चलेंगे।'

मैं जब उसे बनारस ले जानेके लिये राजी हो गया तब सर्राफजीने यह कहते हुए बहुत निषेध किया कि क्यों उपद्रवकी जड़ लिये जाते हो ? परन्तु मैंने उनकी एक न सुनी। उन्होंने

बाईजीसे भी कहा कि ये व्यर्थ ही उपद्रवकी जड़ साथ लिये जाते हैं पर बाईजीने भी कहा कि भैया! तुम जिसे उपद्रवी कहते हो उसके लिये 'पण्डितजी' और 'महाराज' कहते-कहते तुम्हारा गला न सूखे तो हमारा नाम न लेना।

अन्तमें मैं उसे बनारस ले गया और विद्यालयमें प्रविष्ट करा दिया। बालक होनहार था अतः बहुत ही अल्प कालमें व्युत्पन्न हो गया। इसकी बुद्धिकी प्रखरता देख श्रीमान् स्वर्गीय पण्डित गोपालदासजी आगरावालोंने इसे मोरैनामें धर्मशास्त्रका अध्ययन कराया। कुछ दिन बाद ही यह धर्मशास्त्रमें विशिष्ट विद्वान् हो गया, और उसी विद्यालयमें अध्यापन कार्य करने लगा। श्रीमान् स्वर्गीय पण्डितजी जहांपर व्याख्यान देनेके लिये जाते थे वहाँ इन्हें भी साथ ले जाते थे। इनकी व्याख्यान कला देख पण्डितजी स्वयं न जाकर कहीं-कहीं इन्हींको भेज देते थे। यह व्याख्यान देनेमें इतने निपुण निकले कि समाजने इन्हें व्याख्यानवाचस्पतिकी उपाधिसे विभूषित किया।

इसी प्रकार समाजके प्रमुख विद्वान् और धर्मशास्त्रके अद्वितीय मर्मज्ञ पं० बंशीधरजी न्यायालंकार हैं जो कि महरौनीके रहनेवाले हैं, तथा वर्तमानमें इन्दौरमें निवास करते हैं।

●

१४

चकौतीमें

संवत् १९८४ की बात है—बनारससे मैं श्री शान्तिलाल नैयायिकके साथ चकौती जिला दरभंगा चला गया और यहीं पर पढ़ने लगा। जिस चकौतीमें मैं रहता था वह ब्राह्मणोंकी

बस्ती थी, अन्य लोग कम थे, जो थे वे इन्हींके सेवक थे। इस ग्राममें बड़े-बड़े नैयायिक विद्वान् होगये हैं, उस समय भी वहाँ चार नैयायिक, दो ज्योतिषी, दो वैयाकरण और २६ धर्मशास्त्रके प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन नैयायिकोंमें सहदेव झा भी एक थे, यह बड़े बुद्धिमान् थे, इनके यहाँ कई छात्र बाहरसे आकर न्याय-शास्त्रका अध्ययन करते थे। मेरा भी चित्त इन्हींके पास अध्ययन करनेका होगया। यद्यपि यह बात श्री शान्तिलालजीको बहुत अनिष्टकारक हुई तो भी मैं उनके पास अध्ययन करने लगा। परन्तु यहाँकी एक बात मुझे भी बहुत अनिष्टकर थी वह यह कि यहाँके सब मनुष्य मत्स्य-मांसभोजी थे। प्रतिदिन लोग मांस पकाते थे उसकी दुर्गन्धके मारे मुझसे भोजन नहीं खाया जाता था। मैंने आटा खाना छोड़ दिया केवल चावल और साग खाकर दिन काटता था। कभी-कभी भुने चने खाकर ही दिन निकाल देता था।

एक दिन मोहल्लाके एक वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'बेटा! इतने दुर्बल क्यों होते जाते हो? क्या खानेके लिये नहीं मिलता? मैंने कहा—'बाबाजी! आपके प्रसादसे मेरे पास खानपान की सब सामग्री है परन्तु जब मैं खानेको बैठता हूँ तब मछलीकी गन्ध आती है अतः ग्रास भीतर नहीं जाता। मेरी कथा को श्रवण कर बुड्ढे ब्राह्मण महाराज को दया आ गई। उन्होंने मोहल्लाके सब ब्राह्मणों को जमा कर यह प्रतिज्ञा करायी कि जबतक यह अपने ग्राममें छात्र रूपसे रहे तबतक आप लोग मत्स्य माँस न बनावें और न देवी को बलि प्रदान करें। यह भद्र प्रकृतिका बालक है इसके ऊपर हमें दया करना चाहिये। इस तरह वहाँ मेरा निर्वाह होने लगा। आटा आदि की भी व्यवस्था हो गई और आनन्द से अध्ययन चलने लगा।

पापी-पुण्यात्मा—बिहारी मुसहड़

इस चकौती ग्राममें मेरी पीठमें अदृष्ट फोड़ा होगया, रात दिन दाह होने लगी, एक मिनटको भी चैन नहीं पड़ती थी। 'हे भगवन्, के सिवाय कुछ नहीं उच्चारण होता था। रात्रि-दिन वेदनामें ही समय जाता था। मोहल्लाभर मेरी वेदनासे दुःखी हो गया। बिहारी मुसहड़ वहाँसे जा रहा था उसने कहा—'आप लोग औषधि नहीं जानते ?' लोगोंने कहा—'हमने तो बीसों दवाइयाँ कीं पर किसीसे आराम नहीं पहुँचा। वह गया और १५ मिनटमें औषध लेकर आगया। दवाई लगाते ही दाहकी वेदना शान्त हो गई और एकदम निद्रा आ गई। १२ घंटेके बाद निद्रा भंग हुई। पीठपर हाथ रक्खा तो फोड़ा नदारत। चार वजे बिहारी मुसहड़ फिर आया मैंने उसे बहुत ही धन्यवाद दिया और दस रुपये देने लगा परन्तु उसने नहीं लिया। मैंने उससे कहा कि यह औषधि हमें बता दो उसने एकदम निषेध कर दिया और एक लम्बा भाषण दे डाला। उसने कहा कि बतानेमें कोई हानि नहीं परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि आप इसे द्रव्यो-पार्जनका जरिया न बना लेवेंगे क्योंकि आप लोगोंने अपनी आवश्यकताओंको इतना बढ़ा लिया है कि यद्वा तद्वा धन पैदा करनेसे आप लोग नहीं चूकते। आज भारतवर्षकी जो दशा है वह किसीसे छिपी नहीं है अतः माफ कीजिये मैं आपको दवा नहीं बताऊँगा और न आपसे कुछ चाहता ही हूँ। हमारा काम मजदूरी करनेका है उसमें जो कुछ मिल जाता है उसीसे संतोष कर लेता हूँ। सूखा दाल भात हमारा भोजन है शाम तक पर-मात्मा दे ही देता है आपसे दस रुपया लेकर मैं लालाजी नहीं बनना चाहता। मैं जातिका मुसहड़ हूँ और मेरे कुलमें निरन्तर हिंसा होती है, परन्तु मैंने पाँच वर्षसे हिंसा त्याग दी है। इसका कारण यह हुआ कि मैं एक दिन शिकारके लिये धनुष

बाण लेकर वनमें गया था। पहुँचते ही एक बाण हिरनीको मारा वह गिर पड़ी मैंने जाकर उसे जीवित ही पकड़ लिया वह बाणसे मरी नहीं थी घर जाकर मैंने विचार किया कि आज इसे मारकर सब कुटुम्ब पेटभर इसका मांस खावेंगे। हम लोग जब उसे मारने लगे तब उसके पेटसे बिलबिलाता हुआ बच्चा निकल पड़ा और थोड़ी देरके बाद छटपटाकर मर गया। उसकी वेदना देखकर मैं अत्यन्त दुखी होगया और भगवान्‌से प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो! मैं अधमसे अधम नर हूँ, मैंने जो पाप किये हैं, हे परमात्मन्! अब उन्हें कौन क्षमा कर सकता है? जन्मान्तर में भोगना ही पड़ेंगे परन्तु अब आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजसे किसी प्राणीको न सताऊंगा, जो कुछ कर चुका उसका पश्चात्ताप करता हूँ। उस दिनसे न तो मेरे घरमें मांस पकता है और न मेरे बाल-बच्चे ही मांस खाते हैं। मेरे जो खेत हैं उनमें इतना धन पैदा हो जाता है कि उससे मेरा वर्ष भरका खर्च आनन्दसे चल जाता है।

मैं नीच जाति हूँ आप लोग मेरा स्पर्श करनेसे डरते हैं, यदि कदाचित् स्पर्श हो भी जावे तब सचैल स्नान करते हैं, परन्तु बताओ तो सही हमारे शरीरमें कौनसी अपवित्रताका वास है और आपके शरीरमें कौनसी पवित्रताका निवास है? हमारी आत्मा दयासे पुष्ट है, लोभादि पापोंसे सुरक्षित है और यथाशक्ति परमात्माके स्मरणमें भी उपयुक्त है अब आप लोग ही निर्णय करके शुद्ध हृदयसे कहिये कि कौन तो अधम है और कौन उच्च? आप लोगोंने ज्ञानका अर्जन कर केवल संसारवर्द्धक विषयों की पुष्टि की है। यदि आप लोग संसारके दुःखोंसे भयभीत होते तो इतने अनर्थपूर्ण कार्योंकी पुष्टि न आप करते और न शास्त्रोंके प्रमाण ही देते—

'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्य औषधार्थं सुरां पिबेत्।'

मैं पढ़ा लिखा नहीं परन्तु यह वाक्य आपके ही द्वारा मेरे श्रवणमें आये हैं। कहाँ तक कहें स्त्रीदान तक आप लोगोंने शास्त्र विहित मान लिया है। इत्यादि कहते-कहते अन्तमें उसने बड़े उच्च स्वरसे यहाँ तक कह दिया कि यद्यपि मैं आप लोगोंकी दृष्टि में तुच्छ हूँ तो भी हिंसाके उक्त कार्योंको अच्छा नहीं समझता, उसके चले जानेपर मैंने यह विचार किया कि यदि सत्य दृष्टिसे देखा जावे तो उसका कहना अक्षरशः सत्य है। जितने विद्वान् वहाँ उपस्थित थे सब निरुत्तर हो गये, परस्परमें एक दूसरेके मुख ताकने लगे।

पापिनी—पुण्यात्मा—द्रौपदी

इसी चकौतीमें एक ब्राह्मण था जो बहुत ही प्रतिष्ठित धनाढ्य, विद्वान् और राजमान्य था। उसकी एक पुत्री थी—द्रौपदी। जो अत्यन्त रूपवती थी, दुर्भाग्यवश वह बाल्यावस्थासे ही विधवा हो गई। अन्तमें उसका चरित्र भ्रष्ट हो गया। कई तो उसने गर्भपात किये परन्तु पिताके स्नेहसे वह अन्यत्र नहीं भेजी गई। रुपयाके बलसे उसके सब पाप छिपा दिये जाते थे परन्तु पाप भी कोई पदार्थ है जो छिपायेसे छिपता ?

उसके नामका एक सरोवर था उसका पानी अपेय हो गया। उसीके नामका एक बाग भी था उसमें जो फल लगते थे उनमें पकने पर कीड़े पड़ने लगे इससे उसके पापकी चर्चा प्रान्त भरमें फैल गई। पापके उदयमें जो न हो सो अल्प है।

कुछ कालके बाद द्रौपदीके चित्तमें अपने कुकृत्यों पर बड़ी घृणा हुई उसने मन्दिरमें जाकर बहुत ही पश्चात्ताप किया और घर आकर अपने पितासे कहा—'पिताजी! मैंने यद्यपि बहुत ही भयङ्कर पाप किये हैं परन्तु आज मैंने अन्तरङ्गसे इतनी निन्दा गरहा की है कि अब मैं निष्पाप हूँ। अब मैं श्री जगन्नाथजीकी

यात्राको जाती हूँ वहाँ से श्री वैद्यनाथ जाऊँगी, वहीं पर वैद्यनाथ जी को जल चढ़ाऊँगी और जिस समय 'ओं शिवाय नमः' कहती हुई जल चढ़ाऊँगी उसी समय महादेवजीके कैलाशलोकको चली जाऊँगी।

द्रौपदीकी यह बात सुनकर उसके पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और गद्गद स्वरमें बोले—'बेटा ! मैं तुम्हारी कथा सुनकर अत्यन्त प्रमोदको प्राप्त हुआ हूँ। अच्छा, यह बताओ कि यात्रा कब करोगी।'

पुत्रीने कहा—बैशाख सुदि पूर्णिमाके दिन यात्राके लिए जाऊँगी। अब क्या था, सम्पूर्ण नगरके लोग उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगे। अन्तमें बैशाखकी पूर्णिमा आ गई, प्रातःकाल नौ बजे यात्राका मुहूर्त्त था। गाजे बाजेके साथ द्रौपदी घरसे बाहर निकली। ग्राम भरके नर-नारी उसे पहुँचानेके लिए ग्रामके बाहर आध मील तक चले गये।

द्रौपदीने समस्त नर-नारियोंसे सम्बोधन कर प्रार्थना की और कहा कि मैंने गुरुतर पाप किये—पापोंको याद आते ही मेरी आत्मा सिहर उठती है। परन्तु आजसे बीस दिन पहले मुझे अपनी आत्मामें बहुत ग्लानि हुई और यह विचार मनमें आया कि जो आत्मा पाप करनेमें समर्थ है वह उसे त्याग भी सकता है। मैं एक उच्च कुलमें उत्पन्न हुई, मेरा बाल्यकाल बड़ी ही पवित्रतासे बीता, परन्तु यह सब होते हुए भी मैं पाप पङ्कमें लिप्त हो गई। इस घटनासे मुझे यह निश्चय हुआ कि आत्मा सर्वथा निर्दोष नहीं। आत्मा पापी भी होता है और उसका उदाहरण मैं ही हूँ।

अब मेरी आप नर-नारियोंसे यह प्रार्थना है कि कभी भी पाप न करना। पापसे मेरा यह अभिप्राय है कि स्त्रियोंको

यह नियम करना चाहिये कि अपने पतिको छोड़कर अन्य पुरुषों को पिता, पुत्र और भाईके सदृश समझें और पुरुषवर्गको चाहिये कि वह स्वस्त्रीको छोड़कर अन्य स्त्रियोंको माता, भगिनी और पुत्रीके सदृश समझे। अन्यथा जो मेरी दुर्गति और निन्दा हुई वही उनकी होगी।

इसके सिवाय एक बात और कहना चाहती हूँ वह यह कि भगवान् दीनदयालु हैं उनकी दया प्राणीमात्रके ऊपर होनी चाहिये। पशु भी एक प्राणी है उन्होंने ऐसा कौनसा अपराध किया कि उन निरपराधोंका दुर्गादेवीके सामने बलि चढ़ाया जाता है। जिनके माँसका भोजन है उनके दयाका लेश नहीं। उनसे प्राणीगण सदा भयभीत रहते हैं। माँसके खानेसे क्रूर परिणाम होते हैं अतः उसे त्याग देना ही उचित है। देखो, आपके सामने जो गणेशप्रसाद खड़े हैं यह जैनी हैं, इनका भोजन अन्न है, अपना ग्राम इतना बड़ा है यहाँ पर एक हजार ब्राह्मणों का ही नहीं पण्डितों का निवास है जो देखो वही इनकी प्रशंसा करता है, सब लोग यही कहते हैं कि यह बड़ा सौम्य छात्र है, इसका मूल कारण इनकी दयालुता है।

द्रौपदी का व्याख्यान पूर्ण नहीं हुआ था कि बीचमें ही बहुत से नर-नारी हँस पड़े और यह शब्द सुननेमें आने लगा कि 'नौसौ मूषे विनाश कर बिल्ली हज्जको चली।'

यह वाक्य सुनते ही द्रौपदीने कहा कि ठीक है परन्तु अब मैं पापिनी नहीं यदि तुम लोगोंको विश्वास न हो तो हमारे बागमें जो फल पक्व हों उन्हें चुनकर लाओ सब ही अमृतोपम स्वादिष्ट होंगे तथा मेरी पुष्करिणीका जल गङ्गाजलके सदृश होगा।

कई मनुष्य एकदम बाग और पुष्करिणी की ओर दौड़ पड़े जो बाग गये थे वे वहाँसे बिल्वफल, लीची और आम लाये तथा

जो पुष्करिणी गये थे वे चार घड़े जल लाये। सब समुदायने फलभक्षण किये। सभीके मुखसे ये शब्द निकल पड़े कि ऐसे स्वादिष्ट फल तो हमने जन्मसे लेकर आज तक नहीं खाये। पश्चात् पुष्करिणीका जल पिया गया और सर्वत्र यह ध्वनि होने लगी कि यह तो गङ्गाजलकी अपेक्षा भी मधुर है।

अनन्तर जनसमुदायने उसे मस्तक नवाकर प्रणाम किया और अपने अपराधकी क्षमा माँगी। द्रौपदीने आशीर्वाद देते हुए कहा कि यह सब हमारे परिणामोंकी स्वच्छताका फल है। इसके बाद द्रौपदी बाईने जगन्नाथ स्वामीकी यात्राके लिये प्रस्थान किया। प्रथम तो द्रौपदी बाई कलकत्ता पहुँची और काली के दर्शन करनेके लिए काली मन्दिर गई परन्तु वहाँका रक्तपात देख दर्शनोंके विना ही वापिस लौट आई। पश्चात् श्री जगन्नाथ-पुरीकी यात्राके लिये गई और उसके अनन्तर वैद्यनाथजी आ गई। जिस समय स्वच्छ वस्त्र पहिन कर तथा हाथमें जलपात्र लेकर उसने 'ओं शिवाय नमः' कह महादेवके उपर जलधारा दी उसी समय उसके प्राण पखेरू उड़ गये और सहस्रों नर-नारियोंके गुणगानसे सारा मन्दिर गूँज उठा। इस कथानकके लिखनेका तात्पर्य यह है कि अधमसे अधम प्राणी भी परिणामों की निर्मलतासे देवगति प्राप्त कर सकता है।

यहाँ जो गिरिधर शर्मा रहते थे उन्होंने एक दिन कहा कि नवद्वीपमें न्यायशास्त्रकी अपूर्व पठनशली है, जो ज्ञान यहाँ एक वर्षमें होगा वह वहाँ एक मासमें ही हो जावेगा। मैं उनके वचनोंकी कुशलतासे चकौती ग्राम छोड़कर नवद्वीपको चला गया।

१८

नवद्वीप, कलकत्ता, फिर बनारस

जिस दिन नवद्वीप पहुँचा उस दिन वहाँ पर छुट्टी थी। लोग अपने अपने स्थानों पर भोजन बना रहे थे। मुझे भी एक कोठरी दे दी गई, मैं स्नान कर और णमोकार मन्त्रकी माला फेर कर भोजनकी कोठरीमें गया। कहारिनने चूल्हा सिलगा दिया था, मैंने पानी छानकर बटलोई चूल्हे पर चढ़ा दी, कहारिन पूछती है—'महाशय साग भी बनाओगे ?' मैंने कहा—'अच्छा मटरकी फली लाओ।' वह बोली—'मछली भी लाऊँ ?' मैं तो सुनकर अवाक् रह गया पश्चात् उसे डांटा कि यह क्या कहती है ? हम लोग निरामिषभोजी हैं। वह बोली यहाँ तो जितने छात्र हैं सब मांसभोजी हैं, मैंने मन ही मन विचार किया कि हे भगवन् ! किस आपत्तिमें आगये ? दाल चावल बनाना भूल गया और यह विचार आया कि तेरा यहाँ गुजारा नहीं हो सकता। उस दिन भोजन नहीं किया गया दो घंटा बाद गाड़ीमें बैठ कर कलकत्ता चले गये। श्री पण्डित ठाकुरप्रसादजीने संस्कृत कालेज में नाम लिखा दिया तथा एक बङ्गाली विद्वान्से मिला दिया। मैं उनसे न्यायशास्त्रका अध्ययन करने लगा।

श्री सेठ पद्मराजजी रानीवाले हमारे पास न्यायदीपिका पढ़ने लगे। और उन्होंने अपने रसोईघरमें मेरे भोजनका प्रबन्ध कर दिया। मैं निश्चिन्त होकर पढ़ने लगा। छह मासके बाद चित्त में उद्वेग हुआ जिससे फिर बनारस चला आया। श्रीशास्त्रीजी से अध्ययन करने लगा। इन्हींके द्वारा तीन खण्ड न्यायाचार्यके पास किये फिर उद्वेग हुआ और बाईजीके पास आ गया।

बाईजीने कहा—'बेटा ! तुम्हें ६ खण्ड पास करने थे।'

●

१६

सागर में जैन पाठशाला की स्थापना

उस समय इस प्रान्तके लोगोंकी रुचि विद्याध्ययनमें प्रायः नहीं ही थी। यहाँ तो द्रव्योपार्जन करना ही मनुष्योंका उद्देश्य था। यदि किसीके धर्म करनेके भाव हुए भी तो श्री जीके जल-विहारमें द्रव्य लगा दिया, किसीके अधिक भाव हुए तो मन्दिर बनवा दिया या पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करा दी, विद्या दानकी ओर किसीकी दृष्टि न थी। पूजा-पाठ भी शुद्ध नहीं जानते थे।

यह सब देखकर मेरे मनमें यह चिन्ता उठा करती थी कि जिस देशमें प्रतिवर्ष लाखों रुपये धर्म कार्यमें व्यय होते हों वहाँ के आदमी यह भी न जानें कि देव, शास्त्र और गुरुका क्या स्वरूप है? अष्टमूल गुण क्या हैं? यह सब अज्ञानका ही माहात्म्य है। मुझे इस प्रान्तमें एक विशाल विद्यालय और छात्रावासकी कमी निरन्तर खलती रहती थी।

ललितपुरमें विमानोत्सव था, मैं भी वहाँ गया। उसी समय सागरके कई महानुभाव भी पधारे। इन लोगोंसे हमारी बात-चीत हुई और मैंने अपना अभिप्राय इनके समक्ष रख दिया। लोग सुनकर बहुत प्रसन्न हुए, कहा—'आप आइये यहाँ पर पाठशालाकी व्यवस्था हो जावेगी।'

हम सागर पहुँच गये। अक्षय तृतीया वीर निर्वाण २४३५ वि० सं० १९६५ को पाठशाला खोलनेका मूहूर्त्त निश्चित किया गया। यहाँ पर एक छोटी पाठशाला थी वही श्री सत्तर्क-सुधा-तरङ्गिणी नाममें परिवर्तित हो गई।

मुख्य प्रश्न इस बातका था कि इतना द्रव्य कहाँसे आवे जिससे कि छात्रावास सहित पाठशालाका कार्य अच्छी तरह चल

सके। सागरमें हंसराज कण्डया थे, अचानक उनका स्वर्गवास हो गया। उनके दामादने १०००१) विद्यादानमें दे दिया और साथ ही नन्हूँमलजीने एक कोठी पाठशाला को लगा दी जिसका मासिक किराया १००) आता था। इस प्रकार द्रव्यकी पूर्ति हुई तब अक्षय तृतीयाके दिन बड़े गाजे-बाजेके साथ पाठशालाका शुभ मुहूर्त्त श्री शिवप्रसादजीके गृहमें सानन्द हो गया।

पढ़ाई क्वीन्स कालेजके अनुसार होती थी, जब तक छात्र प्रवेशिकामें उत्तीर्ण नहीं होता था तब तक उसे धर्मशास्त्र नहीं पढ़ाया जाता था, इस पर समाजमें बड़ी टीका टिप्पणियाँ होने लगीं—कोई कहता–'आखिर गणेशप्रसाद वैष्णव ही तो हैं, उन्हें जैनधर्मका महत्त्व नहीं आता, उनके द्वारा जैनधर्मका उपकार कैसे हो सकता है ? इन सब व्यवहारोंसे मेरा चित्त खिन्न होने लगा और यह बात मनमें आने लगी कि सागर छोड़कर चला जाऊँ! परन्तु फिर मनमें सोचता कि 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि—' अच्छे कार्योंमें विघ्न आया ही करते हैं—मेरा अभिप्राय तो निर्मल है—मैं तो यही चाहता हूँ कि यहाँके छात्र प्रौढ़ विद्वान् बनें।

अब जिस मकानमें पाठशाला थी वह छोटा पड़ने लगा श्री राईसे बजाजने चैत्यालयका एक बड़ा मकान, जो कि चमेली चौकमें था पाठशालाके लिये दे दिया और पाठशाला उसमें चली गई। एक दिन कटराके सब पञ्चोंसे निवेदन किया तो सभीने प्रसन्नताके साथ एक आना सैकड़ा धर्मादाय लगा दिया इससे पाठशालाकी आर्थिक व्यवस्था कुछ-कुछ सँभल गई।

इसी समय श्री सिंघई कुन्दनलालजीसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया, एक दिन मैंने आपसे पाठशालाकी आय सम्बन्धी चर्चा की तो आपने एक पैसा प्रति गाड़ी तथा घी के व्यापारियोंसे भी

कोशिश की जिससे फी मन आध पाव घी पाठशाला को मिलने लगा। इस प्रकार हजारों रुपये पाठशालकी आय हो गई। देहातमें भी जहाँ कहीं धार्मिक उत्सव होते वहाँसे पाठशालाको सैकड़ों रुपये मिलते थे। इस तरह बुन्देलखण्डके केन्द्रस्थान—सागरमें श्री सत्तर्क सुधा तरङ्गिणी जैन पाठशालाका पाया कुछ ही समयमें स्थिर हो गया।

मैं पाठशालाकी सहायताके लिये बाहर जाने लगा। एक बार बरायठा ग्राम गया। वहाँ से श्री सेठ कमलापतिजी भी साथ हो गये। कर्रापुर से प्रातःकाल भोजन कर हम दोनोंने सागरके लिये प्रस्थान किया। वहाँसे चलकर बहेरिया ग्रामके कुँवा पर पानी पीने लगे। इतनेमें ही क्या देखते हैं कि सामने एक बालक और उसकी माता खड़ी है। बालककी अवस्था पाँच वर्षकी होगी, उसे देखकर ऐसा मालूम होता था कि वह प्यासा है। मैंने उसे पानी पिला दिया और हमारे पास खानेके लिये जो कुछ मेवा थे उस बालकको भी थोड़ेसे दे दिये। हम चलने के लिये ज्योंही उद्यमी हुए त्योंही वह सामने खड़ी हुई औरत रोने लगी। हमने उससे पूछा—'क्यों रोती है?' उसने हितैषी जान अपनी कथा कहना प्रारम्भ किया—'मेरे पतिको गुजरे हुए आठ मास हुए हैं, हमारा जो देवर है वह बराबर लड़ता है और मेरे खानेमें भी त्रुटि करता है। मारी-मारी फिरती हूँ। आज यह विचार किया कि पिताके घर चली जाऊँ वहीं अपना निर्वाह करूंगी।

हमारे पास कुछ था नहीं केवल धोती और दुपट्टा था, तथा धोतीमें कुछ रुपये थे मैंने वह धोती दुपट्टा तथा रुपये—सब उसे दे दिया केवल नीचे लँगोट रह गया। सेठजी बोले—'इस वेषमें सागर कैसे जाओगे?' मैंने कहा—'चिन्ताकी कोई बात नहीं

यहाँसे चलकर तीन मीलपर सामायिक करेंगे पश्चात् रात्रिके सात बजे नगरमें चले जावेंगे वहाँपर धोती आदि सब वस्त्र रखे ही हैं। बीचमें नित्य नियमकी विधि कर सागर पहुँच गये। चोर की तरह घर पहुँचे, उस समय बाईजी मन्दिरको जा रही थीं मुझे देखकर बोलीं 'भैया वस्त्र कहाँ हैं ?' मैं चुप रह गया। कमलापति जीने जो कुछ कथा थी कह दी।

एक बार हम और कमलापति सेठ वरायठासे आ रहे थे। कर्रापुरसे दो मील दूर एक कुएँ पर पानी पी रहे थे। पानी पीकर ज्यों ही चलने लगे त्यों ही एक मनुष्य आया और कहने लगा कि हमें पानी पिला दीजिये। मैंने कुएँसे पानी खींचकर दूसरे लोटामें छाना। वह बोला—'महाराज! मैं मेहतर—भंगी हूँ।' मैंने कहा—'कुछ हानि नहीं पानी ही तो पीना चाहते हो पी लो। सेठजी बोले—'पत्ते लाकर दोना बना लो।' मैं बोला—'यहाँ दोना नहीं बन सकता क्योंकि यहाँ पलासका वृक्ष नहीं है।'

मैंने उस मनुष्यसे कहा—'खोवा बाँधो हम पानी पिलाते हैं।'

सेठजी बोले—'लोटा आगमें शुद्ध करना पड़ेगा।'

मैंने उसे पानी पिलाया पश्चात् वह लोटा उसे ही दे दिया और सेठजीसे कहा—'चलो शुद्ध करनेकी झंझट मिटी' सेठ-जी हँस गये और वह भंगी भी 'जय महाराज' कहता हुआ चला गया।'

•

१७

मड़ावरामें पाठशालाकी स्थापना

मड़ावरासे जहाँपर कि मेरा बाल्यकाल बीता था एक पत्र इस आशयका आया कि 'आप पत्रके देखते ही चले आइये यहाँ

पर श्री जिनेन्द्र भगवान्‌के विमान निकालनेका महोत्सव है। मैं वहाँ पहुँचा, तीन दिनका उत्सव था, मैंने कहा—'भाई एक प्रस्ताव परवार सभामें पास हो चुका है कि जो ५००० रुपया विद्यादानमें देवे उसे सिंघई पद दिया जावे। इस ग्राममें सौ घरसे ऊपर हैं परन्तु बालकोंको जैनधर्मका ज्ञान करानेके लिये कुछ भी साधन नहीं है। अतः मुझे आशा है कि सोंरया वंशके महानुभाव इस त्रुटिकी पूर्ति करेंगे।'

मेरे बाल्यकालके मित्र श्री सोंरया हरीसिंहजी हँस गये। उनका हँसना क्या था, सिंघई पदप्राप्तिकी सूचना थी। उनके हास्यसे मैंने आगत जनसमुदायके बीच घोषणा कर दी कि बड़ी खुशीकी बात है कि हमारे बाल्यकालीन मित्रने सिंघई पदके लिये ५००० रुपया दान दिया उससे एक जैन पाठशाला खोली जावेगी। मैंने श्री दामोदर सिंघईसे भी कहा कि भैया! आप भी ५००० रुपया देकर ग्रामकी कीर्तिको अमर कर देवें। उनकी भौजी भी दैवयोगसे शास्त्र-सभामें आईं थीं मैंने उनसे कहा कि सिं० दामोदरजी ५००० रुपये विद्यादानमें देना चाहते हैं इसमें आपकी क्या सम्मति है?' उन्होंने कहा—'इससे उत्तम क्या होगा कि हमारे द्वारा बालकोंको ज्ञानदान मिले। लोगोंने सुनकर हर्षध्वनि की और उसी समय पदवी दानके लिए केशर तथा पगड़ी बुलाई गई।

पञ्चोंने सोंरया वंशके प्रमुख व्यक्तियोंको पगड़ी बाँधी और केशरका तिलक लगाकर 'सिंघईजी जुहार' का दस्तूर अदा किया। पश्चात् श्री सिं० दामोदरदासजीको भी केशरका तिलक लगाकर पगड़ी बाँधी और 'सवाई सिंघई' पदसे सुशोभित किया। इस तरह जैन पाठशालाके लिये दस हजार रुपयाका मूल-धन अनायास हो गया।

१८

बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्

बण्डामें पञ्चकल्याणक थे हम वहाँ गये। राजगद्दीके समय मुझे भी बोलनेका अवसर आया। व्याख्यानके समय मेरी अंगूठी का हीरा निकल गया। वह जिस बालकको मिला था उसने कांच समझकर रख लिया था। जब मैं भोजन कर रहा था तब हीरा लेकर आया और भोजन करनेके बाद यह कहते हुए उसने दिया कि यह हीरा मुझे सभा मण्डपमें जहाँ कि नृत्य होता था मिला था। मैंने चमकदार देखकर इसे रख लिया था। जिस समय मिला था उस समय यह दूसरा बालक भी वहाँ था। यदि यह न होता तो सम्भव है मेरे भाव लोभके हो जाते और आपको न देता। इस कथासे कुछ तत्त्व नहीं परन्तु एक बात आपसे कहना हमारा कर्तव्य है। यद्यपि हम बालक हैं, हमारी गणना शिक्षकों-में नहीं और आप तो वर्णी हैं हजारों आदमियोंको व्याख्यान देते हैं शास्त्रप्रवचन करते हैं, त्यागका उपदेश भी देते हैं और बहुत-से जीवोंका आपसे उपकार भी होता है फिर भी मनमें आया इसलिये कह रहा हूँ कि—

आपकी जो माता हैं वह धर्मकी मूर्ति हैं। आपका महान् पुण्यका उदय है जो आपको ऐसी माँ मिल गई। उनके उदार भावसे आप यथोचित द्रव्य व्यय कर सकते हो परन्तु कोई कहे या न कहे यह निश्चित है कि आप अनुचित वेषभूषा रखते हैं। आप ब्रह्मचारी हैं आपको हीराकी अंगूठी क्या शोभा देती है? यदि आपके तेलका हिसाब लगाया जावे तो मेरी समझसे उतने में एक आदमीका भोजन हो सकता है। यदि फलादिककी बात कही जावे तो आप स्वयं लज्जित हो उठेंगे। अतः आशा करता हूँ कि आप इसमें सुधार करेंगे।'

वह था तो बालक पर उसके मुखसे अपनी इतनी खरी समालोचना सुनकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसी समय मैंने वह हीरा सिंघई कुन्दनलालजीको दे दिया तथा भविष्यमें हीरा पहिननेका त्याग कर दिया। साथ ही सुगन्धित तेलोंका व्यवहार भी छोड़ दिया। मेला पूर्ण होनेके बाद सागर आ गया। और आनन्दसे पाठशालामें रहने लगा।

०

१९

बरुआसागरमें

कई स्थानोंमें घूमनेके बाद मैं श्रीयुत सर्राफ मूलचन्द्रजी बरुआसागरवालोंके यहाँ चला गया। आप हमसे अधिक अवस्थावाले थे अतः मुझसे अनुजकी तरह स्नेह करते थे। एक दिन एक विलक्षण घटना और हो गई जो कि इस प्रकार है—

दिनके चार बजे मैं जलका पात्र (लोटा) लेकर शौच क्रिया के लिये ग्रामके बाहर जा रहा था। मार्गमें बालक गेंद खेल रहे थे उन्हें देखकर मेरे मनमें भी गेंद खेलनेका भाव हो गया। एक लड़केसे मैंने कहा--'भाई! हमको भी दण्डा और गेंद दो हम भी खेलेंगे।' बालकने दण्डा और गेंद दे दी। मैंने दण्डा गेंदमें मारा पर वह गेंदमें न लगकर पास ही खड़े हुए ब्राह्मणके बालकके नेत्रमें बड़े वेगसे जा लगा और उसकी आँखसे रुधिरकी धारा बहने लगी। यह देखकर मेरी अवस्था इतनी शोकातुर हो गई कि मैं सब कुछ भूल गया और लोटा लेकर बाईजीके पास आ गया। बाईजी कहती हैं--'बेटा! क्या हुआ?' मैं कुछ भी न बोल सका किन्तु रोने लगा। इतनेमें एक बालक आया

उसने सब वृत्तान्त सुना दिया। बाईजीने कहा—'अब क्यों रोते हो? अब उठो और भोजन करो।' मैंने कहा—'आज भोजन न करूंगा।' मैं अपनी भूलपर पश्चात्ताप करता रहा।

एक दिन कुछ बिलम्बसे मन्दिर जा रहा था उस बालककी माँ मार्गमें मिल गई और उसने मेरे पैर पड़े। मैं उसे देखकर ही डर गया था और मनमें सोचने लगा था कि हे भगवन्! अब क्या होगा? इतने में वह बोली कि आपने मेरे बालकका महोपकार किया। मैंने कहा—'सत्य कहिये बालककी आँख तो नहीं फूट गई?' उसने कहा—'आँख तो नहीं फूटी परन्तु उसका अँखसूर जो कि अनेक औषधियाँ करने पर भी अच्छा न होता था खून निकल जानेसे एकदम अच्छा हो गया। मैं मन ही मन विचारने लगा कि उदय बड़ी वस्तु है अन्यथा ऐसी घटना कैसे हो सकती है।

एक भविष्य कथन

एक दिनकी बात है, तब मूलचन्द्रजीकी स्त्री गर्भवती थी। लोग वहाँपर गप्पाष्टक कर रहे थे। किसीने कहा—'अच्छा, बतलाओ गर्भमें क्या है?' किसीने कहा—'बालक है।' किसीने कहा 'बालिका है।' मुझसे भी पूछा गया, मैंने कहा—'मैं नहीं जानता क्या है? क्योंकि निमित्त ज्ञानसे शून्य हूँ, इतना कह चुकनेपर भी लोग आग्रह करते रहे अन्ततोगत्वा मैंने भी अन्य लोगोंकी तरह उत्तर दे दिया कि बालक है और जब पैदा होगा उसका श्रेयांसकुमार नाम होगा। यह सुनकर लोग बहुत ही प्रसन्न हो गये और उस दिनकी प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ कालके पश्चात् सर्राफ मूलचन्द्रजीके पुत्ररत्न हुआ। हम और बाईजी पुनः बरुआसागर पहुँच गये। ग्यारह दिनके बाद नाम संस्कार किया गया। पूजन विधान सम्पन्न हो जानेके बाद

सौ नाम कागजके टुकड़ोंमें लिखकर एक थालीमें रख दिये। अनन्तर एक पाँच वर्षकी कन्यासे कहा कि इनमेंसे एक कागज की पुड़िया निकालो, और थालीके बाहर डाल दो। उसने एक पुड़िया बाहर डाल दी जब उसे खोला तो उसमें श्रेयान्स-कुमार नाम निकला। अब क्या था? सब लोग कहने लगे कि 'देखो वर्णीजीको पहलेसे ही ज्ञान था। अन्यथा आपने नौ मास पहले जो कहा था कि सर्राफ मूलचन्द्रजीके बालक होगा और उसका नाम श्रेयान्सकुमार होगा, सच कैसे निकला? मैंने कहा—'भाई मैं तो कुछ नहीं जानता था। यह तो घुणाक्षरन्याय से सत्य निकल आया। आप लोगोंकी जो इच्छा हो सो कहें?'

एक हिंसक अहिंसक बना

यहाँ एक बात विलक्षण हुई। हम लोग स्टेशनपर मूलचन्द्र-जीके मकानमें रहते थे, पासमें कहार लोगोंका मोहल्ला था। एक दिन रात्रिको ओलोंकी वर्षा हुई। इतनी विकट कि मकानोंके खप्पर फूट गये। हम लोग रजाई आदिको ओढ़कर किसी तरह ओलोंके कष्टसे बचे। पड़ोसमें जो कहार थे वे सब राम-राम कहकर अपनी प्रार्थना कर रहे थे। वे कह रहे थे कि—

'हे भगवान्! इस कष्टसे रक्षा कीजिये, आपत्ति कालमें आपके सिवाय ऐसी कोई शक्ति नहीं जो हमें कष्टसे बचा सके।' उनमें एक दस वर्षकी लड़की भी थी, वह अपने माता पितासे कहती है कि 'तुम लोग व्यर्थ ही राम राम रट रहे हो। यदि कोई राम होता तो इस आपत्ति कालमें हमारी रक्षा न करता? वस्त्र तक हमारे घरमें पर्याप्त नहीं। एक ही धोतीसे अपना निर्वाह करते हैं बगलमें देखो सर्राफजीका मकान है उनके हजारों मन गल्ला है अनेक प्रकारके वस्त्रादि हैं यहाँ तो हमारे घरमें अन्नका दाना नहीं, दूधकी बात छोड़ो छाँछ भी माँगेसे नहीं मिलती,यद्यपि

मैं बालिका हूँ पढ़ी लिखी नहीं कि किसी आधारसे बात कर सकूँ, परन्तु अपनी इस विपत्तिसे इतना अवश्य जानती हूँ कि जो नीम बोवेगा उसके नीमका पेड़ होगा, जो आमका बीज बोवेगा उसके आम ही का फल लगेगा। हम लोगोंने जन्मान्तरमें कोई अच्छा कार्य नहीं किया जिससे कि हमें सुखकी सामग्री मिलती, उस जन्ममें बहुत पाप किये अतः अब ओलोंकी वर्षासे मत डरो और न राम राम चिल्लाओ। हमारी रक्षा हमारे भाग्यके ही द्वारा होगी। न कोई किसीका रक्षक है और न कोई भक्षक है।

यदि तुम इन सब आपत्तियोंसे बचना चाहते हो तो एक काम करो, देखो तुम प्रतिदिन सैकड़ों मछलियोंको मारकर अपनी आजीविका करते हो। जैसी हमारी जान है वैसी ही अन्यकी भी है। यदि तुम्हें कोई सुई चुभा देता है तो कितना दुःख होता है। जब तुम मछलीकी जान लेते हो तब उसे जो दुःख होता है, वही जानती होगी। अतः मैं यही भिक्षा मांगती हूँ कि चाहे भिक्षासे पेट भर लो परन्तु मछली मारकर पेट मत भरो।

लड़कीकी ज्ञानभरी बातें सुनकर पिता एकदम चुप रह गया और कुछ देर बाद उससे पूछता है कि बेटी! तुझे इतना ज्ञान कहाँसे आया? वह बोली कि मैं पढ़ी लिखी तो हूँ नहीं परन्तु बाईजीके पास जो पण्डितजी हैं वे प्रतिदिन शास्त्र बाँचते हैं, एक दिन बाँचते समय उन्होंने बहुतसी बातें कहीं, अपने अपने पुण्य पापके आधीन सब प्राणी हैं। यह बात आज मुझे और भी जँच गई, कोई बचानेवाला होता तो इस आपत्तिसे न बचाता?

पिताने पुत्रीकी बातोंका बहुत आदर किया और कहा कि 'बेटी! हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं और जो यह मछलियोंके पकड़ने का जाल है उसे अभी तुम्हारे ही सामने ध्वस्त करता हूँ।' इस तरह उसने बातचीतके बाद उस जालको जला दिया और स्त्री पुरुषने प्रतिज्ञा की कि अब आजन्म हिंसा न करेंगे।

यह कथा हम और बाईजी सुन रहे थे बहुत ही प्रसन्नता हुई इसके अनन्तर ओला पड़ना बन्द हुआ। प्रातःकाल जब हम मन्दिरजी पहुँचे तब आठ बजे वे तीनों जीव आये और उत्साहसे कहने लगे कि हम आजसे हिंसा न करेंगे। मैंने प्रश्न किया—क्यों? उत्तरमें उसने रात्रिकी राम कहानी आनुपूर्वी सुनाई। जिसे सुनकर चित्तमें अत्यन्त हर्ष हुआ और श्री समन्त-भद्र स्वामीका यह श्लोक स्मरण द्वारा सामने आगया कि—

'सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्,
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्।

हम लोगोंकी यह महती अज्ञानता है कि किसीको सर्वथा तुच्छ नीच या अधम मान बैठते हैं। न जाने कब किसके काल-लब्धि आजावे? जातिके कहार, जिस लड़कीके उपदेश से माता पिता एकदम सरल परिणामी हो गये उस लड़कीने कौनसी पाठशालामें शिक्षा पाई थी? दस वर्षकी अबोध बालिकामें इतनी विज्ञता कहाँसे आ गई? जन्मान्तरका संस्कार था जो समय पाकर उदयमें आगया, अतः हमें उचित है कि अपने संस्कारोंको अति निर्मल बनानेका सतत प्रयत्न करें। वह लड़की बोली—'वर्णीजी! हम तीनोंको क्या आज्ञा है?' मैंने कहा—'बेटी! तुमको धन्यवाद देता हूँ, आज तुमने वह उत्कृष्ट कार्य किया जो महापुरुषों द्वारा साध्य होता है। उस लड़कीका पिता बोला—आजतक मछलियाँ मारकर उदर भरते थे अब मजदूरी करके उदर पोषण करेंगे। अभी तो हमने केवल हिंसा करना ही छोड़ा था पर अब यह भी नियम करते हैं कि आजसे मांस भी नहीं खावेंगे तथा हमारे यहाँ जो देवीका बलिदान होता था वह भी नहीं करेंगे। जब मांस ही जिससे कि पेट भरता था छोड़ दिया, तब अब न मदिरा पीवेंगे और न

मधु ही खावेंगे। हमने जो व्रत लिया है मरण पर्यन्त भी उसका भङ्ग न करेंगे। अच्छा अब जाते हैं, यह कह कर वे चले गए। मुझे ऐसा लगा कि धर्मका कोई ठेकेदार नहीं है।

२०

शंकित संसार

कुछ दिन बरुआसागर रहकर हम और बाईजी सागर चले गये और सागर विद्यालयके लिये द्रव्य संग्रहका यत्न करने लगे। भाग्यवश यहाँ पर भी एक दुर्घटना हो गई।

मेरे खानेमें जो साग व फल आते थे मैं स्वयं जाकर उन्हें चुन चुनकर लाता था। एक दिनकी बात है कि नसीबन कूंजड़ी की दुकान पर एक महाशय छीताफल (शरीफा) खरीद रहे थे, शरीफा दो इतने बड़े थे कि उनका वजन एक सेर होगा, उनकी कीमत कूंजड़ी एक रुपया मांगती थी, उन्होंने बारह आना तक कहा। मेरा मन भी उन शरीफोंके लिये ललचाया परन्तु जब एक महाशय ले रहे थे तब मेरा कुछ बोलना सभ्यताके विरुद्ध होता, आखिर जब वे निराश होकर जाने लगे तब मैंने शीघ्र ही एक रुपया कूंजड़ी के हाथ में दे दिया और वह शरीफा मेरे झोलेमें डालनेको उद्यत हुई कि वही महाशय पुनः लौटकर कहने लगे—'अच्छा, पांच रुपया ले लो' उसने कहा—'नहीं अब तो वे बिक गए, लेनेवालेसे आप बात करिये। अन्तमें उन्होंने कहा—'अच्छा सौ रुपये ले लो परन्तु शरीफा हमें ही दो' कूंजड़ी बोली—'आप महाजन होकर इस तरहकी बात करते हो, क्या इसी तरहकी धोखेबाजीसे पैसा पैदा करते हो ?'

वह महाशय लज्जासे नम्रीभूत हो गये, मैंने उनसे कहा कि यह शरीफा लेते जाइये परन्तु वह नीचे नेत्र करके कुछ न बोले और अपने घर चले गये। अन्तमें कूंजड़ी बोली—'देखो मनुष्य वही है जो अच्छा व्यवहार करे। आपके व्यवहारसे मैं खुश हूँ आपकी दुकान है आपको उत्तमसे उत्तम साग दूँगी आप अब अन्य दूकानपर मत जाना।

मैं प्रतिदिन उसीकी दुकानसे साग लेने लगा परन्तु संसार सबको पापमय देखता है, वह मेरे इस कार्यमें नाना प्रकारके संदेह करने लगा, यद्यपि मैं अन्तरङ्गसे वैसा नहीं था, पर ऐसा नियम है कि यदि कलारकी दुकानपर कोई पैसा भंजानेके लिए भी जावे तो लोग ऐसा सन्देह करने लगते हैं कि इसने मद्य पिया होगा।

एक दिन छेदीलालजीके बागमें सब जैनियोंका भोजन था मैंने वहाँ सबके समक्ष इस बातका स्पष्टीकरण कर यह निश्चय किया कि मैं आजसे ही ब्रह्मचर्य प्रतिमाका पालन करूँगा।

●

२१

निवृत्ति की ओर

वीर निर्वाण २४३९ और वि० सं० १९६९ की बात है जमीन पर सोनेकी आदत न थी परन्तु अनायास भूशय्या होनेपर भी निद्रा सुख पूर्वक आ गई। बाईजी कहने लगीं अपनी शक्तिको भी देख लो, तथा द्रव्य क्षेत्र काल भावको देखो, सर्वप्रथम अपने परिणामोंकी जातिको पहिचानों। जो व्रत लो उसे मरण पर्यन्त पालन करो, अनेक संकट आने पर भी उसका निर्वाह करो। जैन-

धर्मकी यह मर्यादा है कि व्रत लेना परन्तु उसे भङ्ग न करना। व्रत न लेना पाप नहीं परन्तु लेकर भङ्ग करना महापाप है।

जैनदर्शनमें तो सर्व प्रथम स्थान श्रद्धाको प्राप्त है, इसी का नाम सम्यग्दर्शन है। यदि यह नहीं हुआ तो व्रत लेना नीवके बिना महल बनानेके सदृश है इसके होते ही सब व्रतोंकी शोभा है। सम्यग्दर्शन आत्माका वह गुण है जिसका कि विकास होते ही अनन्त संसारका बन्धन छूट जाता है।

मैंने कहा—'बाईजी ! आखिर हम भी तो मनुष्य हैं, मनुष्य ही तो महाव्रत धारण करते हैं, और अनेक उपसर्ग—उपद्रव आने पर भी अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं होते। उनका भी तो मेरे ही जैसा औदारिक शरीर होता है। मेरी आत्मा यदि व्रत न लेवेगी तो बहुत खिन्न रहेगी अतः अब मैं किसी त्यागीके पास व्रत ले लूँगा। कुछ नहीं होगा तो न सही पर मेरी जो यह बाह्य प्रवृत्ति है वह तो छूट जावेगी और जो व्यर्थ व्यय होता है उससे बच जाऊंगा। अभी तक मैंने जो पाया सो व्यय किया अब परिमित व्यय होने लगेगा तथा जहां तक मुझसे बनेगा व्रतमें शिथिलता न करूंगा।

बाईजी तटस्थ रह गयीं, मैं व्रत पालनेकी चेष्टा करने लगा। अभ्यास तो पहले था ही नहीं अतः धीरे-धीरे व्रत पालने लगा। मैंने कुण्डलपुरमें श्रीबाबा गोकुलचन्द्रजीसे प्रार्थना की कि महाराज ! यद्यपि अपने नियमके अनुसार दो वर्षसे उसका पालन भी कर रहा हूँ तो भी गुरुसाक्षीपूर्वक व्रत लेना उचित है। आप हमारे पूज्य हैं तथा आपमें मेरी भक्ति है अतः मुझे सप्तमी प्रतिमाका व्रत दीजिये।'

बाबाजीने कहा—'अच्छा आज ही व्रत ले लो, प्रथम तो श्री वीरप्रभुकी पूजा करो पश्चात् आओ व्रत दिया जावेगा।'

मैंने आनन्दसे श्रीवीरप्रभुकी पूजा की, अनन्तर बाबाजीने विधिपूर्वक मुझे सप्तमी प्रतिमाके व्रत दिये। मैंने अखिल ब्रह्मचारियोंसे इच्छाकार किया और यह निवेदन किया कि मैं अल्प-शक्तिवाला क्षुद्र जीव हूँ आप लोगोंके सहवासमें इस व्रतका अभ्यास करना चाहता हूँ। आशा है मेरी नम्र प्रार्थनापर आप लोगोंकी अनुकम्पा होगी। मैं यथाशक्ति आप लोगोंकी सेवा करनेमें सन्नद्ध रहूँगा।' सबने हर्ष प्रकट किया और उनके सम्पर्कमें आनन्दसे काल जाने लगा।

●

२२

समाजके न्यायालयमें

जतारा के जैन का उद्धार

एक बार मड़ावरासे हम श्री पं० मोतीलालजी वर्णीके साथ उनके ग्राम जतारा पहुँचे। यहाँपर एक जैनी ऐसे थे जो २५ वर्ष से जैन समाजके द्वारा बहिष्कृत थे। उन्होंने एक गहोईकी औरत रखली थी, उसके एक कन्या हुई, उसका विवाह उन्होंने बिनैका-वालके यहाँ कर दिया था। कुछ दिनके बाद वह औरत मर गई और लड़की अपनी ससुरालमें रहने लगी। जातिसे बहिष्कृत होनेके कारण लोग उन्हें मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये भी नहीं आने देते थे, वह बोले—मैंने पंचोंसे बहुत ही अनुनय विनय किया कि महाराज! दूरसे दर्शन कर लेने दो परन्तु यही उत्तर मिला कि मार्ग विपरीत हो जावेगा। इत्यादि पंचोंसे निवेदन किया परन्तु उन्होंने एक नहीं सुनी।

इसके अनन्तर मैंने सम्पूर्ण पञ्च महाशयोंको बुलाया और कहा कि यदि कोई जैनी जातिसे च्युत होनेके अनन्तर बिना किसी शर्तके दान करना चाहे तो आप लोग क्या उसे ले सकते हैं ? मन्दिरकी शोभा हो जावेगी तथा एकका उद्धार हो जावेगा। शास्त्रमें यहाँ तक कथा है कि शूकर, सिंह, नकुल और बानरसे हिंसक जीव भी मुनिदानकी अनुमोदनासे भोगभूमि गये। व्याघ्रीका जीव स्वर्ग गया, जटायु पक्षी स्वर्ग गया, बकरेका जीव स्वर्ग गया, चाण्डालका जीव स्वर्ग गया, चारों गतिके जीव सम्यग्दृष्टि हो सकते हैं, तिर्यञ्चोंके पञ्चम गुणस्थान तक हो जाता है। धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है न कि शरीरसे, शरीर तो सह-कारी कारण है, जहाँ आत्माकी परिणति मोहादि पापोंसे मुक्त हो जाती है वहीं धर्मका उदय हो जाता है।

सबने सहर्ष स्वीकार किया और वेदिका लाने तथा जड़वाने का भार श्रीमान् मोतीलालजी वर्णीके अधिकारमें सौंपा गया। फिर क्या था, उन जातिच्युत महाशयके हर्षका ठिकाना न रहा। श्री वर्णीजी जयपुर जाकर वेदी लाये। मन्दिरमें विधिपूर्वक वेदी प्रतिष्ठा हुई और उसपर श्री पार्श्वप्रभुकी प्रतिमा विराजमान हुई। सबने उसे श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शनकी आज्ञा प्रदान कर दी। इस आज्ञाको सुनकर वह तो आनन्द समुद्रमें डूब गया। आनन्द से दर्शन कर पञ्चोंसे विनय पूर्वक बोला–'उत्तराधिकारी न होने से मेरी सम्पत्ति राज्यमें चली जावेगी अतः मुझे जातिमें मिला लिया जाय इससे मेरी सम्पत्तिका कुछ सदुपयोग हो जायगा।'

यह सुनकर लोग आगबबूला हो गये और झुंझलाते हुए बोले—'कहाँ तो मन्दिर नहीं आ सकते थे अब जातिमें मिलनेका हौसला करने लगे। अंगुली पकड़कर पोंचा पकड़ना चाहते हो ?' मैंने कहा—'भाई साहब ! इतने क्रोधकी आवश्यकता नहीं। कल्पना करो यदि किसीने दस्साके साथ सम्बन्ध कर लिया

इसका क्या यह अर्थ हुआ कि वह जैनधर्मकी श्रद्धासे भी च्युत हो गया। श्रद्धा वह वस्तु है जो सहसा नहीं जाती, शास्त्रोंमें इसके बड़े-बड़े उपाख्यान हैं—बड़े-बड़े पातकी भी श्रद्धाके बलसे संसारसे पार हो गये। प्रथमानुयोगमें ऐसी बहुतसी कथाएँ हैं जिनमें यह बात सिद्ध है कि जो चरित्रसे गिरने पर भी सम्यग्दृष्टि हैं वे कालान्तरमें चारित्रके पात्र हो सकते हैं। वहाँ स्वरूपचन्द्रजी बनपुरया बहुत ही चतुर पुरुष थे, वे बोले—

कारज धीरे होत है काहे होत अधीर,
समय पाय तरुवर फलै केतिक सींचो नीर,

इसलिये मेरी सम्मति तो यह है कि यह प्रान्त भरके जैनियों को सम्मिलित करें उस समय इनका उद्धार हो जावेगा।' आठ दिन बाद प्रान्तके दो सौ आदमी सम्मिलित हुए, अन्तमें यह निर्णय हुआ कि यदि यह दो पङ्गत पक्की और एक पङ्गत कच्ची रसोई की देवें तथा २५० रुपया पपौरा विद्यालय को तथा २५०) जताराके मन्दिरको तो जातिमें मिला लिवे जावें।

मैंने कहा—'अब विलम्ब मत कीजिए, कल ही इनकी पङ्गत ले लीजिये।' सबने स्वीकार किया, दूसरे दिनसे सानन्द पंक्ति भोजन हुआ और ५००) दण्डके दिये गये। उसने यह सब करके बीस हजारकी सम्पत्ति जो उसके पास थी एक जैनी का बालक गोद लेकर उसके सुपुर्द कर दी। इस प्रकार एक जैन का उद्धार हो गया और उसकी सम्पत्ति राज्यमें जाने से बच गई। कहनेका तात्पर्य यह है कि शुद्धिके मार्गका लोप नहीं करना चाहिये तथा इतना कठोर दण्ड भी नहीं देना चाहिये कि जिससे भयभीत हो कोई अपने पापोंको व्यक्त ही न कर सके।

नीमटोरिया के जैन का उद्धार

एक बार हम और कमलापति सेठ नीमटोरिया आये। यहाँ

बरायठा से एक बरात आई थी। यहाँ जो लड़कीका मामा था उससे मामूली अपराध बन गया था अतः लोगोंने उसका विवाह में आना जाना बन्द कर दिया था उसकी पञ्चायत हुई और किसी तरह उसे विवाहमें बुलाना मंजूर हो गया।

हलवानी के जैन का उद्धार

नीमटोरियासे तीन मील हलवानी ग्राम है, यहाँ पर एक प्रतिष्ठित जैनी रहता था उसे भी लोग विवाहमें नहीं बुलाते थे। उसकी भी पञ्चायत की गई। मैंने पञ्चोंसे पूछा—'भाई! इनका क्या दोष है।' पञ्चोंने कहा इनके लड़केकी औरत अत्यन्त सुन्दरी है बस, यही अपराध का कारण है।' महाशय! क्या कभी उसने पर पुरुषके साथ अनाचार भी किया है ?'....मैंने पूछा। 'सो तो सुननेमें नहीं आया'........उन्होंने कहा।

बस, मुझे एकदम क्रोध आगया, सेठजीसे कहा कि हम ऐसे पञ्चोंके साथ सम्भाषण करना महान् पाप समझते हैं। इस ग्राममें मैं पानी न पीऊँगा तथा ऐसे विवाहादि कार्योंमें जो भोजन करेगा वह महान् पातकी होगा। सुनते ही जितने नवयुवक थे सबने विवाहकी पंगतमें जानेसे इन्कार कर दिया और जो पंगत में पहुँच चुके थे वे सब पतरीसे उठने लगे। बातकी बातमें सन-सनी फैल गई। लड़कीवाला दौड़ा आया और बड़ी नम्रतासे कहने लगा—'मैंने कौनसा अपराध किया है ? मैं उसे बुलानेको तैयार हूँ।' पञ्च लोगोंने अपने अपराधका प्रायश्चित्त किया और जो महाशय—रूपवती स्त्रीके कारण विवाहमें नहीं बुलाये जाते थे वे सम्मिलित हुए। इस प्रकार यह अनर्थ मिटा।

कुछ महत्त्व-पूर्ण निर्णय

इसी ग्राममें यह भी निश्चय हो गया कि हम लोग विवाहमें

स्त्री समुदाय न ले जावेंगे और एक प्रस्ताव यह भी पास हो गया कि जो आदमी दोषका प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो जावेगा उसे विवाह आदि कार्योंके समय बुलानेमें बाधा न होगी। एक सुधार यह भी हो गया कि मन्दिरका द्रव्य जिनके पास है उनसे आज वापिस ले लिया जावे यथा भविष्यमें बिना गहनेके किसीको मन्दिरसे रुपया न दिया जावे। यह भी निश्चय हुआ कि आरम्भी, उद्यमी एवं विरोधी हिंसाके कारण किसीको जातिसे बहिष्कृत न किया जावे। पंगतमें आलू बेंगन आदि पदार्थ न बनाये जावें तथा रात्रिके समय मन्दिरमें प्रवचन के समय सभी सम्मिलित हों।

उस समय हमारे मनमें विचार आया कि ग्रामीण जनता बहुत ही सरल और भोली होती है। उन्हें कोई उपदेश देनेवाला नहीं अतः उनके मनमें जो आता है वही कर बैठते हैं। यदि कोई निष्कपट भावसे उन्हें उपदेश देवे तो उस उपदेशका महान् आदर करते हैं और उपदेशदाताको परमात्मातुल्य मानते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विद्वान् ग्रामोंमें जाकर वहांके निवासियोंकी प्रवृत्तिको निर्मल बनानेकी चेष्टा करें।

बड़गांवके एक कुटुम्बका उद्धार

एक दिन मैंने बाबा गोकुलचन्द्रजीसे कहा—'महाराज! बड़गांवके आसपास बहुतसे गोलालारोंके घर अपनी जातिसे बाह्य हैं यदि आपका विहार उस क्षेत्रमें हो जाय तो उनका उद्धार सहज ही हो जाय। मैं आपकी सेवा करनेके लिये साथ चलूँगा।' बाबाजीने स्वीकार किया। हम लोग बड़गांव पहुँचे। सागरसे पं० मूलचन्द्रजी, कटनीसे पं० बाबूलालजी, रीठीसे श्री सिं० लक्ष्मणलालजी तथा रैपुरासे लश्करिया आदि बहुतसे सज्जनगण भी आ पहुँचे। रघुनाथ नारायणदास मोदीसे हम लोगोंने कहा

कि सायंकाल पञ्चायत बुलानेका आयोजन करो। उन्होंने वैसा ही किया, रात्रिके आठ बजे सब लोग एकत्र हो गये। मैंने कहा– 'इस ग्राममें जो सबसे वृद्ध हो उसे भी बुलाओ।' रघुनाथ मोदी स्वयं गये और एक लोधीको जिसकी अवस्था अस्सी वर्षके लगभग होगी साथ ले आये। मैंने ग्रामके पञ्चोंसे निवेदन किया कि—'आज रघुनाथ मोदी जैनकुलमें जन्म लेकर भी पचास वर्षसे जातिबाह्य हैं और धर्म कार्योंसे वञ्चित रहते हैं अतः इनका उद्धार कर आप लोग यशोभागी हूजिये।

श्रीमान् प्यारेलालजी सिंघई, जो इस प्रान्तके मुख्य पञ्च थे, बोले—'आप लोग हमको भ्रष्ट करनेके लिये आये हैं? जिन कुटुम्बोंको आप मिलाना चाहते हैं उनकी जातिका पता नहीं। इसके अनन्तर सब पञ्चोंमें कानाफूँसी होने लगी तथा कई पञ्च उठने लगे। मैंने कहा—'महानुभावो! ऐसी उतावली करना उत्तम नहीं, निर्णय कीजिये। इसके बाद मैंने उस अस्सी वर्षके वृद्धसे कहा कि बाबा आपको तो सब कुछ पता होगा। कृपाकर कहिये कि क्या बात है?

वृद्ध बोला—'मैं कहता हूँ परन्तु आप लोग परस्परके वैमनस्यमें उस तत्त्वका अनादर न कर देना। रघुनाथ मोदीके पिताने एक बार जाति भोज [illegible]ला था उसमें कई ग्रामके लोग एकत्र हुए थे। पंगतके बाद [illegible]के पिताने पञ्च लोगोंसे यह भावना प्रकट की कि यहाँ यदि मन्दिर बन जावे तो अच्छा हो। चन्दा लिखना प्रारम्भ हुआ। सबसे अच्छी रकम रघुनाथ मोदीके पिताने लिखायी। एक ग्रामीण मनुष्यने चन्दा नहीं लिखाया उसपर इनके पिता बोले—'खानेको तो शूर हैं पर चन्दा देनेमें आनाकानी। इसपर पञ्च लोग कुपित होकर उठने लगे, जैसे-तैसे अन्तमें यह पञ्चायत हुई कि चूँकि रघुनाथके पिताने एक गरीब

की तौहीन की अतः दो सौ रुपया मन्दिरको और एक पक्का भोजन पञ्चोंको देवें नहीं तो जातिमें इन्हें न बुलाया जावे। इन्होंने न दण्ड दिया न पंगत ही। यह विचार करते रहे कि हमारा कोई क्या कर सकता है? अन्तमें फल यह हुआ कि उन्हें कोई भी बिरादरीमें नहीं बुलाता। श्री सिं० प्यारेलालजीने जो कहा है वह ठीक नहीं है क्योंकि उनकी आयु चालिस वर्षकी ही है और मैं जो कह रहा हूँ उसे पचास वर्ष हो गये हैं। सबको वृद्ध बाबाकी कथामें सत्यताका परिचय हुआ अन्तमें यह तय किया कि रघुनाथ मोदीको मिला लिया जावे।

हम मनमें बहुत हर्षित हुए। अब पञ्चोंने मिलकर यह फैसला किया कि दो सौ पचास रुपया परवार सभाको, दो सौ पचास गोलापूर्व सभाको दो, सौ पचास गोलालारे सभाको, दो सौ पचास नैनागिरि क्षेत्रको, दस हजार विद्यालयको तथा दो पंगत यदि रघुनाथ मोदी स्वीकार करें तो उन्हें जातिमें मिला लिया जावे, इस फैसलेको सुनकर रघुनाथ मोदी और उनके भाई नारायणदासजी मोदी पुलकित वदन हो गये। उन्होंने उसी समय ग्यारह हजार लाकर पञ्चोंके समक्ष रख दिये। पञ्चोंने मिलकर रघुनाथ मोदीको मय कुटुम्बके गले लगाया और आज्ञा दी कि प्रातःकाल ही सहभोज हो। इस पञ्चायतमें प्रातःकाल हो गया। दस बजेके बाद पंगतका बुलौआ हुआ पञ्चलोग आगये, सानन्द पक्का भोजन परोसा गया। सब भोजन करने लगे बीचमें रघुनाथदासको भी शामिल कर लिया। इस तरह पञ्च लोगोंने पचास वर्षसे च्युत एक कुटुम्बका उद्धार कर दिया।

२३

मोराजीके विशाल प्राङ्गणमें

मेरे हृदयमें यह बात सदा शल्यकी तरह चुभती रहती थी कि इस प्रान्तमें यह एक ही तो पाठशाला है पर उसके पास निजका मकान तक नहीं, वह अपने थोड़े ही कालमें तीन मकानों में रह चुकी। 'आज यहाँ कल वहाँ' इस द्ररिद्रों जैसी दशामें यह पाठशाला किस प्रकार चल सकेगी ?

श्री बिहारीलालजी मोदी और सिंघई रज्जीलालजी मन्दिरके मुहतमिम थे। उन्होंने एक दिन मुझसे कहा—कि यदि विद्यालयको पुष्कल जमीन चाहते हो तो श्री मोराजीकी जगह, जिसमें कि एक अपूर्व दरवाजा है जो आप पच्चीस हजारमें न बनेगा तथा मधुर जलसे भरे हुए दो कूप हैं पाठशालाके संचालकोंको दे सकते हैं। श्रीमान् कड़ोरीमल्लजी पाठशालाके मन्त्री थे, मकान लेकर तीन मासमें आपने तैयार कर दिया और पाठशाला श्री ढाकनलालजीके मकानसे मोराजी भवनमें आगई। यहाँ आनेपर सब व्यवस्था ठीक हो गई। यह बात आश्विन सुदी ९ सं० १९८० की है।

जब मैं मोराजीके विशाल प्राङ्गणमें बहुतसे छात्रोंको आनन्दसे एक साथ खेलते कूदते और विद्याध्ययन करते देखता था तब मेरा हृदय हर्षातिरेकसे भर जाता था।

२४

सागर में कलशोत्सव

सम्वत् १९७२ की बात है, सागरमें श्री टीकाराम प्यारेलाल जी मलैयाके यहाँ कलशोत्सवका आयोजन हुआ। उसमें पण्डितोंके बुलानेका भार मेरे ऊपर छोड़ा गया। मैंने भी सब पण्डितोंके बुलानेकी व्यवस्था की जिसके फलस्वरूप श्रीमान् निखिल विद्यावारिधि पण्डित अम्बादासजी शास्त्री भी, जो कि हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसमें संस्कृतके प्रिन्सपल थे—इस उत्सवमें सम्मिलित हुए। आपका शानदार स्वागत हुआ उसी समय आयोजित आम सभामें जैनधर्मके अनेकान्तवादपर आपका मार्मिक भाषण हुआ जिसे श्रवण कर अच्छे-अच्छे विद्वान् लोग मुग्ध हो गये।

मैंने जनताके समक्ष पाठशालाका विवरण सुनाया। उपस्थित जनताने दिल खोलकर चन्दा लिखवाया और पन्द्रह मिनटके अन्दर पन्द्रह हजार रुपयोंका चन्दा हो गया। मैं दूसरे ही दिन से चन्दाकी वसूलीमें लग गया और यहाँका चन्दा वसूल कर देहातमें भ्रमणके लिये निकल पड़ा।

एक मास तक देहातमें भ्रमण करता रहा। चन्दा वसूलकर मैं सागर आ गया। इस प्रकार सागर पाठशालाके ध्रौव्यफण्डमें छब्बीस हजारके लगभग रुपया हो गया, श्री सिंघई कुन्दन-लालजीके पिता कारेलालजीने अपने स्वर्गवासके समय तीन हजार रुपये दिये।

२५

सागर विद्यालयके परम सहायक

श्री सिंघई रतनलालजी

इतनेमें ही श्री सिंघई रतनलालजी साहब जो कि बहुत ही होनहार और प्रभावशाली व्यक्ति थे तथा पाठशालाके कोषाध्यक्ष थे, एकदम ज्वरसे पीड़ित हो गये। आपने बाईजीको बुलाया और कहा—बाईजी ! मैं अब परलोककी यात्रा कर रहा हूँ, मुझे चिन्ता केवल इस बातकी है कि इस प्रान्तमें दैवयोगसे यह एक विद्यालय हुआ है परन्तु उसमें यथेष्ट द्रव्य नहीं, परन्तु अब व्यर्थकी चिन्तासे क्या लाभ ? मैं दस हजार रुपये विद्यादानमें देता हूँ।' बाईजीने कहा—'भैया ! यही मनुष्य पर्यायका सार है।' आध घंटा बाद रतनलालजीका स्वर्गवास हो गया। आपके शवके साथ हजारों आदमियोंका समूह था।

दानवीर श्री कमरया रज्जीलालजी

कमरया रज्जीलालजीने पाठशालाका भवन तथा एक रसोई घर बनवा दिया साथमें सौ रुपया मासिक भी देने लगे। कुछ दिन बाद आप बोले कि हम पाठशालाके लिये एक भवन और बनवाना चाहते हैं। मैंने कहा—'बहुत अच्छा' आपने सदस्योंसे मंजूरी ली और पहलेसे भी अच्छा भवन बनवा दिया। दोनों 'भवनोंके बीच में एक बड़ा हाथी दरवाजा बनवाया जिसमें बराबर हाथी जा सकता है। दरवाजेके ऊपर चन्द्रप्रभ चैत्यालय बनवा दिया जिसमें छात्र प्रतिदिन दर्शन पूजन स्वाध्याय करते हैं। आपके अपूर्व त्यागसे मोराजीका वह बीहड़ स्थान जहाँ

से रात्रिके समय निकलनेमें लोग भयका अनुभव करते थे बहुत अल्प कालमें सागरका एक दर्शनीय स्थान बन गया। जब आपका स्वर्गवास होने लगा तब १०००० रुपया विद्यालयको तथा ६००० रुपया दोनों मन्दिरोंको आपने दिये। आप योग्य नर-रत्न थे।

जैन जातिभूषण श्री सिंघई कुन्दनलालजी

सिंघई कुन्दनलालजी सागरके सर्वश्रेष्ठ सहृदय व्यक्ति थे। एक दिन आप बाईजीके यहां बैठे थे। मैंने कहा—'देखो, सागर इतना बड़ा शहर है परन्तु यहां पर कोई जैन धर्मशाला नहीं है। उन्होंने कहा—'हो जावेगी'। दूसरे ही दिन श्री कुन्दनलालजी घीवालोंने जो आपके साले थे, कटराके नुक्कड़ पर बैरिस्टर बिहारीलालजी रायके सामने एक मकान ३४०० रुपयामें ले लिया और बादमें इतना ही रुपया उसके बनानेमें लगा दिया। आज-कल वह पच्चीस हजार रुपये की लागतका है और सिंघईजी की धर्मशाला के नामसे प्रसिद्ध है, हम उसी में रहने लगे।

एक दिन सिंघईजी पाठशालामें आये, मैंने कहा यहां और तो सब सुभीता है परन्तु सरस्वती भवन नहीं है। विद्यालयकी शोभा सरस्वती मन्दिरके बिना नहीं। कहनेकी देर थी कि आपने मोराजी के उत्तरकी श्रेणीमें एक विशाल सरस्वती भवन बनवा दिया। जयधवल तथा धवल दोनों ग्रन्थराज दोहजार रुपये में मँगा दिये। सरस्वती भवनके उद्घाटनके पहले दिन प्रतिमाजी विराजमान करनेका मूहूर्त हो गया दूसरे दिन सरस्वती भवनके उद्घाटन का अवसर आया। मैंने दो आलमारी पुस्तकें सरस्वती भवनके लिये भेंट कीं। उद्घाटन सागरके प्रसिद्ध वकील स्वर्गीय श्री रामकृष्ण रावके द्वारा हुआ। यह सरस्वती भवन सुन्दर रूपसे चलता है लगभग पांच हजार पुस्तकें इसमें होंगी।

कुछ दिन हुए सागर में भी हरिजन आन्दोलन प्रारम्भ हो

गया। मन्दिरों में सबको दर्शन मिलना चाहिये क्योंकि भगवान् पतित पावन हैं अतः मैंने सिंघईजी से कहा—'आप एक मानस्तम्भ बनवा दो जिसमें ऊपर चार मूर्तियां स्थापित होंगी हर कोई आनन्दसे दर्शन कर सकेगा।' सिंघईजीके उदार हृदयमें वह बात आगई, दूसरे ही दिनसे भैयालाल मिस्त्रीकी देख रेखमें मानस्तम्भका कार्य प्रारम्भ हो गया और तीन मासमें बनकर तैयार हो गया। पं० मोतीलालजी वर्णी द्वारा समारोहसे प्रतिष्ठा हुई। उत्तुङ्ग मानस्तम्भको देखकर समवशरणके दृश्यकी याद आ जाती है।

एक महिलाका विवेक

सागरमें मन्त्री पूर्णचन्द्रजीके मित्र श्री पन्नालालजी बड़कुर थे। दैवयोगसे श्री पन्नालालजीका स्वास्थ्य खराब होने लगा। एक दिन उनकी धर्मपत्नीने मुझे घर बुलवाकर कहा—'वर्णीजी! मेरे पतिकी अवस्था शोचनीय है अतः इन्हें सावधान करना चाहिये साथ ही इनसे दान भी कराना चाहिये। इसके बाद मैंने पन्नालालजीसे कहा कि आपकी धर्मपत्नीकी सम्मति है अतः आपको कितना दान देना इष्ट है? उन्होंने हाथ उठाया। औरतने कहा कि हाथमें पाँच अंगुलियाँ होती हैं अतः पाँच हजार रुपयाका दान हमारे पतिको इष्ट है। चूँकि उनका प्रेम सदा विद्यादानमें रहता था अतः यह रुपया संस्कृत विद्यालयको ही देना चाहिये और मन्त्री पूर्णचन्द्रजीसे कहा कि आप आज ही दुकानमें विद्यालयके जमा कर लो तथा मेरे नाम लिख दो। अब इन्हें समाधिमरण सुनानेका अवसर है वह स्वयं सुनाने लगी और पन्द्रह मिनट बाद श्री पन्नालालजी बड़कुरका शान्तिसे समाधिमरण हो गया।

●

२६

द्रोणगिरि प्रांतमें

द्रोणगिरि

द्रोणगिरि सिद्ध क्षेत्र बुन्देलखण्ड के तीर्थ क्षेत्रोंमें सबसे अधिक रमणीय है। हरा भरा पर्वत और समीप ही बहती हुई युगल नदियाँ देखते ही बनती हैं। पर्वत अनेक कन्दराओं और निर्झरोंसे सुशोभित है। श्री गुरुदत्त आदि मुनिराजोंने अपने पवित्र पाद-रजसे इसके कण-कणको पवित्र किया है। यह उनका मुक्तिस्थान होनेसे निर्वाणक्षेत्र कहलाता है। यहाँ आनेसे मनमें अपने आप असीम शान्तिका संचार होने लगता है। यहाँ ग्राम-में एक ओर ऊपर पर्वतपर सत्ताईस अन्य जिन मन्दिर हैं। ग्रामके मन्दिरमें श्री ऋषभदेव स्वामीकी शुभ्रकाय विशाल प्रतिमा है पर निरन्तर अंधेरा रहनेसे उसमें चमगीदड़ें रहने लगीं जिससे दुर्गन्ध आती रहती थी।

मैंने एक दिन सिंघईजीसे कहा—'द्रोणगिरि क्षेत्रके गाँवके मन्दिरमें चमगीदड़ें रहती हैं जिससे बड़ी अविनय होती है यदि देशी पत्थरकी एक वेदी बन जावे और प्रकाशके लिये खिड़कियाँ रख दी जावें तो बहुत अच्छा हो। सिंघईजीके विशाल हृदयमें यह बात भी समा गई। अतः हमसे बोले कि 'अपनी इच्छाके अनुसार बनवा लो।' मैं स्वयं वेदी और कारीगरको लेकर द्रोणगिरि गया तथा मन्दिरमें यथास्थान वेदी लगवा दी।

यहां एक बात विशेष यह हुई कि जहाँ हम लोग ठहरे थे, वहाँ दरवाजेमें मधुमक्खियोंने छाता लगा लिया जिससे आने जानेमें असुविधा होने लगी। मालियोंने विचार किया कि जब सब सो जावें तब धूम कर दिया जावे जिससे मधु मक्खियाँ उड़

जावेंगी। ऐसा करनेसे सहस्रों मक्खियाँ मर जातीं, अतः हम श्री जिनेन्द्रदेवके पास प्रार्थना करने लगे कि "हे प्रभो! आपकी मूर्तिके लिए ही वेदी बन रही है। यदि यह उपद्रव रहा तो हम लोग प्रातःकाल चले जावेंगे। हम तो आपके सिद्धान्तके ऊपर विश्वास रखते हैं परजीवोंको पीड़ा पहुँचाकर धर्म नहीं चाहते। आपके ज्ञानमें जो आया है वही होगा। सम्भव है यह विघ्न टल जावे, इस प्रकार प्रार्थना करके सो गये। प्रातःकाल उठनेके बाद क्या देखते हैं कि वहाँ पर एक भी मधुमक्खी नहीं है। फिर क्या था? पन्द्रह दिनमें वेदिका जड़ गई। पश्चात् पण्डित मोतीलालजी वर्णीके द्वारा नवीन वेदिकामें विधिवत् श्री जी विराजमान हो गये।

द्रोणगिरि क्षेत्रपर पाठशालाकी स्थापना

जब द्रोणगिरि आया तब पाठशालाके लिए प्रयास किया। घुवारामें जलविहार था वहाँ जानेका अवसर मिला। मैंने वहाँ एकत्रित हुए लोगोंको समझाया कि—

'देखो, यह प्रान्त विद्यामें बहुत पीछे है। आप लोग जल-विहारमें सैकड़ों रुपये खर्च कर देते हो कुछ विद्यादानमें भी खर्च करो। यदि द्रोणगिरिमें एक पाठशाला हो जावे तो अनायास ही इस प्रान्तके बालक जैनधर्मके विद्वान् हो जावेंगे।'

बात तो सबको जँच गई पर रुपया कहाँसे आवे? किसीने कहा—'अच्छा चन्दा कर लो।' चन्दा हुआ परन्तु बड़ा परिश्रम करने पर भी पचास रुपया मासिकका चन्दा हो सका। घुवारा-से गञ्ज गये वहाँ दो सौ पचास रुपयाके लगभग चन्दा हुआ। सिंघई कुन्दनलालजी सागरवालोंने इसके लिए सौ रुपये वर्ष देना स्वीकृत किया। बैशाख बदि ७ सं० १९८५ में पाठशाला स्थापित कर दी। पं० गोरेलालजीको बीस रुपया पर रख लिया, चार पांच छात्र भी आ गये और कार्य चलने लगा।

एक वर्ष बीतनेके बाद हम लोग फिर आये। पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ। पं० जीके कार्यसे प्रसन्न होकर इस वर्ष सिंघईजीने बड़े आनन्दसे पाँच हजार रुपया देना स्वीकृत कर लिया। सिंघई वृन्दावनदासजीने एक सरस्वती भवन बनवा दिया, कई आदमियोंने छात्रोंके रहनेके लिए छात्रालय बना दिया। एक कूप भी छात्रावासमें बन गया। छात्रोंकी संख्या २० हो गई और पाठशाला अच्छी तरह चलने लगी। इस पाठशाला-का नाम श्री गुरुदत्त दि० जैन पाठशाला रखा गया।

दया ही मानवका प्रमुख कर्त्तव्य

एक दिन सागर में शौचादिसे निवृत्त होनेके लिये गाँवके बाहर गया था। वहाँ एक औरतके पैरमें काँटा लग गया था, पर वह पैरको न छूने देती थी। कहती थी कि 'मैं जातिकी कोरिन तथा स्त्री हूँ आप लोग पण्डित हैं कैसे पैर छूने दूँ ?' मैंने कहा—'बेटी ! यह आपत्तिकाल है, इस समय पैर छुवानेमें कोई हानि नहीं !' परन्तु उस औरतने पैर छुवाना स्वीकार न किया। तब कुछ छात्रोंने उसके हाथ पकड़ लिए और कुछने पैर, मैंने संडसीसे काँटा दबा कर ज्यों ही खींचा त्यों ही एक अंगुलका काँटा बाहर आ गया साथ ही खूनकी धारा बहने लगी। मैंने पानी ढोलकर तथा धोती फाड़कर पट्टी बाँध दी उसे मूर्च्छा आ गई पश्चात् जब मूर्च्छा शान्त हुई तब लकड़ीकी मौरी उठानेकी चेष्टा करने लगी वह लकड़हारी थी जङ्गलसे लकड़ियाँ लाई थी। मैंने कहा तुम धीरे-धीरे चलो हम तुम्हारी लकड़ियाँ तुम्हारे घर पहुँचा देवेंगे। बड़ी कठिनता से वह तैयार हुई। हम लोगोंने उसका बोझ सिरपर रखकर उसके मोहल्लामें पहुँचा दिया। लिखने का तात्पर्य यह है कि मनुष्यको सर्वसाधारण दयाका उद्योग करना चाहिये क्योंकि दया ही मानवका प्रमुख कर्तव्य है।

२७

खतौलीमें कुंदकुंद विद्यालय

एक बार खतौली गया। यहाँ पर श्रीमान् भागीरथजी भी, जो मेरे परम हितैषी बन्धु एवं प्राणीमात्रकी मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति करानेवाले थे, मिल गये। यहीं पर श्री दीपचन्द्रजी वर्णी भी थे। उनके साथ भी मेरा परम स्नेह था। हम तीनोंकी परस्पर घनिष्ठ मित्रता थी। एक दिन तीनों मित्र गङ्गाकी नहर पर भ्रमणके लिये गये। वहीं पर सामायिक करनेके बाद यह विचार करने लगे कि यहाँ एक ऐसे विद्यालयकी स्थापना होनी चाहिये जिससे इस प्रान्तमें संस्कृत विद्याका प्रचार हो सके।

एक दिन मैंने खतौलीमें विद्यालय स्थापित करनेकी चर्चा कुछ लोगोंके समक्ष की, तब लाला विश्वम्भरदासजी बोले कि आप चिन्ता न करिये, शास्त्रसभामें इसका प्रसङ्ग लाइये बातकी बातमें पाँच हजार रुपया हो जावेंगे। दूसरे दिन मैंने शास्त्र सभामें कहा—'आज कल पाश्चात्य विद्याकी ओर ही लोगों की दृष्टि है और जो आत्म कल्याणकी साधक संस्कृत-प्राकृत विद्या है उस ओर किसीका लक्ष्य नहीं। अतः प्राचीन विद्याकी ओर लक्ष्य देना चाहिये।' उपस्थित जनताने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया जिससे दस मिनटमें ही पाँच हजार रुपयोंका चन्दा लिखा गया और यह निश्चय हुआ कि एक संस्कृत विद्यालय खोला जावे जिसका नाम कुन्दकुन्द विद्यालय हो। दो दिन बाद विद्यालयका मुहूर्त होना निश्चित हुआ। एक बिल्डिंग भी विद्यालयको मिल गई। पश्चात् वहाँसे चलकर हम सागर आ गये। विद्यालयकी स्थापना सन् १९३५ में हुई। यह विद्यालय अब

कालेजके रूपमें परिणत हो गया है। जिसमें लगभग छह सौ छात्र अध्ययन करते हैं और तीस अध्यापक हैं।

•

२८

तीर्थ-यात्रा
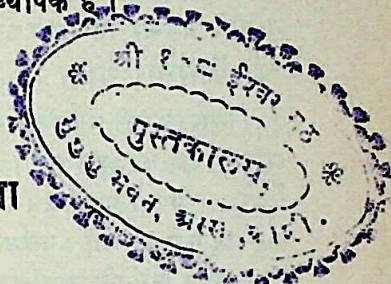
श्रीगोम्मटेश्वर यात्रा

संवत् १९७६ की बात है—अगहनका मास था सरदीका प्रकोप वृद्धिपर था। अवसर देख बाईजीने मुझसे कहा—'बेटा! एक बार जैनबद्री की यात्राके लिये चलना चाहिये। मेरे मनमें श्री १००८ गोम्मटेश्वर स्वामीकी मूर्तिके दर्शन करनेकी बड़ी उत्कण्ठा है।' उसी समय उन्होंने सात सौ रुपये सामने रख दिये। यात्राका पूर्ण विचार स्थिर हो गया सब सामग्रीकी योजना की गई और शुभ मुहूर्तमें जब मैं यात्राके लिये चलने लगा तब स्टेशन तक बहुत जनता आई और सबने नारियल भेंट किये। यहाँ से चलकर जैनबद्री पहुँच गये। प्रातःकाल स्नानादि कार्यसे निवृत्त होकर श्री गोम्मटस्वामीकी वन्दनाको चले। ज्यों-ज्यों प्रतिमाजीका दर्शन होता था त्यों-त्यों हृदयमें आनन्दकी लहरें उठती थीं। जब पासमें पहुँच गये तब आनन्दका पारावार न रहा। बड़ी भक्तिसे पूजन किया। जो आनन्द आया वह वर्णनातीत है। प्रतिमाकी मनोज्ञताका वर्णन करनेके लिये हमारे पास सामग्री नहीं परन्तु हृदयमें जो उत्साह हुआ वह हम ही जानते हैं। कहनेमें असमर्थ हैं (इसके बाद नीचे चतुर्विंशति तीर्थङ्करों की मूर्त्तियोंके दर्शन कर श्रीभ ारकजीके मन्दिर में गये।)

यहाँका वर्णन श्रवणबेलगोलाके इतिहाससे आप जान सकते हैं। हम लोग फिर रेल के द्वारा स्टेशन आ गये और वहाँसे गाड़ीमें बैठकर गिरिनारकी यात्राके लिये चल दिये।

श्री गिरिनार यात्रा

गिरिनारजी पहुँचने पर श्री नेमिनाथ स्वामीके दर्शन कर मार्ग प्रयासको भूल गये। बादमें तलहटी पहुँचे और वहाँसे श्री गिरिनार पर्वत पर गये। पर्वत पर श्री नेमिनाथ स्वामीका दर्शन कर गद्गद् हो गये। पर्वतके ऊपर नाना प्रकारके पुष्पोंकी बहार थी। कुन्द जातिके पुष्प बहुत ही सुन्दर थे। दिगम्बर मन्दिरके दर्शनकर श्वेताम्बर मन्दिरमें गये। दिगम्बरोंका मन्दिर रमणीक है और श्री नेमिनाथ स्वामीकी मूर्ति भी अत्यन्त मनोज्ञ है। यहाँसे चलकर श्री नेमिनाथ स्वामीके निर्वाणस्थानको जो कि पञ्चम टोंक पर है चल दिये। थोड़े समय में पहुँच गये। उस स्थान पर एक छोटी सी मढ़िया बनी हुई है। कोई तो इसे आदमबाबा मानकर पूजते हैं, कोई दत्तात्रय मानकर उपासना करते हैं और जैनी लोग श्री नेमिनाथजी मानकर उपासना करते हैं। अन्तिम माननेवालोंमें हम लोग थे। हमने तथा कमलापति सेठ, बाईजी और मुन्नाबाई आदिने आनन्दसे श्री नेमिनाथ स्वामीकी भावपूर्वक पूजा की इसके बाद आध घण्टा वहां ठहरे, स्थान रम्य था परन्तु दस बज गये थे अतः अधिक नहीं ठहर सके। यहांसे चलकर एक घण्टा बाद शेषावन (सहस्राम्रवन)में आ गये। यहाँकी शोभा अवर्णनीय है। सघन आम्र वन है। उपयोग विशुद्धताके लिये एकान्त स्थान है एक घण्टा बाद पर्वतके नीचे जो धर्मशाला है उसमें आ गये और भोजनादिसे निश्चिन्त हो सो गये।

यहाँ दो दिन रहकर प्रयाण किया। आबूरोड रहकर पश्चात् अजमेर, जयपुर, आगरा आये और यहाँसे सीधे सागर चले आये। सागरकी जनताने बहुत ही शिष्टताका व्यवहार किया।

कोई सौ नारियल भेंटमें आये। यह सब होकर भी चित्तमें शान्ति न आई।

पुनः गिरिनार यात्रा

सन् १९२१ की बात है अहमदाबादमें कांग्रेस थी, पं० मुन्नालालजी और राजधरलालजी बरया आदिने कहा कि कांग्रेस देखनेके लिये चलिये।' मैंने कहा—'मैं क्या करूँगा?' उन्होंने कहाँ—'बड़े-बड़े नेता आवेंगे अतः उनके दर्शन सहज ही हो जावेंगे, उन महानुभावोंके व्याख्यान सुननेको मिलेंगे और सब से बड़ा लाभ यह होगा कि श्रीगिरिनार सिद्धक्षेत्रकी वन्दना अनायास हो जावेगी।' मैं श्रीगिरिनारजीकी यात्राके लोभसे कांग्रेस देखनेके लिये चला गया।

हम लोग कांग्रेस देखकर श्री गिरिनारजीकी यात्राके लिये अहमदाबादसे प्रस्थानकर स्टेशनपर गये और झूनागढ़का टिकिट लेकर ज्यों ही रेलमें बैठे त्योंही मुझे ज्वरने आ सताया बहुत बेचैनी हो गई। हम लोग प्रातःकाल झूनागढ़ पहुँच गये। स्टेशन-से धर्मशालामें गये, प्रातःकालकी सामायिकादिसे निश्चिन्त होकर मन्दिर गये और श्री नेमिनाथ स्वामीके दर्शन कर तृप्त हो गये।

प्रभुका जीवन चरित्र स्मरण कर हृदयमें एकदम स्फूर्ति आ गई और मनमें आया कि हे प्रभो! ऐसा दिन कब आवेगा जब हम लोग आपके पथका अनुकरण कर सकेंगे, मध्याह्नकी सामा-यिक कर गिरिनार पर्वतकी तलहटीमें चले गये। प्रातःकाल तीन बजेसे वन्दनाके लिये चले और छः बजते बजते पर्वत पर पहुँच गये। वहाँ पर श्री नेमिप्रभुके मन्दिर में सामायिकादि कर पूजन विधान किया, मूर्ति बहुत ही सुभग तथा चित्ताकर्षक है,

गिरिनार पर्वत समधरातलसे बहुत ऊँचा है। बड़ी बड़ी

चट्टानों के बीच सीढ़ियाँ लगाकर मार्ग सुगम बनाया गया है। कितनी ही चोटियाँ तो इतनी ऊँची है कि उनसे मेघ मण्डल नीचे रह जाता है और ऊपरसे नीचेकी ओर देखनेपर ऐसा लगता है मानो मेघ नहीं समुद्र भरा है। कभी कभी वायु का आघात पाकर काले काले मेघोंकी टुकड़ियाँ पाससे ही निकल जाती हैं जिससे ऐसा मालूम देता है मानों भक्तजनोंके पाप पुञ्ज ही भगवद्भक्ति रूपी छेनीसे छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर उड़ रहे हों। ऊपर अनन्त आकाश और चारों ओर क्षितिज पर्यन्त फैली हुई वृक्षोंकी हरीतिमा देखकर मन मोहित हो जाता है। यह वही गिरिनार है जिसकी उत्तुङ्ग चोटियोंसे कोटि कोटि मुनियोंने निर्वाणधाम प्राप्त किया है। यह वही गिरिनार है जिसकी कन्दराओंमें राजुल जैसी सती आर्याओंने घनघोर तपश्चरण किया है। यह वही गिरिनार है जहाँ कृष्ण और बलभद्र जैसे यदुपुङ्गव भगवान नेमिनाथकी समवसरण सभामें बड़ी नम्रता के साथ उनके पवित्र उपदेश श्रवण करते थे। यह वही गिरिनार है जिसकी गुहामें आसीन होकर श्रीधरसेन आचार्यने पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यको षट्खण्डागम का पारायण कराया था।

वहाँसे चलकर पञ्चम टोंक पर पहुँचे, वहाँ जो पूजाका स्थान है। वह स्थान अत्यन्त पवित्र और वैराग्यका कारण है। वहाँ से चलकर बीचमें एक वैष्णव मन्दिर मिलता है जिसमें साधु लोग रहते हैं, पचासों गाय आदि का परिग्रह उनके पास है, श्री राम के उपासक हैं। वहाँसे चलकर सहस्राम्र वन में आये जो पहाड़ से नीचे तलमें है जहाँ सहस्रों आम्रके वृक्ष हैं, बहुत ही रम्य और एकान्त स्थान है। यहाँसे चलकर अहमदाबाद होते हुए बड़ौदा तथा उज्जैन भोपाल होते हुए सागर आ गए।

नैनागिरि

नैनागिरि अत्यन्त रम्य क्षेत्र है। वहाँ गये तो एक दिन की बात है सब लोग नैनागिरिमें धर्म चर्चा कर रहे थे। मैंना सुन्दरी आदिकी कथा भी प्रकरणमें आ गई। एक बोला—'वर्णीजी का पुण्य अच्छा है वे जो चाहें हो सकता है।'

एक बोला—'इनगप्पोंमें क्या रक्खा है ? इनका पुण्य अच्छा है यह तो तब जानें जब इन्हें आज भोजनमें अंगूर मिल जावें।'

नैनागिरिमें अंगूर मिलना कितनी कठिन बात है ? मैंने कहा—'मैं तो पुण्यशाली नहीं परन्तु पुण्यात्मा जीवोंको सर्वत्र सब वस्तुएँ सुलभ रहती है।' एक बोला—'अच्छा, इसमें क्या रक्खा है ? सबलोग भोजनको चलो, पुण्यकी परीक्षा फिर होगी।

हँसते हँसते सब लोग भोजनके लिए बैठे ही थे कि इतनेमें दिल्लीसे अयोध्याप्रसादजी दलाल सागर होते हुए नैनागिरि आ पहुँचे और आते ही कहने लगे—'वर्णीजी ! भोजन तो नहीं कर लिये मैं ताजा अंगूर लाया हूँ।' सब हँसने लगे, उस दिनके भोजनमें सबसे पहला भोजन उन्हींके अंगूरका हुआ। यह घटना देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

पपौरा

पचहत्तर जिनलायों से सुशोभित यह अतिशय क्षेत्र है। यहीं पर स्वर्गीय श्री मोतीलालजी वर्णीने अथक परिश्रम कर एक वीरविद्यालय स्थापित किया था।

मैं तो आपको अपना बड़ा भाई मानता था। आपका मेरे ऊपर पुत्रवत् स्नेह था।

अहार

पपौरा क्षेत्रसे दस मील पूर्वमें अहार अतिशय क्षेत्र है यहाँ पर श्री शान्तिनाथ स्वामीकी अत्यन्त मनोहर प्रतिमा है जिसकी शिल्पकलाको देखकर आश्चर्य होता है। यहाँ पर भूगर्भमें सहस्रों मूर्तियाँ हैं जो भूमि खोदने पर मिलती हैं किन्तु हम लोग उस ओर दृष्टि नहीं देते। मैंने यहाँ पर क्षेत्रकी उन्नतिके लिये एक छोटे विद्यालयकी आवश्यकता समझी, लोगोंसे कहा, लोगोंने उत्साहके साथ चन्दा देकर श्री शान्तिनाथ विद्यालय स्थापित कर दिया। एक छात्रालय भी साथमें है परन्तु धनकी त्रुटिसे विशेष उन्नति नहीं कर सका।

●

२९

परवारसभामें विधवाविवाहकी चर्चा

अबतक सागर पाठशालाकी व्यवस्था अच्छी हो गई थी, छात्रगण मनोयोग पूर्वक अध्ययन करने लगे थे। बहुतसे उत्त-मोत्तम विद्वान् यहाँ से निकलकर जैनधर्मकी सेवा कर रहे थे।

यहाँ चार मास रहकर मैं फिर काशी चला गया क्योंकि मेरा जो विद्याध्ययनका लक्ष्य था वह छूट चुका था और उसका मूल कारण इतस्ततः भ्रमण ही था। आठ मास बनारस रहा इतनेमें बीना (बारहा) का मेला आ गया वहीं पर परवारसभा का अधिवेशन था। जब मैं बनारससे सागर पहुँचा तब पाठ-शालामें श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी उपस्थित थे। मैंने कहा—'ब्रह्मचारीजी! आप ऐसे महापुरुष होकर भी विधवा विवाहके पोषक हो गये। आप जैसे मर्मज्ञको यह उचित था ?'

यह देश भोला है यहाँ तो ऐसा प्रचार करो कि जिससे सहस्रों बालक साक्षर हो जावें। अभी आपकी बातका समय नहीं, क्योंकि लोगोंके हृदयमें आप जिस पापकी प्रवृत्ति कराना चाहते हैं अभी उसकी वासना तक नहीं है। ब्रह्मचारीजी बोले—'तुमने देश काल पर ध्यान नहीं दिया। वैधव्य होनेका दुःख वही जानती है जो विधवा होजाती है। विषय सुखकी लालसासे सत्तर वर्ष तककी अवस्थामें भी लोग विवाह करनेसे नहीं चूकते और समाजमें ऐसे-ऐसे मूढ़ लोग भी हैं जो धनके लालच से कन्याको बेच देते हैं। फिर जब वह वृद्ध मर जाता है तब उस बेचारी विधवाकी जो दशा होती है वह समाजसे छिपी नहीं। अनेक विधवाएँ गर्भपात करती हैं और अनेक बिधर्मियोंके घर चली जाती हैं, एतदपेक्षा यदि विधवा विवाह कर दिया जावे तब कौन-सी हानि है ?' मैं बोला—'हानि जो है सो प्रकट है, जिन जैनियोंमें इसकी प्रथा हो गई है उनकी दशा देखनेसे तरस आता है। इसके प्रचारसे जो अनर्थ होंगे उनका अनुमान जिनमें विधवा विवाह होता है उनके व्यवहारसे कर सकते हो।

इतनी चर्चा होनेके बाद हम बाईजीके यहाँ आये और रात्रिके ७ बजते-बजते वहाँ पहुँच गये। मध्यान्हके समय विधवा विवाह पोषक व्याख्यान हुए। दूसरे दिन आमसभा हुई, जनताकी सम्मति विधवा विवाहके निषेध पक्षमें थी। केवल ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीका विधिपक्षमें व्याख्यान हुआ। मुझे भी बोलना पड़ा, लोग शान्तिसे भाषण सुनते रहे। अन्तमें वर्षाके कारण सभा भङ्ग हो गई। रात्रिको सात बजे मण्डपमें जनता एकत्रित हो गई, और ब्रह्मचारीजीके बहिष्कारका प्रस्ताव पास कर डाला।

यहाँसे चलकर हम सागर आ गये। इसके बाद सागरमें एक सभा हुई जिसमें नाना प्रकारके विवाद होनेके अनन्तर यह

तय हुआ कि जो विधवा विवाहमें भाग ले उसके साथ सम्पर्क न रक्खा जावे।

•

३०

अबला नहीं सबला

सागरसे, गौरझामरमें पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा थी वहाँ गया। रात्रिके समय एक युवती श्री मन्दिरजीके दर्शनके लिये जा रही थी। मार्गमें एक सिपाहीने उसके उरस्थलमें मजाकसे एक कंकड़ मार दिया फिर क्या था अवला सबला हो गई—उस युवतीने उसके सिरका साफा उतार दिया और लपककर तीन चार थप्पड़ उसके गालमें इतने जोरसे मारे कि गाल लाल हो गया। लोगोंने पूछा कि बाईजी! क्या बात है? वह बोली—इस दुष्टने जो पुलिसकी वर्दी पहने और रक्षाका भार अपने सिर लिये है मेरे उरस्थलमें कंकड़ मार दिया। इस पामरको लज्जा नहीं आती जो हम अवलाओंके ऊपर ऐसा अनाचार करता है। इतना कहकर वह उस सिपाहीसे पुनः बोली—'रे नराधम! प्रतिज्ञा कर कि मैं अब कभी भी किसी स्त्रीके साथ ऐसा व्यवहार न करूँगा अन्यथा मैं स्वयं तेरे दरोगाके पास चलती हूँ और वह न सुनेंगे तो सागर कप्तान साहबके पास जाऊँगी।'

वह विवेक शून्य-सा हो गया बड़ी देरमें साहसकर बोला—'बेटी! मुझसे महान् अपराध हुआ क्षमा करो, अब भविष्यमें ऐसी हरकत न होगी। खेद है कि मुझे आज तक ऐसी शिक्षा नहीं मिली। युवतीने उसे क्षमा कर दिया और कहा—'पिता जी! मेरी थप्पड़ोंका खेद न करना, मेरी थप्पड़ें तुम्हें शिक्षकका

काम कर गई। अब मैं मन्दिर जाती हूँ आप भी अपनी ड्यूटी अदा करें।' वह मण्डपमें पहुँची और उपस्थित जनताके समक्ष खड़ी होकर कहने लगी—'माताओ और बहिनो! आज दोपहर को मैंने शीलवती स्त्रियोंके चरित्र सुने उससे मेरी आत्मामें वह बात पैदा हो गई कि मैं भी तो स्त्री हूँ। यदि अपनी शक्ति उपयोगमें लाऊँ तो जो काम प्राचीन माताओंने किये उन्हें मैं भी कर सकती हूँ। यही भाव मेरे रग-रगमें समा गया उसीका नमूना है कि एकने मेरेसे मजाक किया, मैंने उसे जो थप्पड़ें दीं वही जानता होगा और उससे यह प्रतिज्ञा करवा कर आई हूँ कि 'बेटी! अब ऐसा असद्व्यवहार न करूँगा।'

प्रकृत बात यह है कि हमारी समाज इस विषयमें बहुत पीछे है। हमारी समाजमें माता-पिता यदि धनी हुए तो कन्याको गहनोंसे लादकर खिलौना बना देते हैं। विवाहमें हजारों खर्च कर देवेंगे। परन्तु योग्य लड़की बने इसमें एक पैसा भी खर्च नहीं करेंगे। सबसे जघन्य कार्य तो यह है कि हमारे नवयुवक और युवतियोंने विषय सेवनको दाल रोटी समझ रक्खा है। इनके विषय सेवनका कोई नियम नहीं है, ये न धर्म पर्वोंको मानते हैं और न धर्मशास्त्रोंके नियमोंको। कहते हुए लज्जा आती है कि एक बालक तो दूध पी रहा है, एक स्त्री के उदरमें है और एक बगलमें बैठा चें-चें कर रहा है। फल इसका देखो कि सैकड़ों नर नारी तपेदिकके शिकार हो रहे हैं, अतः यदि जातिका अस्तित्व सुरक्षित रखना चाहती हो तो मेरी बहिनो! इस बातको प्रतिज्ञा करो कि हमारे पेटमें बच्चा आनेके समयसे लेकर जब तक वह तीन वर्षका न होगा तब तक ब्रह्मचर्य व्रत पालेंगी और यही नियम पुरुष वर्गको लेना चाहिये। यदि इसको हास्यमें उड़ा दोगे तो याद रक्खो तुम हास्यके पात्र ही रहोगे। साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टान्हिका पर्व,

सोलहकारण पर्व तथा दशलक्षण पर्वमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करेंगी, विशेष कुछ नहीं कहना चाहती।' उसका व्याख्यान सुन कर सब समाज चकित रह गई। बाबा भागीरथजीने दीपचन्द्रजी वर्णी से कहा कि यह अबला नहीं सबला है।

●

३१

शाहपुरमें विद्यालय

शाहपुरमें पञ्चकल्याणक थे प्रतिष्ठाचार्य श्रीमान् पं० मोतीलालजी वर्णी थे। देवाधिदेव श्री जिनेन्द्रदेवका पाण्डुक शिला पर अभिषेकके बाद यथोचित शृङ्गारादि किया जा चुका तब मैंने जनतासे अपील की। परन्तु चन्दा लिखानेका श्री गणेश नहीं हुआ। सब लोग यथास्थान चले गये। मुझे अन्तरङ्ग में महती व्यथा हुई कि लोग बाह्य कार्योंमें तो कितनी उदारताके साथ व्यय करते हैं परन्तु सम्यग्ज्ञानके प्रचारमें पैसा का नाम आते ही इधर उधर देखने लगते हैं। अन्तमें जब पञ्च कल्याणक करनेवालेको तिलक दानका अवसर आया तब मैंने कहा कि इन्हें सिंघई पद दिया जावे। चूंकि सिंघई पद गजरथ चलाने वालेको ही दिया जाता था अतः उपस्थित जनताने उसका घोर विरोध किया और कहा कि यदि यह मर्यादा तोड़ दी जावेगी तो सैकड़ों सिंघई हो जावेंगे। मैंने कहा कि आप लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि परवारसभा ने पाँच हजार रुपया देने पर सिंघई पदवीका प्रस्ताव पास किया है। इन्होंने बारह हजार रुपया तो प्रतिष्ठामें व्यय किया है और तीन हजार रुपया विद्यादानमें दे रहे हैं तथा इनके तीन हजार रुपया देनेसे ग्रामवाले

भी दो हजार रुपयेकी सहायता अवश्य कर देवेंगे अतः इन्हें सिंघई पदसे भूषित किया जावे। विवेकसे काम लेना चाहिये इतने बड़े ग्राममें पाठशालाका न होना लज्जाकी बात है। उसी समय हल्कूलालजीको पञ्चोंने सिंघई पदको पगड़ी बाँधी। इस प्रकार शाहपुरमें एक विद्यालयकी स्थापना हो गई। वहाँसे सागर आ गये और यथावत् धर्म-साधन करने लगे।

•

३१

धर्ममाता श्री चिरौंजाबाईजीकी गोदमें

बाईजी की व्यवस्थाप्रियता

बाईजी को अव्यवस्था जरा भी पसन्द न थी। वे अपना प्रत्येक कार्य व्यवस्थित रखती थीं। प्रत्येक वस्तु यथास्थान रखती थीं। आपकी सदा यह आज्ञा रहती थी कि लिखा हुआ कोई भी पत्र कूड़ामें न डाला जावे तथा जहाँ तक हो पुस्तकों की विनय की जावे। चाहे छपी पुस्तक हो चाहे लिखी विनय पूर्वक ऊपर ही रखना चाहिये।

शान्तिप्रियता

बाईजी की प्रकृति अत्यन्त सौम्य थी, उन्हें क्रोधकी मात्राका लेश भी न था, कैसा ही उद्दण्ड मनुष्य क्यों न आवे उनके समक्ष नम्र ही हो जाता था। बाईजी जितनी शान्त थीं उतनी ही उदार थीं। मैं जहाँ तक जानता हूँ उनकी प्रकृति अत्यन्त उच्च थी।

उदारता

बाईजीमें सबसे बड़ा गुण उदारता का था, जो चीज हमको भोजनमें देती थीं वही नाई, धोबी, मेहतरानी आदि को देती थीं। उनसे यदि कोई कहता तो साफ उत्तर देती थीं कि महीनों बाद त्योहारके दिन ही तो इन्हें देती हूँ खराब भोजन क्यों दूँ ? आखिर ये भी तो मनुष्य हैं।

नियमानुकूलता

उनके प्रत्येक कार्य नियमानुकूल होते थे। एकबार भोजन करती थीं, एक बार पानी पीती थीं। आयसे व्यय कम करती थीं। आवश्यक वस्तुओंका यथायोग्य संग्रह रखती थीं। उन्हें औषधियों का अच्छा ज्ञान था।

स्पष्टवादिता

एक बार श्रीमान् सिंघई कुन्दनलालजीके सरस्वती भवनकी प्रतिष्ठा थी। प्रतिष्ठाचार्यने द्वारपर केलेके स्तम्भ लगवाये, आम के पत्तोंके बन्दनमाल बँधवाये और गमलोंमें यवके अँकुर निकलवाये। सिंघईजी बोले—'बाईजी ! बड़ी हिंसा होती है धर्मके कार्यमें तो ऐसा नहीं होना चाहिये।'

बाईजीने हँसकर उत्तर दिया—

'भैया ! जब असौजमें गल्ला वेचते हो और उसमें ढुकनियों तिरूले आदि जीव निकलते हैं तब उनका क्या करते हो ? आरम्भके कार्यों में त्रस जीवोंकी रक्षा न हो और माङ्गलिक कार्यमें एकेन्द्रिय जीवकी रक्षाकी बात करो। जब तुम्हारे आरम्भ त्याग हो जावेगा तब तुम्हें मन्दिर बनानेका कोई उपदेश न करेगा। यह तुम्हारा दोष नहीं स्वाध्याय न करनेका ही फल है।' कहनेका तात्पर्य कि वे समयपर उचित उत्तर देनेसे न चूकती थीं।

पर-दुःख संवेदनशीलता

एक बार सागरमें प्लेग पड़ गया, हम लोग वण्डा चले गये। एक दिन की बात है-एक लकड़ी बेचनेवाली आई उसकी लकड़ी चार आनेमें ठहराई। मेरे पास अठन्नी थी मैंने उसे देते हुए कहा कि चार आना वापिस दे दे। उसने कहा—'मेरे पास पैसा नहीं है।' मैंने सोचा—'कौन बाजार लेने जावे अच्छा आठ आना ही ले जा।' वह जाने लगी, उसके शरीर पर जो धोती थी वह बहुत फटी थी। मैंने उससे कहा—'ठहर जा' वह ठहर गई, मैं ऊपर गया वहाँ बाईजी की रोटी बनानेकी धोती सूख रही थी मैं उसे लाया और वहीं पर चार सेर गेहूँ रक्खे थे उन्हें भी लेता आया। नीचे आकर वह धोती और गेहूँ-दोनों ही मैंने उस लकड़ीवालीको दे दिये।

बाईजी मन्दिरसे आ गईं हमसे पूछने लगीं—भैया! धोती कहाँ गई? मुझे कुछ हँस आया। श्री दीपचन्द्रजी वर्णीने कह दिया कि वर्णीजीने धोती और चार सेर गेहूँ लकड़ी बेचनेवाली को दे दिये! बाईजी अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

मूक प्राणी पर भी दयालुता

सागरकी ही घटना है—हम जिस धर्मशालामें रहते थे उसमें एक बिल्लीका बच्चा था उसकी माँ मर गई। जब बाईजी भोजन करती थीं तब आ जाता था और जब तक बाईजी उसे दूध रोटी न दे देतीं तब तक नहीं भागता था। बाईजीसे उसका अत्यन्त परिचय हो गया। जब बाईजी बरुआसागर या कहीं अन्यत्र जाती थीं तब वह भोजन छोड़ देता था और जब तांगा पर बैठकर स्टेशन जाती थीं तब वहीं खड़ा रहता था। तांगा जानेके बाद ही वह धर्मशाला छोड़ देता था और जब बाईजी

आ जाती थीं तब पुनः आ जाता था। अन्तमें जब वह बीमार हुआ तब दो दिन तक उसने कुछ भी नहीं लिया और बाईजीके द्वारा नमस्कार मन्त्रका श्रवण करते हुए उसने प्राणविसर्जन किया।

धैर्य और धर्मदृढ़ता

हम, बाईजी और वर्णी मोतीलालजी तीनों श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिरिकी वन्दनाके लिये गये। तीसरे दिन सिमरासे आदमी आया और उसने समाचार दिया कि बाईजी आपके घरमें चोरी हो गई। सुनकर बाईजीके चेहरेपर शोकका एक भी चिह्न दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। उन्होंने कहा—जो होना था सो हो गया अब तो पाँच दिन बाद ही घर जावेंगे। चोरी तो हो ही गई अब तीर्थयात्रासे क्यों वञ्चित रहें? धर्मसे संसारका बन्धन छूट जाता है फिर यह धन तो पर पदार्थ है इसकी मूर्च्छासे ही तो हमारी यह गति हो रही है। यदि आज परिग्रह न होता तो चोर क्या चुरा ले जाते? इनका कोई दोष नहीं, परिग्रहका स्वरूप ही यह है, इसके वशीभूत होकर अच्छे-अच्छे महानुभाव चक्कर में आ जाते हैं। संसारमें सबसे प्रबल पाप परिग्रह है। बाईजी पाँच दिन सानन्द तीर्थयात्रा करके ही घर गई। पता लगा चोर आये थे; सोना छोड़ गये और पैसे वहीं बिखेर गये। सुकृतका पैसा जल्द नष्ट नहीं होता।

निष्पृहता और निर्ममता

एक बार मैं बनारस विद्यालयके लिये बाईजीके नाम एक हजार रुपया लिखा आया पर भयके कारण बाईजीसे कहा नहीं। बाईजी मुझे आठ दिनमें तीन रुपया फल खानेके लिये देती थीं, मैं फल न खा कर उन रुपयोंको पोष्ट आफिसमें जमा

कराने लगा। एक दिन बाईजीने पूछा—'भैया फल नहीं लाते ?' मैंने कह दिया—'आज कल बाजार में अच्छे फल नहीं आते।' इतनेमें ही वहाँ पड़ी हुई पोस्ट आफिस की पुस्तक पर उनकी दृष्टि जा पड़ी। इन्होंने पूछा—'यह कैसी पुस्तक है ?'

वहाँ पोस्टमैन खड़ा था, उसने कहा—'यह डाकखानेमें रुपया जमा कराने की पुस्तक है।' बाईजीने कहा—'कितने रुपये जमा हैं ?' वह बोला—'पच्चीस रुपये।' बाईजी बोली—'हम तो फलके लिये देते थे और तुम डाकखानेमें जमा कराते हो इसका अर्थ हमारी समझमें नहीं आता।' मैंने कहा—'मैंने बनारस के लिये आपके नामसे एक हजार रुपये दिये हैं उन्हें अदा करना है।' बाईजीने कहा—'इस प्रकार कब तक अदा होंगे ?' मैं चुप रह गया।

वह कहती रहीं—कि जिसदिन दिये उसी दिन देना उचित था। दानकी रकम हैं वह तो ऋण है अभी जाओ और एक हजार रुपया आज ही भेज दो। दानकी रकमको पहले दो पीछे नाम लिखाओ। दान देना उत्तम है परन्तु देते समय परिणाममें उत्साह रहे। वह उत्साह ही कल्याणका बीज है, दानमें लोभका त्याग होना चाहिये। 'स्वपरानुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्,—अपना और परका अनुग्रह करनेके लिये जो धनका त्याग किया जाता है वही दान कहलाता है। यह हमारा अभिप्राय है सो तुमसे कह दिया। अब आगेके लिये हमारे पास जो कुछ है वह सब तुम्हें देती हूँ तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो, भयसे मत करो, आजसे हमने इस द्रव्यसे ममता त्याग दी। बाईजीके इस सर्वस्व समर्पण से मेरा हृदय गद्-गद् हो गया।

शिखरजीमें व्रत ग्रहण

प्रातःकालका समय था माघ मासमें कटरा बाजारके मन्दिर में आनन्दसे पूजन हो रहा था सब लोग प्रसन्न चित्त थे। मैंने

कहा—'बाईजी ! कल कटरा से पच्चीस मनुष्य श्री गिरिराज जी जा रहे हैं। मेरा भी मन श्री गिरिराजजी की यात्राके लिए व्यग्र हो रहा है।' बाईजी ने कहा—'व्यग्रताकी आवश्यकता नहीं, हम भी चलेंगे, मुलाबाई भी चलेगी।'

दूसरे दिन हम सब यात्राके लिये चल दिये। सागरसे कटनी पहुँचे और वहाँसे प्रातःकाल गया पहुँच गये। दो बजे की गाड़ीमें बैठकर शामको श्रीपार्श्वनाथ स्टेशन पर पहुँच गये और गिरिराजके दूरसे ही दर्शन कर धर्मशालामें ठहर गये। प्रातःकाल श्री पार्श्वप्रभुकी पूजाकर मध्याह्न बाद मोटरमें बैठकर श्री तेरापन्थी कोठीमें जा पहुँचे। दो बजे निद्रा भङ्ग हुई पश्चात् स्नानादि क्रियासे निवृत्त होकर एक डोली मँगाई। बाईजीको उसमें बैठाकर हम सब पार्श्वनाथ स्वामीकी जय बोलते हुए गिरिराजकी वन्दनाके लिए चल पड़े।

गन्धर्व नालापर पहुँचकर सहर्ष सामायिक की। वहाँसे चलकर सात ब[illegible] श्रीकुन्थुनाथ स्वामीकी वन्दना की। वहाँसे सब टोंकोंकी यात्रा करते हुए दस बजे श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी टोंक पर पहुँच गये। आनन्दसे श्रीपार्श्वनाथ स्वामी और गिरिराजकी पूजा की, चित्त प्रसन्नतासे भर गया। बाईजी तो आनन्दमें इतनी निमग्न हुईं कि पुलकित वदन हो उठीं और गद्‌गद् स्वरमें हमसे कहने लगीं कि—'भैया ! अब हमारी पर्याय तीन माहकी है अतः तुम हमें दूसरी प्रतिमाके व्रत दो।'

मैंने कहा—'बाईजी ! मैं तो आपका बालक हूँ, आपने चालीस वर्ष मुझे बालकवत् पाला, मेरे साथ आपने जो उपकार किया है उसे आजन्म नहीं विस्मरण कर सकता, आपकी सहायतासे मुझे दो अक्षरोंका बोध हुआ, आपकी शांतिसे मेरी क्रूरता चली गई और मेरी गणना मनुष्योंमें होने लगी। इत्यादि भूरिशः आपके उपकार मेरे ऊपर हैं। आप जिस निरपेक्ष वृत्तिसे व्रतको

पालती हैं मैं उसे कहनेमें असमर्थ हूँ। और जब कि मैं आपको गुरु मानता हूँ तब आपको व्रत दूँ यह कैसे सम्भव हो सकता है ? बाईजीने कहा—'बेटा ! मैंने जो तुम्हारा पोषण किया है वह केवल मेरे मोहका कार्य है फिर भी मेरा यह भाव था कि तुझे साक्षर देखूँ। तूने पढ़नेमें परिश्रम नहीं किया बहुतसे कार्य प्रारम्भ कर दिये परन्तु उपयोग स्थिर न किया। यदि एक काम का आरम्भ करता तो बहुत ही यश पाता। अब हम तो तीन मासमें चले जावेंगे, तुम आनन्दसे व्रत पालना। सबसे प्रेम रखना, जो तुम्हारा दुश्मन भी हो उसे मित्र समझना, निरन्तर स्वाध्याय करना, शास्त्रोंकी विनय करना, यह पञ्चम काल है कुछ द्रव्य भी निजका रखना, योग पात्रको दान देना, जो शक्ति अपनी हो उसीके अनुसार त्याग करना, श्रोताओंकी योग्यता देखकर शास्त्र बांचना, विशेष क्या कहें ? जिसमें आत्माका कल्याण हो वही कार्य करना, भोजनके समय जो थालीमें आवे उसे संतोष पूर्वक खाओ कोई विकल्प न करो। व्रतकी रक्षा करनेके लिये रसना इन्द्रिय पर विजय रखना, विशेष कुछ नहीं।'

इतना कह कर बाईजीने श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंक पर द्वितीय प्रतिमाके व्रत लिये और यह भी व्रत लिया कि जिस समय मेरी समाधि होगी उस समय एक वस्त्र रख कर सबका त्याग कर दूंगी—क्षुल्लिका वेष में ही प्राण विसर्जन करूँगी। यदि तीन मास जीवित रही तो सर्व परिग्रहका त्याग कर नवमी प्रतिमा का आचरण करूंगी। अब केवल सूखी वनस्पतिको छोड़कर अन्य औषध सेवन का त्याग करती हूँ। मेरी १८ वर्ष में वैधव्य अवस्था हो चुकी थी तभीसे मेरे एक वार भोजनका नियम था। अब आपके समक्ष विधि पूर्वक उसका नियम लेती हूँ। मेरी यह अन्तिम यात्रा है। हे प्रभो ! मेरे ऊपर अनन्त संसारका जो भार था वह आज तेरे प्रसादसे उतर गया।

बाईजीकी आत्मकथा

हे प्रभो! मैं एक ऐसे कुटुम्बमें उत्पन्न हुई जो अत्यन्त धार्मिक था। मेरे पिता मौजीलाल एक व्यापारी थे शिकोहाबादमें उनकी दुकान थी, वह जो कुछ उपार्जन करते उनका तीन भाग बुन्देलखण्ड से जानेवाले गरीब जैनोंके लिए दे देते थे। उनकी आय चार हजार रुपया वार्षिक थी। एक हजार रुपया गृहस्थीके कार्य में खर्च होता था। मेरे पिता का मेरे ऊपर बहुत स्नेह था। मेरी शादी सिमरा ग्रामके श्रीयुक्त सिं० भैयालालजीके साथ हुई थी। जब मेरी अवस्था अठारह वर्षकी थी तब मेरे पति आदि गिरिनारकी यात्रा को गये, पावागढ़में मेरे पतिका स्वर्गवास हो गया। मैं उनके वियोगमें बहुत खिन्न हुई सब कुछ भूल गई। एक दिन तो यहाँ तक विचार आया कि संसारमें जीवन व्यर्थ है अब मर जाना ही दुःखसे छूटनेका उपाय है। ऐसा विचार कर एक कुएँ के ऊपर गई और विचार किया कि इसीमें गिरकर मर जाना श्रेष्ठ है, परन्तु उसी क्षण मनमें विचार आया कि यदि मरण न हुआ तो अपयश होगा और यदि कोई अङ्ग भङ्ग हो गया तो आजन्म उसका क्लेश भोगना पड़ेगा अतः कुएँ से पराङ्मुख होकर डेरापर आ गई और धर्मशालामें जो मन्दिर था उसीमें जाकर श्री भगवान्‌से प्रार्थना करने लगी कि—'हे प्रभो! आज मर जाती तो न जाने किस गति में जाती ? आज मैं सकुशल लौट आई यह आपकी ही अनुकम्पा है। जो मैंने पाप किया उसका आपके समक्ष प्रायश्चित्त लेती हूँ वह यह कि आजन्म एक बार भोजन करूंगी, भोजनके बाद दो बार पानी पीऊँगी, अमर्यादित वस्तु का भक्षण न करूंगी, आपकी पूजाके बिना भोजन न करूंगी, प्रतिदिन शास्त्रका स्वाध्याय करूंगी, मेरे पति को जो सम्पत्ति है उसे धर्म कार्यमें व्यय करूंगी, अष्टमी चतुर्दशीका

उपवास करूंगी, यदि शक्ति क्षीण हो जावेगी तो एक बार नीरस भोजन करूंगी। इस प्रकार आलोचना कर डेरा में आ गई और सासको जो कि पुत्रके विरहमें बहुत ही खिन्न थीं सम्बोधा—

माताराम ! जो होना था वह हुआ, अब खेद करने से क्या लाभ ? आपकी सेवा मैं करूंगी, आप सानन्द धर्मसाधन कीजिये। पर जन्ममें जो कुछ पाप कर्म मैंने किये थे यह उन्हीं का फल है। परमार्थ से मेरे पुण्य कर्म का उदय है। यदि उनका समागम रहता तो निरन्तर आयु विषय भोगोंमें जाती। आत्म-कल्याण से वञ्चित रहती। मैंने नियम लिया है कि जो सम्पत्ति मेरे पास है उससे अधिक नहीं रखूँगी तथा यह भी नियम किया कि मेरे पति की जो पचास हजार रुपया की साहू-कारी है उसमें सौ रुपया तक जिन किसानोंके ऊपर है वह सब मैं छोड़ती हूँ तथा सौ रुपयासे आगे जिनके ऊपर है उनका व्याज छोड़ती हूँ। आजसे एक नियम यह भी लेती हूँ कि जो कुछ रुपया किसानोंसे आवेगा उसे संग्रह न करूँगी धर्मकार्य और भोजनमें व्यय कर दूँगी।

इसके पश्चात् श्री गणेशप्रसाद मास्टर जतारासे आया, उस समय उसकी उमर बीस वर्षकी होगी। उसको देखकर मेरा उसमें पुत्रवत् स्नेह हो गया, मेरे स्तनसे दुग्ध धारा बह निकली। मुझे आश्चर्य हुआ, ऐसा लगने लगा मानो जन्मान्तरका यह मेरा पुत्र ही है। उस दिनसे मैं उसे पुत्रवत् पालने लगी। वह अत्यन्त सरल प्रकृतिका था। मैंने उसी दिन दृढ़ संकल्प कर लिया कि जो कुछ मेरे पास है वह सब इसीका है और अपने उन संकल्प के अनुसार मैंने उसका पालन किया।

कुछ दिनके बाद सागर आई और श्री बालचन्द्रजी सवाल-नवीसके मकानमें रहने लगी। आनन्दसे दिन बीते। इस प्रकार मेरा तीस वर्षका काल सागरमें आनन्दसे बीता।

श्री बाईजीका समाधिमरण

बाईजीका स्वास्थ्य प्रतिदिन शिथिल होने लगा। बाईजीने कहा 'भैया ! मैं शिखरजीसें प्रतिज्ञा कर आई हूँ दवाईमें अलसी अजवाइन और हर्रे छोड़कर अन्य कुछ न खाऊँगी।' उसी समय उन्होंने शरीर पर जो आभूषण थे उतार दिये। बाल कटवा दिये, एक वार भोजन और एक वार पानी पीनेका नियम कर लिया। प्रातःकाल मन्दिर जाना, वहाँसे आकर शास्त्र स्वाध्याय करना, पश्चात् दस बजे एक छटाक दलियाका भोजन करना, शामको चार बजे पानी पीना और दिन भर स्वाध्याय करना यही उनका कार्य था। यदि कोई अन्य कथा करता तो वे उसे स्पष्ट आदेश देतीं कि बाहर चले जाओ।

पन्द्रह दिनके बाद जब मन्दिर जानेकी शक्ति न रही तब हमने एक ठेला बनवा लिया उसीमें उनको मन्दिर ले जाते थे। पन्द्रह दिन बाद वह भी छूट गया, कहने लगीं कि हमें जानेमें कष्ट होता है अतः यहींसे पूजा कर लिया करेंगे। हम प्रातःकाल मन्दिरसे अष्ट द्रव्य लाते थे और बाईजी एक चौकीपर बैठे बैठे पूजन पाठ करती थीं। मैं ९ बजे दलिया बनाता था और बाई जी दस बजे भोजन करती थीं। एक मास बाद आध छटाक भोजन रह गया फिर भी उनकी श्रवण शक्ति ज्योंकी त्यों थी। बाईजीको कोई व्यग्रता न थी, उन्होंने कभी भी रोग वश 'हाय-हाय,' या 'हे प्रभो क्या करें' 'जल्दी मरण आ जाओ' या 'कोई ऐसी औषधि मिल जावे जिससे मैं शीघ्र ही नीरोग हो जाऊँ' ऐसे शब्द उच्चारण नहीं किये।

जब आयुमें दस दिन रह गये तब बाईजीने मुझसे कहा— बेटा, संसारमें जहाँ संयोग है वहाँ वियोग है। हमने तुम्हें चालीस वर्ष पुत्रवत् पाला है यह तुम अच्छी तरह जानते हो,

इतने दीर्घकालमें हमसे यदि किसी प्रकारका अपराध हुआ हो तो उसे क्षमा करना और बेटा ! मैं क्षमा करती हूँ, अथवा क्या क्षमा करूँ मैंने हृदयसे कभी तुम्हें कष्ट नहीं पहुँचाया अब मेरी अन्तिम यात्रा है कोई शल्य न रहे इससे आज तुम्हें कष्ट दिया। यद्यपि मैं जानती हूँ कि तेरा हृदय इतना बलिष्ठ नहीं कि इसका उत्तर कुछ देगा।' मैं सचमुच ही कुछ उत्तर न दे सका, रुदन करने लगा हिलहिली आने लगी।

इसके बाद बाईजीने केवल आधी छटाक दलियाका आहार रक्खा और जो दूसरी बार पानी पीती थीं वह भी छोड़ दिया। सोलह कारण भावना, दशधा धर्म, द्वादशानुप्रेक्षा और समाधि-मरणका पाठ सुनने लगीं। जब आयुके दो दिन रह गये तब दलिया भी छोड़ दिया केवल पानी रक्खा और जिस दिन आयु का अवसान होने वाला था उसदिन जल भी छोड़ दिया। उस दिन उनका बोलना बन्द हो गया। मैं बाईजी की स्मृति देखनेके लिये मन्दिरसे पूजनका द्रव्य लाया और अर्घ बनाकर बाईजी को देने लगा। उन्होंने द्रव्य नहीं लिया और हाथका इशारा कर जल मांगा। उससे हस्त प्रक्षालन कर गन्धोदककी वन्दना की। मैं फिर अर्घ देने लगा तो फिर उन्होंने हाथ प्रक्षालनके लिये जल मांगा पश्चात् हस्त प्रक्षालन कर अर्घ बढ़ाया, फिर हाथ धोकर बैठ गईं और स्लेट मांगी। मैंने स्लेट दे दी। उस पर उन्होंने लिखा कि तुम लोग आनन्द से भोजन करो। बाईजी तीन माससे लेट नहीं सकती थीं। उस दिन पैर पसार कर सो गई मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने समझा कि आज बाईजीको आराम होगया अब इनका स्वास्थ्य प्रतिदिन अच्छा होने लगेगा।

एक बागमें जाकर नाना विकल्प करने लगा—'हे प्रभो ! हमने जहां तक बनी बाईजीकी सेवा की परन्तु उन्हें आराम नहीं मिला, आज उनका स्वास्थ्य कुछ अच्छा मालूम होता है। यदि

उनकी आयु पूर्ण हो गई तो मुझे कुछ नहीं सूझता कि क्या करूँगा ?' साढ़े नौ बजे बाईजीके पास पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि कोई तो समाधिमरणका पाठ पढ़ रहा है और कोई 'राजा राणा छत्रपति' पढ़ रहा है। मैं एकदम भीतर गया और बाईजी का हाथ पकड़ कर पूछने लगा—'बाईजी ! सिद्ध परमेष्ठीका स्मरण करो।' बाईजी बोलीं—भैया ! कर रहे हैं, तुम बाहर जाओ। मैं जब बाहर आया तब बाईजीने मोतीलालजीसे कहा कि अब हमको बैठा दो, उन्होंने बाईजीको बैठा दिया, 'बाईजीने दोनों हाथ जोड़े 'ओं सिद्धाय नमः' कह कर प्राण त्याग दिये। वर्णीजीने मुझे बुलाया शीघ्र आओ, मैं अन्दर गया, सचमुच ही बाईजीका जीव निकल गया था सिर्फ शव बैठा था। देखकर संसार की अनित्यता का स्मरण हो आया—

'राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार,
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार।
दलबल देवी देवता मात पिता परिवार,
मरतो विरियां जीवको कोई न राखन हार।।

वर्णीजीके आदेशानुसार शीघ्र ही बाईजीकी अर्थी बनानेमें व्यस्त हो गया। बाईजीके स्वर्गवासका समाचार बिजलीकी तरह एक दम बाजारमें फैल गया और श्मशान भूमिमें पहुँचते-पहुँचते बहुत बड़ी भीड़ हो गई। चिता धू धू कर जलने लगी और आध घण्टेमें शव जल कर खाक हो गया। मेरे चित्तमें बहुत ही शोक हुआ, हृदय रोनेको चाहता था पर लोक लज्जा के कारण रो नहीं सकता था। जब वहांसे सब लोग चलनेको हुए तब मैंने सब भाइयोंसे कहा—आज मेरी दशा माता विहीन पुत्रवत् हो गई है। आज मैं जो कुछ उन्होंने मुझे दिया सबका त्याग करता हूँ और मेरा स्नेह बनारस विद्यालयसे है अतः कल

ही बनारस भेज दूंगा। अब मैं उस द्रव्यमेंसे पाव आना भी अपने खर्चमें न लगाऊँगा। रह-रह कर बाईजीका स्मरण आने लगा। जब किसीका इष्ट वियोग होता था तो मैं समझाने लगता था, पर बाईजी का वियोग होने पर मैं स्वयं शोक करने लगा अतः दिनके समय किसी बागमें चला जाता था और रात्रि को पुस्तकावलोकन करता था। मेरा जो पुस्तकालय था वह मैंने स्याद्वाद विद्यालय बनारसको दे दिया।

●

३२

शान्ति की खोज में

एक दिन विचार किया कि यदि यहाँसे द्रोणगिरि चला जाऊँ तो वहाँ शान्ति मिलेगी। विचार कर मोटर स्टेण्डपर आया. एक घण्टा बाद मोटर छूट गई, मोटर बण्डा पहुँची। वहाँ ड्राईवरने कहा—'वर्णीजी! आप इस सीटको छोड़कर बीचमें बैठ जाईये।' मैं बोला—'क्यों?'

'यहाँ दरोगा साहब आते हैं, वे शाहगढ़ जा रहे हैं।'

मैं चुपचाप गाड़ीसे उतर गया और उसी दिनसे यह प्रतिज्ञा की कि अब आजन्म मोटरपर न बैठूँगा। वहाँसे उतरकर धर्मशालामें ठहर गया, रात्रिको शास्त्र प्रवचन किया। 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं' यह लोकोक्ति बार-बार याद आती रही। दो दिन यहाँ रहा पश्चात् सागर चला आया और जिस मकानमें रहता था उसीमें रहने लगा। बहुत कुछ उपाय किये पर चित्त शान्त नहीं हुआ। अतः शाहपुर चला गया। यहींपर सेठ कमलापतिजी और वर्णी मोतीलालजी भी आगये।

वर्णी मोतीलालजी तथा सेठ कमलापतिजीने भी कहा कि यदि केवल वर्णीजी स्थिर हो जावें तो हम अनायास स्थिर हो जावेंगे और इनके साथ आजन्म जीवन निर्वाह करेंगे। इन्हींकी चञ्चल प्रकृति है। मैंने कहा—'यदि मैं रेलकी सवारी छोड़ दूं तो आप लोग भी छोड़ सकते हैं?' दोनों महाशय बोले—'इसमें क्या शङ्क है?' मैं भोलाभाला उन दोनों महाशयोंके जालमें फँस गया। उसी क्षण उनके समक्ष आजन्म रेलकी सवारी त्याग दी। आधे आश्विनमें पैदल सागर आगये। धर्मशालामें पहुँचते ही ऐसा लगने लगा मानों बाईजी धीमी आवाजसे कह रही हों—'भैया! भोजन कर लो।'

•

३२

गिरिराजकी पैदल यात्रा

एक दिन सिंघईजीके घर भोजनके लिये गये, भोजन करनेके बाद यह कल्पना मनमें आई कि पैदल कर्रापुर जाना चाहिये। बाईजी तो थीं ही नहीं, किससे पूछना था? अतः मध्याह्नकी सामायिकके बाद पैदल चल दिये और एकाकी चलते-चलते पाँच बजे कर्रापुर पहुँच गये। दो दिन रहकर बण्डा चला गया। यहाँपर समाजने आग्रह पूर्वक कहा 'आप गिरिराजको जाते हो तो जाओ बहुत ही प्रशस्त कार्य है परन्तु आपकी वृद्ध अवस्था है इस समय एकाकी इतनी लम्बी यात्रा पैदल करना हानिप्रद हो सकती है अतः उचित तो यही है कि आप इसी प्रान्तमें धर्म साधन करें फिर आपकी इच्छा....।'

मैं दो दिन बाद श्री नैनागिरिजीको चला गया। यहांपर

हम दो दिन रहे। सागरसे सिंघईजी भी आ गये जिससे बड़े आनन्दके साथ काल बीता। उन्होंने बहुत कुछ कहा परन्तु मैंने एक न सुनी। उनको सान्त्वना देते हुए कहा—'भैया! अब तो जाने दो, आखिर एक दिन तो हमारा और आपका वियोग होगा ही। जहाँ संयोग है वहाँ वियोग निश्चित है। मैंने एक बार श्रीगिरिराज जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है अतः अब आप प्रतिबन्ध न लगाइये…।' मेरा उत्तर सुनकर सिंघईजीके नेत्रोंमें आँसुओंका संचार होने लगा और मेरा भी गला रुद्ध हो गया अतः कुछ कह न सका। केवल मार्गके उन्मुख होकर प्रस्थान कर दिया।

पन्द्रह दिन बरुआसागर रहकर शुभ मुहूर्तमें श्री गिरिराजके लिये प्रस्थान कर दिया। प्रथम दिनकी यात्रा पाँच मीलकी थी, साथमें कमलापति और चार जैनी भाई थे। साथमें एक ठेला था, जिसमें सब सामान रहता था। उसे दो आदमी ले जाते थे। जब थक जाते थे तब अन्य दो आदमी ठेलने लगते थे। मैंने यह प्रतिज्ञा की—'हे प्रभो पार्श्वनाथ! मैं आपकी निर्वाणभूमिके लिये प्रस्थान कर रहा हूँ जब तक मुझमें एक मील भी चलनेकी सामर्थ्य रहेगी तबतक पैदल चलूँगा, डोलीमें नहीं बैठूँगा।' प्रतिज्ञाके बाद ही एकदम चलने लगा और मार्गके अनेकों ग्रामोंमें होता हुआ खजुराहो पहुँच गया। खजुराहोके जैन मन्दिर बहुत ही विशाल और उन्नत शिखरवाले हैं। एक मन्दिरमें श्री शान्तिनाथ स्वामीकी सातिशय प्रतिमा विराजमान है जिसके दर्शन करनेसे चित्तमें शान्ति आ जाती है। यहाँके मन्दिरोंमें पत्थरोंके ऊपर ऐसी शिल्प कला उत्कीर्ण की गई है कि वैसी कागज पर दिखाना भी दुर्लभ है। मन्दिरके चारों ओर कोट है, बीचमें बावड़ी और कूप है, धर्मशाला है परन्तु प्रबन्ध नहीं के तुल्य है। यहाँ पर वैष्णवोंके बड़े-बड़े विशाल मन्दिर हैं,

फाल्गुनमें एक मासका मेला रहता है, यहाँसे चलकर तीन दिन बाद पन्ना पहुँच गये। यहाँसे सतना होकर रींवा पहुँचे, यहाँ पर दो मन्दिर हैं। श्री शान्तिनाथ स्वामीकी प्रतिमा अति मनोज्ञ है, धर्मशाला भी अच्छी है। एक मन्दिरको दहलान श्री महारानी साहबाने बनवा दी है।

यहाँ तीन दिन रहकर बारह दिनमें मिर्जापुर पहुँच गये। मार्गकी शोभा अवर्णनीय है। गंगाके घाटपर ही विन्ध्यवासिनी देवीका मन्दिर है, बहुत दूर-दूरसे भारतवासी आते हैं। यहाँसे चलकर चार दिनमें वाराणसी-काशी पहुँच गये और पार्श्वनाथके मन्दिर भेलूपुरमें ठहर गये। भदैनी घाटपर स्याद्वाद विद्यालय-के ऊपर एक सुन्दर छत है जिसमें हजारों आदमी बैठ सकते हैं। बीचमें एक सुन्दर मन्दिर है जिसके दर्शन करनेसे महान् पुण्यका बन्ध होता है। बनारसमें तीन दिन रहा, इन्हीं दिनोंमें स्याद्वाद विद्यालय भी गया, वहाँ पठन पाठनका बहुत ही उत्तम प्रबन्ध है, यहाँके छात्र व्युत्पन्न ही निकलते हैं। विनयके भण्डार हैं। यहाँसे सिंहपुरी गये। सिंहपुरी (सारनाथ) में विशाल मन्दिर और एक वृहद् धर्मशाला है जिसमें दो सौ मनुष्य सुखपूर्वक निवास कर सकते हैं। धर्मशालाके अहातेमें एक बड़ा भारी बाग है, मन्दिरमें इतना विशाल चौक है कि जिसमें पाँच हजार मनुष्य एक साथ धर्म श्रवण कर सकते हैं।

जैन मन्दिरसे कुछ ही दूरीपर बुद्धदेवका बहुत ही सुन्दर मन्दिर बना है। यहाँ पर बौद्धधर्मानुयायी बहुतसे साधु रहते हैं। मन्दिरमें दरवाजेके ऊपर एक साधु रहता है जो बुद्धदेवकी जीवनी बताता है और उनके सिद्धान्त समझाता है। सिंहपुरीसे चलकर मोगलसरायके पास एक शिवालयमें रात्रिके समय ठहर गये। स्वाध्याय द्वारा समयका सदुपयोग किया। यहाँसे आठ दिन बाद डालमियानगर पहुँचे। वहाँसे औरङ्गाबाद होकर

चम्पारन पहुँचे, यहाँके निवासियोंमें परस्पर कुछ वैमनस्य था जो प्रयत्न करनेसे शान्त हो गया। यहाँसे चलकर दो दिनमें शेरघाटी और वहाँसे चलकर दो दिनमें गया पहुँच गये। यहाँ-से पाँच मील बौद्ध गयाका मन्दिर है जो बहुत प्राचीन है। यहाँ पर बुद्धदेवने तपश्चर्या कर शान्ति लाभ किया था। बहुत शान्ति-का स्थान है, मन्दिर भी उन्नत है। यहाँ बौद्ध लोग बहुत आते हैं, तिब्बत, चीन, जापान आदिके भी यात्री आते और बुद्धदेवके दर्शनकर दीपावली मानते हैं। वहाँसे चलकर आठ दिन बाद श्री गिरिराज पहुँच गया अपूर्व आनन्द हुआ। मार्गकी सब थकावट एकदम दूर हो गई। उसी दिन श्री गिरिराजकी यात्रा-के लिये चल दिये, पर्वतराजके स्पर्शसे परिणामोंमें शान्तिका उदय हुआ, श्री कुन्थुनाथ स्वामीकी टोंकपर पूजन की, अनन्तर वन्दना करते हुए दस बजे श्री पार्श्वनाथ स्वामीके मन्दिरमें पहुँचे। सब त्यागीमण्डलने व श्री पार्श्वप्रभुके चरण मूलमें सामायिक की, पश्चात् वहाँसे चलकर तीन बजे मधुवन आगये।

●

३४

संतपुरी-ईसरी में

शास्त्र प्रवचनके अनन्तर सबके मुख कमलसे यही ध्वनि निकली कि संसार बन्धनसे छूटनेके लिये यहाँ रहा जाय और धर्म साधनके लिये यहाँ एक आश्रम खोला जाय। उसीमें रह कर हम सब धर्म साधन करें। श्री बाबू सूरजमलजीने एक बड़ी भारी जमीन खरीद कर उसमें आश्रमकी नींव डाली और पच्चीस हजार रुपये लगाकर बड़ा भारी आश्रम बनवा दिया जिसमें

पच्चीस ब्रह्मचारी सानन्द धर्म साधन कर सकते हैं, आश्रम ही नहीं एक सरस्वतीभवन भी दरवाजेके ऊपर बनवा दिया।

कुछ दिनके बाद यहाँ पर श्री पतासीबाई गया और कृष्णाबाई कलकत्तासे आकर धर्म साधन करने लगीं। संसारमें गृहस्थ-भार छोड़ना बहुत कठिन है। जो गृहस्थभार छोड़कर फिर गृहस्थोंको अपनाते हैं उनके समान मूर्ख कौन होगा ? मैंने अपने कुटुम्बका सम्बन्ध छोड़ा, माँ बाप मेरे हैं नहीं, एक चचेरा भाई है उससे सम्बन्ध नहीं, घर छोड़नेके बाद श्री बाईजीसे मेरा सम्बन्ध हो गया और उन्होंने पुत्रवत् मेरा पालन किया। मैं जब कभी बाहर जाता था तब बाईजीकी माता तुल्य ही स्मृति आ जाती थी। उनके स्वर्गारोहणके अनन्तर मैं ईसरी चला गया। वहाँ सात वर्ष आनन्दसे रहा, इस बीचमें बहुत कुछ शान्ति मिली। मैं प्रायः सालमें तीन मास निमियाघाट रहता था। यहाँसे श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी यात्रा बड़ी सुगमतासे हो जाती है, बहुत ही मनोरम दृश्य है, बीचमें चार मीलके बाद एक सुन्दर पानीका झरना पड़ता है, यहां पर पानी पीनेसे सब थकावट चली जाती है। यहाँका जल अमृतोपम है। यदि यहाँ कोई धर्म साधन करे तो झरनाके ऊपर एक कुटी है परन्तु ऐसा निर्मम कौन है जो इस निर्वाण भूमिका लाभ ले सके। ईसरीमें निरन्तर त्यागीगणोंका समुदाय रहता है। भोजनादिका प्रबन्ध उत्तम है। आश्रमसे थोड़ी दूर पर ग्रेन्डट्रंक रोड है जहाँ भ्रमण करनेका अच्छा सुभीता है। यहाँ पर निरन्तर त्यागियों, क्षुल्लकों और कभी-कभी मुनियोंका भी शुभागमन होता रहता है।

यहाँ बड़े वेगसे मलेरिया आने लगा। श्रीमान् बाबा भागीरथजी थे जो हमारे चिरपरिचित थे। उनकी मेरे ऊपर पूर्ण अनुकम्पा थी, वे निरन्तर उपदेश देते थे कि भाई जो

अर्जन किया है उसे भोगना ही पड़ेगा। ज्वरके वेगकी प्रबलता से खाना पीना सब छूट गया। जब ज्वरका वेग आता था तब कुछ भी स्मरण नहीं रहता था। सागरसे सिंघईजी व उनकी गृहिणी आगईं। गयासे श्री कन्हैयालालजी आ पहुँचे साथमें कविराज भी आये। कविराज बहुत ही योग्य थे, उन्होंने अनेक उपचार किये परन्तु मैंने औषधिका त्याग कर दिया था। सभी दरवाजोंमें खसकी टट्टियाँ लगी थीं, दिनभर उनपर पानीका छिड़काव होता था रात्रिको बराबर दो आदमी पंखा करते थे पर शान्ति नहीं मिलती थी। जानेकी शक्ति न थी अतः डोली-कर हजारीबाग चला गया। ग्राम वालोंने अच्छी वैयावृत्ति की यहाँका पानी अमृतोपम था। डेढ़ मास रहा फिर ईसरी आगया।

श्री बाबा भागीरथजीका समाधिमरण

वर्षाके बाद बाबाजीका शरीर रुग्ण हो गया फिर भी आप अपने धर्म कार्यमें कभी शिथिल नहीं हुए। औषधि सेवन नहीं किया, न जाने क्यों बाबाजी हमसे वैयावृत्य न कराते थे। जिस दिन आपका देहावसान होने लगा उस दिन दस बजे तक शास्त्र-स्वाध्याय सुना अनन्तर हम लोगोंको आज्ञा दी कि भोजन करो। हमने भोजन करके सामायिक किया पश्चात् हम गये तो क्या देखते हैं कि बाबाजी भूमिपर एक लँगोटी लगाये पड़े हुये हैं, आपकी मुद्रा देखनेसे ऐलकका स्मरण होता था। हम लोग बाबाजीके कर्णोंमें णमोकार मन्त्र कहते रहे पाँच मिनट बाद आँखसे एक अश्रु बिन्दु निकला और आप सदाके लिये चले गये। मुद्रा बिलकुल शान्त थी, मेरा हृदय गद्गद् हो गया। शीघ्र ही बाबाजीको श्मसान ले गये और एक घण्टाके बाद आश्रममें आगये। उस दिन रात्रिमें बाबाजीकी ही कथा होती रही।

ऐसा निर्भीक त्यागी इस कालमें दुर्लभ है। जबसे आप

ब्रह्मचारी हुये पैसाका स्पर्श नहीं किया, आजन्म नमक और मीठा का त्याग था। दो लंगोट और दो चद्दर मात्र परिग्रह रखते थे। एक बार भोजन और पानी लेते थे, प्रतिदिन स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा और समयसार-कलशका पाठ करते थे। जो कुछ थोड़ा बहुत मेरे पास है उन्हींके समागमका फल है।

सागर वालोंका तीव्र आग्रह था कि सागर आओ इसलिए सागरके लिए प्रस्थान कर दिया। आठ दिन बाद गया पहुँच गया। तीन दिनके बाद एकदम पैरके अंगूठामें इतना दर्द हुआ कि चलनेमें असमर्थ हो गया अतः लाचार होकर मैं स्वयं रह गया। वर्षाकाल गयामें सानन्द बीता सब लोगोंकी रुचि धर्ममें अत्यन्त निर्मल हो गई। मेरा आत्मविश्वास है कि जो मनुष्य स्वयं पवित्र है उसके द्वारा जगतका हित हो सकता है।

●

३८

पावापुरकी पावन भूमिमें

गयासे मैंने कार्तिक वदी दोजको श्री वीरप्रभुकी निर्वाण भूमिके लिये प्रस्थान किया। दस मील तक जनता गई। यहाँसे श्री गुणावाजी गये, यहाँपर एक मन्दिर बहुत ही सुन्दर है। चारों तरफ ताड़के वृक्षका वन है बीचमें बहुत सुन्दर कूप है। प्रातःकाल जब पंक्ति बद्ध ताड़ वृक्षोंके पत्रोंसे छनकर बाल दिनकर की सुनहली किरणें मन्दिरकी सुधाधवलित शिखर पर पड़ती हैं, तब बड़ा सुहावना मालूम होता है। मन्दिरमें एक शुभ्रकाय विशाल मूर्ति है, मन्दिरसे थोड़ा दूरपर एक सरोवर है उसमें एक जैन मन्दिर है, मन्दिरमें श्री गौतम स्वामीका प्रतिबिम्ब है।

यहाँ थक गया, अतः यह भाव हुआ कि यहीं निर्वाण लाडू का उत्सव मनाना योग्य है. सायंकाल सड़कपर भ्रमण करनेके लिये गया इतनेमें दो भिखमंगे माँगनेके लिये आये, मैं अन्दर जाकर लाडू लाया और दोनोंको दे दिये। मैंने उनसे पूछा—कि 'कहाँ जाते हो ?' उन्होंने कहा—'श्री महावीर स्वामीके निर्वाणोत्सवके लिये पावापुर जाते हैं।' मैंने कहा—तुम्हारे पैर तो कुष्टसे गलित हैं कैसे पहुँचोगे ?' उन्होंने कहा—'श्रीवीर प्रभुकी कृपासे पहुँच जावेंगे उनकी महिमा अचिन्त्य है उन्हींके प्रतापसे हमारा ही क्या; प्रान्त भरके लोगोंका कल्याण होता है।'

भिखमङ्गोंके मुँहसे इतनी ज्ञानपूर्ण बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ मैंने कहा—'भाई ! तुम्हें इतना बोध कहाँसे आया ?' वे बोले—'आप जैन होकर इतना आश्चर्य क्यों करते हो ? समझो तो सही, जो आपकी आत्मा है वही तो मेरी है केवल हमारे और आपके शरीरमें अन्तर है।' मैंने फिर प्रश्न किया-'भाई ! आपकी यह अवस्था क्यों हो गई ?'

वह बोला—'मेरी यह अवस्था मेरे ही दुराचारका परिणाम है, मैं एक उत्तम कुलका बालक था, मेरा विवाह बड़े ठाट बाटसे हुआ था, स्त्री बहुत सुन्दर और सुशील थी परन्तु मेरी प्रकृति दुराचारमयी हो गई। फल यह हुआ कि मेरी धर्मपत्नी अपघात करके मर गई। कुछही दिनोंमें मेरे माता पिताका स्वर्गवास हो गया और जो सम्पत्ति पासमें थी वह वेश्या व्यसन में समाप्त हो गई। गर्मी आदिका रोग हुआ अन्तमें यह दशा हुई।' इतना कहकर उन दोनोंने श्री पावापुरका मार्ग लिया।

उन लोगोंके 'वीरप्रभुकी कृपासे पहुँच जावेंगे' वचन कानोंमें गूँजते रहे। जब कि अपाङ्गलोग भी वीरप्रभुके निर्वाणोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये उत्सुकताके साथ जा रहे हैं तब मैं तो

अपाङ्ग नहीं हूँ, रही थकावटकी बात सो वीरप्रभुकी कृपासे वह दूर हो जायगी। इत्यादि विचारोंसे मेरा उत्साह पुनः जागृत हो गया और मैंने निश्चय कर लिया कि पावापुर अवश्य पहुँचूँगा। रात्रि गुणावामें ही बिताई प्रातःकाल होते ही श्री वीरप्रभुका स्मरण कर चल दिया और नौ बजे श्री पावापुर पहुँच गया। यह वही भूमि है जहाँपर श्री वीरप्रभुका निर्वाणोत्सव इन्द्रादि देवोंके द्वारा किया गया था। यद्यपि श्री वीरप्रभु मोक्ष पधार चुके हैं—संसारसे सम्बन्ध विच्छेद हुए उन्हें अढ़ाई हजार वर्षके लग-भग हो चुका फिर भी इस भूमिपर आनेसे उनके अनन्त-गुणोंका स्मरण हो आता है, जिससे परिणामोंकी निर्मलताका प्रयत्न अनायास सम्पन्न हो जाता है।

निर्वाणोत्सवके दिन यहाँ बहुत भीड़ हो जाती है। जलमन्दिर में ठीक स्थान पानेके लिये लोग बहुत पहलेसे जा पहुँचते हैं और इस तरह सारी रात मन्दिरमें चहल-पहल बनी रहती है। हम लोगोंने भी श्री महावीर स्वामीका निर्वाणोत्सव आनन्दसे किया।

●

३६

विपुलाचलकी छायामें

पावापुरसे चलकर राजगृही आये। पञ्च पहाड़ीकी वन्दना की। पर्वतकी तलहटीमें कुण्ड हैं, पानी गरम है, और जिनमें एकही बार स्नान करनेसे सब थकावट निकल जाती है। मैं तीन मास यहाँ रहा, प्रातःकाल सामायिक करनेके बाद कुण्डों पर जाता था और वहीं आधा घंटा स्नान करता था। वहीं पर बहुतसे उत्तम पुरुष आते थे, उनके साथ धर्मके ऊपर विचार

करता था। अन्तमें सबके परामर्शसे यही सच निकला कि धर्म तो आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम है। यह जो हम प्रवृत्तिमें कर रहे हैं धर्म नहीं है। मन वचन कायके शुभ व्यापार हैं। जहाँ मनमें शुभ चिन्तन होता है, कायकी चेष्टा सरल होती है, वचनोंका व्यापार स्वपरको अनिष्ट नहीं होता वह सब मन्द कषायके कार्य हैं। धर्म तो वह वस्तु है जहाँ न कषाय है और न मन वचन कायके व्यापार हैं, वास्तवमें वह वस्तु वर्णनातीत है, उसके होते ही जीव मुक्तिका पात्र हो जाता है। मुक्ति कोई अलौकिक पदार्थ नहीं, जहाँ दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है वहीं मुक्ति का व्यवहार होने लगता है।

'सुखमात्यन्तिकं यत्र बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
तं वै मोक्षं विजानीयाद् दुष्प्राप्यमकृतात्मभिः ॥'

हमारी गोष्ठीमें यही चर्चाका विषय रहता था कि इस शरीर में निजत्व बुद्धिको सबसे पहले हटाना चाहिये यदि हट गई तो शरीरके जो सम्बन्धी हैं उनसे सुतरां ममता बुद्धि हट जावेगी। यहाँका जलवायु अत्यन्त स्वच्छ है। हरी-भरी पहाड़ियोंके दृश्य, विलक्षण कुण्ड और प्राकृतिक कन्दराएँ सहसा मनको आकर्षित कर लेती हैं। विपुलाचलका दृश्य धर्मशालासे ही दिखाई देता है। यहाँ पहुँचते ही यह भाव हो जाता है कि यहाँ श्री वीरप्रभुका समवसरण (सभा) जब आकाशमें भरता होगा और चारों ओरसे जब मनुष्य, विद्याधर तथा देव गण उसमें प्रवेश करते होंगे तब कितना आनन्द न होता होगा? भगवान्‌की जगत् कल्याणकारिणी दिव्यध्वनिसे यहाँके पृथिवी और आकाश गुञ्जित रहे होंगे। यह वही स्थान है जहाँ महाराज श्रेणिक जैसे विवेकी राजा और महारानी चेलना जैसी पतिव्रता रानीने निवास किया था। विपुलाचल पर दृष्टि जाते ही यह भाव

सामने आजाता है कि भगवान् महावीर स्वामीका समवसरण भरा हुआ है, गौतम गणधर विराजमान हैं और महाराज श्रेणिक नतमस्तक होकर उनसे विविध प्रश्नोंका उत्तर सुन रहे हैं। यहाँसे पैदल यात्रा करते हुए ईसरी आगये, मार्गमें उत्तम-उत्तम दृश्य मिले।

•

३७

वीर भूमि-बुन्देलखण्डमें

सागर विद्यालयसे एक आदमी मालवा प्रान्तमें चन्दाके लिए गया। किसी बड़े सेठसे चन्दा माँगा आपने उत्तर दिया कि ऐसे माँगनेवाले तो बहुत आते हैं। तुमको लाज नहीं आती। भीख माँगना ही तुम लोगोंने स्वीकार कर लिया। वह प्रान्त भी धनिक है उस प्रान्तके धनिक वर्गको उचित है कि प्रान्तके धर्मायतनोंकी रक्षा करें। रथ आदि महोत्सवोंमें तो सारी शक्ति लगा देते हैं, पर इन कामोंमें व्यय नहीं करते। यह कथा सुनकर मनमें विकल्प हुआ कि एक बार अवश्य सागर जाकर पाठशालाको चिरस्थायी करना चाहिए। यही विचार-बीज ऐसे पवित्र स्थानको छोड़नेका कारण हुआ। बनारसकी सीमा छोड़नेके बाद दसवं प्रतिमाका व्रत पालने लगे। मिर्जापुर, रींवा, सतना, पन्ना और छतरपुर होकर श्री द्रोणगिरि सिद्ध क्षेत्र पर पहुँच गये।

द्रोणगिरि

मेलाका अवसर था इससे भीड़ प्रायः अच्छी थी। गुरुदत्त पाठशालाका उत्सव हुआ। सिंघईजी सभापति हुए, मन्त्री बाल-

चन्द्रजी मलैयाने बहुत ही मार्मिक व्याख्यान दिया। उसे श्रवण कर १०००१) सिंघई वृन्दावनजी मलहराने, ५००१) सिंघई कुन्दनलालजीने और ३०००) के अन्दाज अन्य लोगोंने चन्दा दिया। १०००१) स्वयं मलैया बालचन्द्रजीने भी दिये। मेला सानन्द हुआ। इसके बाद आगन्तुक महाशय तो चले गये हमने सानन्द क्षेत्रकी वन्दना की। क्षेत्र बड़ा ही निर्मल और रम्य है पहाड़से नीचेकी ओर देखनेपर शिखरजीका दृश्य आँखोंके सम्मुख आ जाता है। पर्वतके सामने चन्द्रभागा नदी बह रही है तो पूर्वकी ओर श्यामली भी बह रही है। दक्षिणकी ओर एक बृहत्कुण्ड भरा हुआ है जो पहाड़की तलहटीसे निकला है। यदि कोई पर्वतकी परिक्रमा करना चाहे तो दो घण्टामें कर सकता है और डेढ़ घण्टामें वन्दना कर सकता है।

सागर

सागरमें कचहरी तक पहुँचते-पहुँचते हजारों नर नारी आ पहुँचे। बैण्ड बाजा तथा जलूसका सब सामान साथ था। छावनीमें घूमते हुए जुलूसके साथ श्री मलैयाजीके हीरा आइल मिल्समें पहुँचे। इन्होंने बड़ाही स्वागत किया। अनन्तर कटरा बाजार आये। यहाँपर गजाधरप्रसादजीने घरके दरवाजेके समीप पहुँचनेपर मङ्गल आरतीसे स्वागत किया। अनन्तर सिंघई राजाराम मुन्नालालजीने बड़े ही प्रेमके साथ स्वागत किया। पश्चात् श्री गौराबाई जैन मन्दिरकी वन्दना की। यहाँसे जुलूसके साथ बड़ा बाजार होते हुए मोराजी भवन पहुँच गये।

मार्गमें पच्चीसों स्थानोंपर तोरण द्वार तथा बन्दरवारे थे। मोराजीकी सजावट भी अद्भुत थी, वहाँ चार हजार मनुष्योंका समुदाय था। बड़े ही भावसे स्वागत किया। आगत जनताको अत्यन्त हर्ष हुआ। बाहरसे अच्छे-अच्छे महाशयोंका शुभागमन

हुआ था। रात्रिको सभा हुई जिसमें आगत विद्वानोंके उत्तमोत्तम भाषण हुए। साठ हजार रु० संस्कृत विद्यालयको मिल गये। ग्यारह हजार रुपयोंमें मेरी माला मलैयाजीने ली तथा चालीस हजार रुपये आपने हाईस्कूलकी बिल्डिंगको दिये। इसी प्रकार महिलाश्रमका भी उत्सव हुआ। उसके लिए भी पन्द्रह हजार रुपयेकी सहायता मिल गई। सात वर्षके बाद आने पर मैंने देखा कि सागर समाजने अपने कार्योंमें पर्याप्त प्रगति की है, मेरे अभावमें इन्होंने महिलाश्रम खोलकर बुन्देलखण्डकी विधवाओं का संरक्षण तथा शिक्षा का कार्य प्रारम्भ किया है तथा जैन हाई स्कूल खोलकर सार्वजनिक सेवाका केन्द्र बढ़ाया है। संस्कृत विद्यालय भी अधिक उन्नतिपर है, साथ ही और भी स्थानीय पाठशालाएँ चालू की हैं। मुझे यह सब देखकर प्रसन्नता हुई। सातसौ मीलकी लम्बी पैदल यात्राके बाद निश्चित मंजिलपर पहुँचनेसे मैंने अपने आपको भारहीनसा अनुभव किया।

खुरई

खुरईमें भी वहाँकी समाजने श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुलकी स्थापना कर ली थी। उसका उत्सव था. मैं भी पहुँचा, बहुत ही समारोहके साथ गुरुकुलका उद्घाटन हुआ। रुपया भी लोगोंने पुष्कल दिया। खुरईसे चलकर ईसुरवाराके प्राचीन मन्दिर के दर्शन करनेके लिये गया। एक दिन रहा, वहींपर हालाहल ज्वर आ गया। एक सौ पांच डिग्री ज्वर था, कुछ भी स्मृति न थी। पता लगते ही सागर से सिंघईजी आ गये। मुझे डोलीमें रख कर सागर ले आये। दस दिन बाद स्वास्थ्य सुधरा। यह सब हुआ परन्तु भीतरकी परिणतिका सुधार नहीं हुआ इसीसे तात्त्विक शान्ति नहीं आई। सुख पूर्वक सागरमें रहने लगे, चातुर्मास

यहीं का हुआ। भाद्रमासमें अच्छे अच्छे महानुभावों का संसर्ग रहा।

इसके बाद पटना ग्राम गये। यहाँसे रहली गये, नदीके ऊपर यह नगर बसा हुआ है उस पार पटनागञ्ज है जहाँ जैनियों के बड़े बड़े मन्दिर बने हुये हैं, मन्दिरोंमें नन्दीश्वर द्वीपकी रचना है। यहाँ से चलकर हरदी आया और यहाँसे नैनागिरि के मेले को चला गया।

नैनागिरि से चलकर शाहपुर आया, यहाँ पुष्पदन्त विद्यालय को पूर्वका द्रव्य मिलाकर बीस हजार रुपयेका फंड हो गया। विद्यालयके सिवा यहाँ पर एक चिरोंजाबाई कन्याशालाके नाम से महिला पाठशाला भी खुल गई। अनन्तर पटनागञ्जके मन्दिरों के दर्शनके लिये आये। वहाँ से श्री कुण्डलपुर गये।

कटनी

कुण्डलपुरसे चलकर कटनी आये। भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्का प्रथम अधिवेशन हुआ जिसमें अनेक विद्वान् पधारे थे। यहाँ पर तीन दिन परिषद्की बैठकें हुई धर्म की बहुत प्रभावना हुई तथा एक बात नवीन हुई कि पण्डित महाशयों ने दिल खोलकर परिषद्के कोषको स्थायी सम्पत्ति इकट्ठी कर दी।

जबलपुर

जबलपुरमें एक विशेष बात हुई, चातुर्मास बड़ी शान्ति और आनन्दके साथ व्यतीत हुआ। सतनावाले स्वर्गीय धर्मदासजी एक विलक्षण पुरुष थे। आपने मढ़ियाजीके मेले पर प्रस्ताव किया कि यहाँ पर गुरुकुल होना चाहिये। और उसके लिए दस हजार मैं स्वयं दूँगा। फिर क्या था ? जबलपुर समाज ने लाखकी पूर्ति कर दी। अगहन मासमें उसका उत्सव हुआ।

आजाद हिन्द सेनाको एक चादर

एक बार आजाद हिन्द फौजवालोंकी सहायता करने बावत सभा थी मुझे भी व्याख्यानका अवसर मिला। यद्यपि मैं तो राजकीय विषयमें कुछ जानता नहीं फिर भी मेरी भावना थी कि हे भगवान्! देशका संकट टालो। जिन लोगोंने देशहित के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर किया उनके प्राण संकटसे बचाओ, मैं आपके स्मरणके सिवाय क्या कर सकता हूँ? मेरे पास त्याग करनेको कुछ द्रव्य तो नहीं। केवल दो चद्दरें हैं इनमेंसे एक चद्दर मुकद्दमेकी पैरवीके लिये देता हूँ और मनसे परमात्माका स्मरण करता हुआ विश्वास करता हूँ कि यह सैनिक अवश्य ही कारागृहसे मुक्त होंगे। मैं अपनी भावना प्रकट कर बैठ गया अन्तमें वह चादर तीन हजार रुपये में नीलाम हुई। पण्डित द्वारकाप्रसादजी मिश्र इस प्रकरण से बहुत ही प्रसन्न हुए। इस तरह जबलपुरमें सानन्द काल जाने लगा।

जबलपुर से सागर

यहाँ से चलकर कोनी क्षेत्र आया। अतिशय क्षेत्र है। एक पहाड़की तलहटीमें सुन्दर मन्दिर बने हैं। पास ही नदी बहती है। पाटनसे तीन चार मील है, नदी पार कर जाना पड़ता है। बहुत ही रमणीक और शांतिप्रद स्थान है। दमोह से सदगुवां पथरिया पड़रिया ग्राम आये। यहाँ पर एक लुहरीसेन का घर है। बहुत ही सज्जन है। लोग उसे पूजन करनेसे रोकते हैं। बहुत विवादके बाद उसे पूजन की खुलासी कर दी गई वहाँ से सागर पहुँच गये। हजारों मनुष्योंकी भीड़ थी। शहरकी प्रधान सड़कें वन्दन मालाओं और तोड़न द्वारोंसे सुसज्जित की गयी थीं। जिस समय सागरसे चलने लगे। उस समय

नर-नारियों का वहुत समारोह हुआ। स्त्रियोंने रोकनेका बहुत ही आग्रह किया। मैंने कहा यदि सागर समाज महिलाश्रमके लिये, एक लाख रुपया देने का वायदा करे तो हम सागर आ सकते हैं। स्त्री समाजने कहा कि हम आपके वचनकी पूर्ति करेंगे। परन्तु हम वहाँसे द्रोणगिरि चले गये।

मेलाका समय था, अतः सिंघई कुन्दनलालजी तथा बालचन्द्रजी मलैया पहलेसे ही मौजूद थे। दूसरे दिन पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ। दस हजार एक रुपया श्री सिंघई कुंदनलालजीने एकदम प्रदान किया तथा इतना ही श्री वालचन्द्रजी मलैया ने दिया। सिंघई वृन्द्रावनजीके न होने पर भी उनके सुपुत्रने दो हजार कहा। मैंने कहा पाँच हजार एक कह दीजिये। उसने हँस कर स्वीकारता दी। फुटकर चन्दा भी तीन हजार रुपयाके लगभग हो गया। मेला विघट गया, सब मनुष्य अपने २ घर गले गये।

सागरमें शिक्षण शिविर

हम लोग बीचमें ठहरते हुए, सागर आ गये। पहले की भाँति अनेक महाशय गाजे बाजेके साथ लेनेके लिये, दो मील दूर तक आये। सागरमें शिक्षण-शिविर चल रहा था, इन्हीं दिनोंमें विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीकी बैठक हुई। 'संजद' पदकी आवश्यकता पर पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री का मार्मिक भाषण हुआ। और उन्होंने सबकी शंकाओंका समाधान भी किया। अन्तमें सब विद्वानोंने मिलकर निर्णय दिया कि धवल सिद्धांतके तेरानवें सूत्रमें 'संजद' पदका होना आवश्यक है।

सर सेठ हुकमचन्द्रजीका शुभागमन

१८ जून सन् १९४६ को रात्रिको मोटर द्वारा श्रीमान् राज्य-

मान्य सब विभव सम्पन्न सर सेठ हुकमचन्द्रजीका शुभागमन सागर हुआ। निश्चित कार्यक्रमके अनुसार आज शास्त्र-प्रवचन भी चौधरनबाईके मन्दिरमें हुआ। मन्दिर स्थानीय जैन जनतासे खूब भरा हुआ था। प्रवचनका ग्रन्थ समयसार था। मैंने 'सुद परिचिदानुभूदा सव्वस वि कामभोग बन्ध कहा' इस गाथापर प्रवचन किया। प्रवचन चल ही रहा था कि सेठजी बीचमें बोल उठे 'महाराज! मुझे प्रवचन सुनकर अपार आनन्द हुआ है। सागरकी जनता बड़ी भाग्यशाली है जो निरन्तर ऐसे प्रवचन सुना करती है। मैं पहले मय बाल बच्चोंके आनेवाला था पर घरमें तवियत खराब हो जानेसे नहीं आ सका, आप एक बार इन्दौर अवश्य पधारें।' 'आज सर सेठ साहबकी पचहत्तरवीं जन्म गाँठ है' यह जानकर सागरकी जनतामें अपूर्व आनन्द छा गया। जन्मगाँठके उत्सवकी घोषणा की गई फल स्वरूप आठ बजते बजते विद्यालयके प्रांगणमें कई हजारकी भीड़ एकत्र हो गई। सेठजीने अपनी लघुता बतलाते हुए सार पूर्ण वक्तव्य दिया और अन्तमें यह प्रकट किया कि मैं पच्चीस हजार रुपया की रकम वर्णीजीकी इच्छानुसार दानके लिए निकालता हूँ। प्रातः-काल मन्दिरमें पहुँचते ही मैंने सागर समाजसे कहा कि यदि आप लोग सेठजीके पच्चीस हजार रुपया अपने विद्यालयको चाहते हों तो अपने पच्चीस हजार रुपया और मिलाइये अन्यथा मैं प्रान्तकी अन्य संस्थाओंको वितरण कर दूँगा। सुनते ही सागर समाजने चन्दा लिखाना शुरू कर दिया, बहुत आदमियोंका विचार था कि वर्णीजी यहीं रहें, परन्तु मुझे तो शनैश्चरग्रह लगा था। जिससे मैं हजारों नरनारियोंको निराश कर आश्विन सुदी तीज सं० २००४ को सागरसे चल पड़ा।

●

३८

ग्राम-ग्राम में, गली-गली में

सागरसे चलकर शाहपुर पहुँचा। इधर एक बात विशेष हुई। यहाँ एक चर्मकार है। तीन वर्ष पहले हमने उससे कहा था कि भाई मांस-खाना छोड़ दो, उसने छोड़ दिया तथा शाहपुर के सम्पूर्ण चर्मकारोंमें इस बातका प्रचार कर दिया कि मृत पशु का मांस नहीं खाना चाहिये। बहुतोंने जीव हिंसाका भी त्याग कर दिया। यहाँसे चलनेके बाद दमोह पहुँचे। यहाँकी नवयुवक पार्टीने एक जैन हाई स्कूल खोलने का दृढ़ संकल्प किया समाजने उसमें यथाशक्ति योगदान दिया। यहाँसे सदगुवाँ, नैनागिरि, मड़ावरा आदि होते हुए श्री अतिशय क्षेत्र अहार पहुँचा। अहार क्षेत्रका प्राकृतिक सौन्दर्य अवर्णनीय है। वास्तवमें पहाड़ों के अनुपम सौन्दर्य, बाग बगीचों, हरे भरे धानके खेतों एवं मीलों लम्बे विशाल तालाबसे निकलकर प्रवाहित होने वाले जल प्रवाहोंसे अहार एक दर्शनीय स्थान बन गया है। उस पर संसार को चकित कर देनेवाली पापट जैसे कुशल कारीगरकी कर कलासे निर्मित श्री शान्तिनाथ भगवान्की सातिशय प्रतिमाने तो वहाँ के वायु-मण्डल को इतना पवित्र बना दिया है कि आत्मामें एकदम शान्ति आ जाती है।

पठा, पपौरा, आदि का भ्रमण कर पुनः बरुआसागर आ गया।

बाबू रामस्वरूपजी के विषयमें क्या लिखूं? वे तो विद्यालय के जीवन ही हैं। वर्तमानमें उसका जो रूप है वह आपके सत्प्रयत्न और स्वार्थत्याग का ही फल है। आप निरन्तर

स्वाध्याय करते हैं, तत्त्व को समझते भी हैं, शास्त्रके बाद आध्यात्मिक भजन बड़ी ही तन्मयतासे कहते हैं। आपकी धर्मपत्नी ज्वालादेवी हैं जो बहुत चतुर और धार्मिक स्वभाव की हैं, निरन्तर स्वाध्याय करती हैं। स्वभाव की कोमल हैं। आपका एक सुपुत्र नेमिचन्द्र एम० ए० है जो स्वभाव का सरल, मृदुभाषी और निष्कपट है, विद्याव्यसनी भी है। फाल्गुन शुक्ल वीर नि० २४७४ का अष्टाह्निका पर्व आ गया। उस समय आपने बड़ी धूमधाम से सिद्धचक्र विधान कराया जिससे धर्म की महती प्रभावना हुई।

इसी अवसर पर बाबू रामस्वरूपजी तथा उनकी सौ० धर्मपत्नी ज्वालादेवीने दूसरी प्रतिमाके व्रत प्रसन्नता पूर्वक लिये और कोयला आदिके जिस व्यापारसे आपने लाखों रुपये अर्जित किये थे उसे व्रतीके अनुकूल न होनेसे सदा के लिये छोड़ दिया। सब लोगोंको बाबू साहबके इस त्यागसे महान् आश्चर्य हुआ। मैंने भी मिती फाल्गुन सुदी सप्तमी वी० सं० २४७४ को प्रातःकाल श्री शान्तिनाथ भगवान्‌की साक्षीमें आत्मकल्याणके लिये क्षुल्लक के व्रत लिये। मेरा दृढ़ निश्चय है कि प्राणीका कल्याण त्यागमें ही निहित है।

इसी अष्टाह्निका पर्वके समय यहाँके पार्श्वनाथ विद्यालयका वार्षिक अधिवेशन भी हुआ जिसमें सब मिलाकर २५००० रुपया के लगभग विद्यालयका ध्रौव्यफण्ड होगया। इस प्रकार विद्यालय स्थायी हो गया। मुझे भी एक शिक्षायतनको स्थिर देख अपार हर्ष हुआ। वास्तवमें ज्ञान ही जीवका कल्याण करनेवाला है परन्तु यह पञ्चमकाल का ही प्रभाव है कि लोग उससे उदासीन होते जा रहे हैं। बरुआसागरसे चलकर वेत्रवती नदी पर आये। स्थान बहुत ही रम्य है। साधुओंके ध्यान योग्य है परन्तु साधु होंतब न।

सोनागिरी

यहाँसे चलकर दो दिन बीचमें ठहरते हुए दतिया आगये और यहांसे चलकर श्रीसोनागिरिजी आगये। मन्दिर बहुत ही मनोज्ञ तथा विस्तृत हैं। प्रातःकाल पर्वतके ऊपर वन्दनाको गये। मार्ग बहुत ही स्वच्छ और विस्तृत है। पर्वतके मध्यमें श्री चन्द्रप्रभु स्वामीका महान् मन्दिर बना हुआ है। यहां पर एक पाठशाला भी है।

दिल्लीयात्राका निश्चय तथा प्रस्थान

ग्रीष्मकालका उत्ताप विशेष हो गया था अतः यह विचार किया कि ऐसी तपोभूमिमें रहकर आत्मकल्याण करूँ। मनमें भावना थी कि श्री स्वर्णगिरिमें ही चतुर्मास करूँ और इस क्षेत्रके शान्तिमय वातावरणमें रहूँ। श्री लाला राजकृष्णजी कुछ लोगोंको साथ लाये। इन सबने देहली चलनेका हार्दिक अनुरोध किया। इससे जैनधर्मके प्रचारका विशेष लाभ दिखलाया जिससे मैंने देहली चलनेकी स्वीकृति दे दी।

वैशाख वदि ४ सं० २००६ को प्रातःकाल सोनागिरिसे चल-कर लश्कर पहुँचे। यहाँ पर सर्राफाका जो बड़ा मन्दिर है उसकी शोभा अवर्णनीय है। यह सब होकर भी यहाँ पर कोई ऐसा विद्यायतन नहीं कि जिसमें बालक धार्मिक शिक्षा पा सकें। चम्पाबागकी धर्मशालामें पहुँचते ही मुझे उस दिनकी स्मृति आ गई जिस दिन कि मैं सर्व प्रथम अध्ययन करनेके लिये बाईजीके पाससे जयपुरको रवाना हुआ था और आकर इसी चम्पाबागमें ठहरा था। जब तक मैं नगरके बाहर शौच क्रियाके लिये गया था तब तक किसीने ताला खोलकर मेरा सब सामान चुरा लिया था। मेरे पास सिर्फ एक लोटा एक छतरी और छह आना पैसे

बचे थे और मैं निराश होकर पैदल ही घर वापिस लौट गया था। यहाँसे चलकर बैशाख सुदि पञ्चमीको गोपाचलके दर्शन करनेके लिये गया। गोपाचल क्या है दिगम्बर जैन संस्कृतिका द्योतक सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पर्वतकी भित्तियोंपर विशालकाय जिनबिम्ब कुशल कारीगरोंके द्वारा महाराज डूंगर-सिंहके समयमें निर्मित किये गये थे। लाखों रुपया उस कार्यमें खर्च हुआ होगा। पर मुगल साम्राज्य कालमें वे सब प्रतिमाएँ टांकीसे खण्डित कर दी गई हैं। कितनी ही पद्मासन मूर्तियाँ तो इतनी विशाल हैं कि जितनी उपलब्ध पृथ्वीमें कहीं नहीं होंगी। मनमें दुःखभरी सांस लेता हुआ वहाँसे चले और ढाई मील चलकर श्री गणेशीलालजी साहबके बागमें ठहर गये। बाग बहुत ही मनोहर और भव्य है। पर्वके बाद श्रावण वदि एकमको वीरशासन जयन्तीका उत्सव समारोहके साथ हुआ। श्रीयुत हीरालालजी और गणेशीलालजीके प्रबन्धसे यहाँ मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ और गोपाचलके अञ्चलमें मेरे लगभग सात माह सानन्द व्यतीत हुए, मुरारसे अगहन वदि ४ वीर सं० २४७५ को देहलीको ओर प्रस्थान किया।

ग्वालियरसे आगरा

अगहन बदी अष्टमी सं २००५ को एकबजे ग्वालियरसे चल कर बारसको मोरेना पहुँचे, पहुँचते ही एकदम स्वर्गीय पं० गोपाल-दासजीका स्मरण आ गया। यह वही महापुरुष हैं जिनके आंशिक विभवसे आज जैन जनतामें जैन सिद्धांतका विकास दृश्य हो रहा है। सिद्धान्त विद्यालयके भवनमें ठहरे, यह विलक्षणता यहाँ ही देखनेमें आई कि जलाभिषेकके साथ-साथ भगवान् के शिर ऊपर पुष्पोंका भी अभिषेक कराया गया। पुष्पोंका शोधन प्रायः नहीं देखनेमें आया। यहाँ की जनताका बहुभाग

इस पूजन प्रक्रियाको नहीं चाहता, यहाँ पर सिद्धान्त विद्यालय बहुत प्राचीन संस्था है। इसकी स्थापना स्वर्गीय श्री गुरु गोपालदासजीने की थी।

मोरेनामें ३ दिन रहनेके बाद धौलपुरकी ओर चल दिये। मार्गमें एक ग्रामके बाहर धर्मशाला थी उसमें ठहर गये। धर्मशालाका जो स्वामी था उसने सब प्रकारसे सत्कार किया। उसकी अन्तरङ्ग भावना भोजन करानेकी थी परन्तु यहाँकी प्रक्रिया तो उसके हाथका पानी पीना भी आगम विरुद्ध मानती है। जिसे जैन धर्मकी श्रद्धा हो और जो शुद्धता पूर्वक भोजन बनावे ऐसे त्रिवर्णका भोजन मुनि भी कर सकता है। परन्तु यहाँ तो रूढ़िवादकी इतनी महिमा है कि जैनधर्मका प्रचार कठिन है।

धर्मशालासे चलकर तीसरे दिन धौलपुर पहुँच गये। मन्दिर में प्रवचन हुआ जो जनता थी वह आगई। मनुष्योंकी प्रवृत्ति सरल है, जैनी हैं यह अवश्य है परन्तु ग्रामवासी हैं, अतः जैन धर्मका स्वरूप नहीं समझते। यहाँ के राजा बहुत ही सज्जन हैं। वन में जाते हैं और रोटी आदि लेकर पशुओं को खिलाते हैं। राजाके पहुँचने पर पशु स्वयमेव उनके पास आ जाते हैं। देखो दया की महिमा कि पशु भी अपने हितकारी को समझ लेते हैं यदि हम लोग दया करना सीख लें तो क्रूर से क्रूर जीव भी शान्त हो सकता है।

धौलपुर से ५ मील चलकर बिरौदा में रात्रि को उपदेश दिया। जनता अच्छी थी। यदि कोई परोपकारी धर्मात्मा हो तो नगरोंकी अपेक्षा ग्रामोंमें अधिक जीवोंको मोक्षमार्गका लाभ हो सकता है। यहाँसे मगरौल तथा एक अन्य ग्राममें ठहरते हुए राजाखेड़ा पहुँच गये। यहाँ पर एक जैन विद्यालय है। कई जैन मन्दिर हैं, अनेक गृह जैसवाल भाइयोंके हैं। बड़े प्रेमसे सबने प्रवचन सुना यथायोग्य नियम भी लिये।

राजाखेड़ामें तीन दिन ठहरकर आगराके लिए प्रस्थान कर दिया। बीचमें दो दिन ठहरे। जैनियोंके घर मिले, बड़े आदर से रक्खा तथा संघके मनुष्योंको भोजन दिया, श्रद्धापूर्वक धर्मका श्रवण किया। धर्मके पिपासु जितने ग्रामीण जन होते हैं उतने नागरिक मनुष्य नहीं होते। ग्रामोंमें शिक्षा ऐसी हो जिससे मनुष्यमें मनुष्यताका विकास आ जावे। यदि केवल धनोपार्जन की ही शिक्षा भारतमें रही तो इतर देशों की तरह भारत भी पर को हड़पनेके प्रयत्नमें रहेगा और जिन व्यसनों से मुक्त होना चाहता है उन्हींका पात्र हो जावेगा, मार्गमें जो ग्राम मिले उनमें बहुतसे क्षत्रिय तथा ब्राह्मण ऐसे मिले जो अपनेको गोलापूरव कहते हैं। हमारे प्रान्तमें गोलापूरव जैनधर्मभी पालते हैं परन्तु यहाँ सर्व गोलापूरव शिव, कृष्ण तथा रामके उपासक हैं। सभी लोगों ने सादर धर्मश्रवण किया किन्तु वर्तमानके व्यवहार इस तरह सीमित हैं कि किसीमें अन्य के साथ सहानुभूति दिखानेकी क्षमता नहीं। इसीसे सम्प्रदायवादकी वृद्धि हो रही है।

राजाखेड़ा से ६ मील चलकर एक नदी आई उसे पार कर निर्जन स्थानमें स्थित एक धर्मशालेमें ठहर गये। पौष मास था' सर्दीका प्रकोप था। प्रातःकाल सामायिक कर वहाँसे चल दिये। एक ग्राममें पहुँच गये, सबने बहुत आग्रह किया कि एक दिन यहाँ ही निवास करिये। हमलोग भी तो मनुष्य हैं हमको भी हमारे हितकी बात बताना चाहिये।

यहाँसे चलकर एक ग्राममें सायंकाल पहुँच गये और प्रातः-काल ३ मील चलकर एक दूसरे ग्राममें पहुँच गये। यहाँ पर आगरासे बहुतसे मनुष्य आ गये। सामायिक करनेके अनन्तर सर्व जन समुदायने आगराके लिये प्रस्थान कर दिया। दो मील जानेके बाद सहस्रों मनुष्योंका समुदाय मिला, गाजे-बाजेके साथ छीपीटोलाकी धर्मशालामें पहुँच गये। तीसरे दिन श्रीमहावीर

इंटर कालेजका उत्सव था। गाजे-बाजेके साथ वहाँ गये। उत्सवमें अच्छे-अच्छे मनुष्योंका समारोह था। आज शिक्षाका प्रचार अधिक है परन्तु पारमार्थिक दृष्टिकी ओर ध्यान नहीं। पहले समयमें शिक्षाका उद्देश्य आत्महित था परन्तु वर्तमानकी शिक्षाका उद्देश्य अर्थार्जन और कामसेवन है। तदनन्तर गाजे बाजेके साथ अन्य जिन-मन्दिरोंके दर्शन करते हुए बेलनगञ्जकी जैन धर्मशालामें ठहर गये। यहाँ पर एक सभा हुई जिसमें जनताका समारोह अच्छा था। श्वेताम्बर साधु भी अनेक आये थे। साम्यरसके विषयमें व्याख्यान हुआ। विषय रोचक था, अतः सबको रुचिकर हुआ।

यहाँ एक दिन स्वप्नमें स्वर्गीया बाबा भागीरथजीकी आज्ञा हुई–'हम तो बहुत समयसे स्वर्गमें देव हैं। यदि तू कल्याण चाहता है तो इस संसर्गको छोड़। तेरी आयु अधिक नहीं, शान्तिसे जीवन विता। हम तुम्हारे हितैषी हैं। हम चाहते हैं कि तुम्हें कुछ कहें परन्तु आ नहीं सकते। तुमसे जन्मान्तरका स्नेह है। अभी एक बार तुम्हारा हमारा सम्बन्ध शायद फिर भी हो। यदि कल्याण मार्ग की इच्छा है तो सर्व उपद्रवोंका त्याग कर शान्त होनेका उपाय करो। परकी निन्दा प्रशंसाकी परवाह न करो।' यहां रहनेका लोगोंने आग्रह बहुत किया, हमने मथुरा प्रस्थान कर दिया।

आगरासे मथुरा

आगरासे चलकर सिकन्दराबाद आ गये। अकबर बादशाह का मकबरा देखने गये उसमें अरबी भाषामें सम्पूर्ण मकबरा लिखा गया है। मुसलमान बादशाहोंमें यह विशेषता थी कि वे अपनी संस्कृतिके पोषक वाक्योंको ही लिखते थे। जैनियोंमें बड़ी-बड़ी लागतके मन्दिर हैं परन्तु उनमें स्वर्णका चित्राम

मिलेगा, जैनधर्मके पोषक आगम वाक्योंका लेख न मिलेगा। यदि इस मकबरामें पठन पाठनका काम किया जावे तो हजारों छात्र अध्ययन कर सकते हैं। इतने कमरोंमें अकारादि वर्णोंकी कक्षासे लेकर एम० ए० तककी कक्षा खुल सकती है, यहीं पर एक क्षत्रिय महोदय भी मिले। आप डाक्टर थे और कवि भी। रात भर आपके रुनकता ग्राममें रहे। ठाकुर साहबका अभिप्राय था कि एक दिन यहाँ निवास किया जावे तथा हमारे गृह पर आप पधारें, हमारे कुटुम्बीजन आपका दर्शन कर लेवें तथा वहीं पर आपका भोजन हो तब हमारा गृह शुद्ध होवे। परन्तु हृदयकी दुर्बलता और विचारोंने यह न होने दिया। यहाँसे चले तो ठाकुर साहब बराबर जिस ग्राममें हमने निवास किया वहाँतक आये तथा कहने लगे—'क्या यही जैनधर्म है ? जिस धर्ममें प्राणी मात्रके कल्याणका उपदेश है आप लोगों ने अभी उसके मर्मको समझा नहीं। हमें दृढ़ विश्वास है कि धर्मका अस्तित्व प्रत्येक जीवमें है आप पैदल यात्रा कर रहे हैं इसलिये उचित तो यह था कि जहां पर जाते वहां आम जनता में धर्मका उपदेश करते। जो मनुष्य उसमें रुचि करते वहां एक या दो दिन रहकर उन्हें भोजनादि प्रक्रियाकी शिक्षा देते तथा उनके गृह पर भोजन करते तब जैनधर्मका प्रचार होता। वर्णीजी ! आपसे मेरा अति प्रेम हो गया है इसका कारण आपकी सरलता है परन्तु खेद है कि लोगोंने इसका दुरुपयोग किया तथा आपसे जो हो सकता था वह न हुआ। इसमें मूल कारण आपकी भीरु प्रकृति इतनी है कि मैं इनके यहाँ भोजन करने लगूँगा तो लोग मुझे क्या कहेंगे ? यह आपकी कल्पना निःसार है, लोग क्या कहेंगे ? हजारों मनुष्य सुमार्ग पर आजावेंगे। आजकल अहिंसा तत्त्वकी ओर लोगोंकी दृष्टि झुक रही है सो इसका मूल कारण यह है कि अहिंसा आत्माकी

स्वच्छ पर्याय है अहिंसा किसी एक जाति या एक वर्ण विशेषका धर्म नहीं है।'

इतना कहकर वह तो चले गये, हम निरुत्तर रह गये। दूसरे दिन आनन्दसे श्री जम्बूस्वामीकी निर्वाण भूमि पहुँच गये। संघका वार्षिकोत्सव था जिसके सभापति श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्द्रजी साहब इन्दौरवाले थे। आपने भाषण देते हुए कहा—

'बात कहन भू पग धरन करण खडग पद धार।
करनी कर कथनी करें ते विरले संसार।'

जैनसंघकी रक्षाके लिये आपने २५००० पचीस हजार रुपया का दान किया। उपस्थित जनताने भी यथाशक्ति दान दिया। इसी अवसर पर विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीकी बैठक भी थी। विचारणीय विषय थे मानवमात्रको दर्शनाधिकार, प्राचीन दस्सा शुद्धि आदि। जिनपर उपस्थित विद्वानोंमें पक्ष विपक्षको लेकर काफी चर्चा हुई परन्तु अन्तमें निर्णय कुछ नहीं हो सका। मथुरासे चलते-समय पद्मपुराणमें वर्णित मथुरापुरीका प्राचीन वैभव एक बार पुनः स्मृतिमें आगया। यहाँपर मधु राजाका शत्रुघ्नके साथ युद्ध हुआ। शत्रुघ्नने छलसे उसके शस्त्रागारको स्वाधीन कर लिया। अस्त्रादिके अभावमें राजा मधु शत्रुघ्नसे पराजित होगया किन्तु गजके ऊपर स्थित जर्जरित शरीरवाले मधुने अनित्यत्वादि अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन कर दिगम्बर वेषका अवलम्बन किया। उसी समय शत्रुघ्नने आत्मीय अपराधकी क्षमा माँगी—हे प्रभो! मुझ मोही जीवने जो आपका अपराध किया वह आपके तो क्षम्य है ही, मैं मोहसे क्षमा माँग रहा हूँ।

मथुरा से अलीगढ़

मथुरासे चलकर वसुगाँवमें ठहर गये। यहाँसे हाथरस

पहुँचे। नये मन्दिरमें सभा हुई। बाहरसे आये हुए विद्वानोंके व्याख्यान मनोरञ्जक थे। थोड़ा-सा समय हमने भी दिया। व्याख्यान श्रवण कर मनुष्योंके चित्त द्रवीभूत हो गये। हाथरससे सासनी आये। जिस समय श्री जिनेन्द्रदेवका रथ निकल रहा था उस समय यहाँके प्रत्येक जातिवालोंने श्री जिनेन्द्रदेवको भेंट की। कोई जाति इससे मुक्त न था। सर्व ही जनताने श्री महावीर स्वामीकी जय बोली। यवन लोगोंने ४० रुपया भेंट किया तथा ब्राह्मण एवं वैश्योंने भगवान्की आरती उतारी। कहाँ तक कहें चर्मकारोंने २०० रुपयाकी भेंट की। खेद इस बातका है, हमने मान रक्खा है कि धर्मका अधिकार हमारा है। वह कुछ बुद्धिमें नहीं आता। धर्म वस्तु तो किसीकी नहीं, सर्व आत्मा धर्मके पात्र हैं, बाधक कारण जो हैं उन्हें दूर करना चाहिए। आज रात्रिको पुनः बाबा भागीरथजीका दर्शन हुआ। आपने कहा—

'क्या चक्रमें फँस अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर रहे हो? आत्माकी शान्ति पर पदार्थोंके सहकारसे बन्धनमें पड़ती है और बन्धनसे ही चतुर्गतिके चक्रमें यह जीव भ्रमण करता है। हम क्या कहें? तुमने श्रद्धाके अनुरूप प्रवृत्ति नहीं की। त्याग वह वस्तु है जो त्यक्त पदार्थका विकल्प न हो तथा त्यक्त पदार्थके अभावमें अन्य वस्तुकी इच्छा न हो। नमकका त्याग मधुरकी इच्छा बिना ही सुन्दर है।' माघ बदी ९ को अलीगढ़ गये। गाजे-बाजेके साथ मन्दिरमें गये। आनन्दसे दर्शन कर मन्दिरकी धर्मशालामें ठहर गये। अलीगढ़ श्री स्वर्गीय पण्डित दौलतराम जीका जन्मस्थान है। आपका पाण्डित्य बहुत ही प्रशस्त था, यहाँ सार्वजनिक सभा हुई मेरा भी व्याख्यान हुआ कि आत्मा अपने ही अपराधसे संसारी बना है और अपने ही प्रयत्नसे मुक्त हो जाता है। जब यह आत्मा मोही रागी द्वेषी होता है तब स्वयं

संसारी हो जाता है तथा जब राग द्वेष मोहको त्याग देता है तब स्वयं मुक्त हो जाता है।

अलीगढ़ से मेरठ

अलीगढ़से माघ सुदीको प्रातः १० बजे खुरजा पहुँच गये, खुर्जा आते ही उस ज्योतिषीकी भविष्यवाणी भी याद आ गई जिसने कहा था कि तुम वैशाखके बाद खुर्जा न रहोगे। खुर्जा में तीन दिन रह कर चल दिये। रात्रि होते होते एक ग्राममें पहुँच गये। यहाँ जिसके गृहमें निवास किया था, वह क्षत्रिय था। रात्रिमें उनकी मांने मेरे पास एक चद्दर देखकर बड़ी ही दया दिखलाई। बोली—बाबा! सरदी बहुत पड़ती है, रात्रिको नींद न आवेगी, मेरे यहाँ नवीन सौड (रजाई) रक्खी है, आप उसे लेकर रात्रिको सुख पूर्वक सो जाइये और मैं दूध लाती हूँ उसे पान कर लीजिये, मैंने कहा—मां जी! मैं यही वस्त्र ओढ़ता हूँ तथा रात्रिको कुछ खान पान नहीं करता हूँ। बुढ़िया मां बोली—अच्छा, प्रातःकाल मेरे यहाँ भोजन कर प्रस्थान करें। प्रातःकाल जब चलने लगे तो बूढ़ी मां आ गई और बोली कि क्या हो रहा है? हमने कहा—मां जी जा रहे हैं। वह बोली तुम्हारी जो इच्छा सो करो किन्तु २) ले जाओ इनके फल लेकर सब लोग व्यवहारमें लाना तथा पुत्रसे बोली—बेटा! घरके तांगामें इनका सामान भेज दो, मार्गमें हम लोग बुढ़िया माँ के सौजन्य पूर्ण व्यवहारकी चर्चा करते रहे। उसका बेटा महावीर राजपूत २ मील तक पहुँचाने आया और मेरे बहुत आग्रह करने पर वापिस लौटा। मेरे मनमें आया कि यदि ऐसे जीवोंको जैनधर्मका यथार्थ स्वरूप दिखाया जाय तो बहुत जनताका कल्याण होवे।

खुर्जासे ४ मील चलकर बुलन्दशहर आ गये और वहाँ

वालोंने शिष्टाचारके साथ हमें मन्दिरजीकी धर्मशालामें ठहरा दिया। मन्दिरमें शास्त्र स्वाध्याय किया—मनुष्य जन्मका लाभ अति कठिन है, संयम का साधन इसी पर्यायमें होता है, संसार नाशका साक्षात् कारण जो रत्नत्रय है वह हो सकता है। मनुष्य ही महाव्रतका पात्र हो सकता है। ऐसे निर्मल मनुष्य जन्मको पाकर पञ्चेन्द्रियोंके विषयमें लीन हो खो देना बुद्धिका दुरुपयोग है। अतः जहाँ तक बने आत्मतत्त्वकी रक्षा करो। प्रवचनके बाद बुलन्दशहरसे चले, मार्गमें दूसरे दिन एक वैष्णव धर्मको माननेवाली महिला आई और उसने बहुत से फल समर्पण किये। बहुत ही आदरसे उसने कहा कि हमारा भारतवर्ष-देश आज जो दुर्दशापन्न हो रहा है उसका मूल कारण साधु लोगोंका अभाव है। प्रथम तो साधुवर्ग ही यथार्थ नहीं और जो कुछ है यह अपने परिग्रहमें लीन है। कोई उपदेश भी देते हैं तो तमाखू छोड़ो, भाँग छोड़ो, रात्रिमें मत खाओ....यह उपदेश नहीं देते, क्योंकि ये स्वयं इन व्यसनोंके शिकार रहते हैं। यथार्थ उपदेश के अभावमें ही देशका नैतिक चरित्र निर्मल होनेकी जगह मलिन हो रहा है। मेरी आपसे नम्र प्रार्थना है कि आप अपनी पैदल यात्रामें प्राणीमात्रके लिये धर्मका उपदेश श्रवण करावें।

महिला चली गई और हृदयके अन्दर विचारोंका एक संघर्ष छोड़ गई। वहाँसे गुलावटी होते हुए हापुड़ आ गये। बागमें ठहर गये, मन्दिरमें दो दिन प्रवचन सुन मनुष्य प्रसन्न हुए, हापुड़से मेरठकी ओर प्रस्थान कर दिया। कैली, खरखोंदा होते हुए मेरठसे इसी ओर २ मील दूरी पर एक बागमें ठहर गये। यहाँ बहुत जनसंख्या आकर एकत्र होगई और गाजे-बाजेके साथ मेरठ ले गई। लोगोंने महान् उत्साह प्रकट किया। अन्तमें श्री जैन बोर्डिङ्गमें ठहर गये। लोगोंने सहारनपुर गुरुकुल-के लिये यथाशक्य सहायता दी। गुरुकुल संस्था उत्तम है परन्तु

लोगोंकी दृष्टि उस ओर नहीं। मेरठसे चलकर फाल्गुन वदी ८ सं० २००५ को ३ बजे खतौली आये। लोगोंने मार्गमें चाँदीके फूल बिखेरे। मैं तो इसमें कोई लाभ नहीं मानता। खतौलीमें प्रायः सभी सज्जन हैं। जैन कालेजमें प्रवचन था। मैंने भी कुछ कहा—

'आशाका त्याग करना ही सुखका मूल कारण है। जिन्होंने आशा जीत ली उन्होंने करने योग्य जो था वह कर लिया, आशाका विषय इतना प्रबल है कि कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता।' एक दिन भैंसी गये, यहाँपर १ चर्मकार है उसकी प्रवृत्ति धर्मकी ओर है। पार्श्वनाथका चित्र रक्खे है और उसकी भक्ति करता है। यहाँसे गंधारी, तिसना, वटावली और वसूमा होते हुए हस्तिनागपुर आगये। आनन्दसे श्रीजिनराजका दर्शन किया। यहां शान्ति, कुन्थु और अरहनाथ भगवान्‌के गर्भ, जन्म तथा तप कल्याणक हुए थे। कौरव पाण्डवोंकी भी राजधानी यही थी। अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियोंकी रक्षा भी यहाँ हुई थी तथा रक्षाबन्धनका पुण्य पर्व भी यहींसे प्रचलित हुआ था। यहाँके प्राचीन वैभव और वर्तमानकी निर्जन अवस्था पर दृष्टि डालते हुए जब विचार करते हैं तो अतीत और वर्तमानके बीच भारी अन्तर अनुभवमें आने लगता है।

देहलीके लाला हरसुखरायजीके बनवाये मन्दिरमें श्रीशान्तिनाथ स्वामीका बिम्ब अतिरम्य है। एक दिन स्त्री समाजके सुधारके अर्थ भी व्याख्यान हुआ। मैंने कहा कि यदि मनुष्य चाहे तो स्त्रीसमाजका सहज कल्याण हो सकता है। यदि यह समाज मर्यादासे रहे तो कल्याण पथ दुर्लभ नहीं। सबसे प्रथम तो ब्रह्मचर्य पाले, स्वपतिमें संतोष करे तथा पुरुष वर्गको उचित है कि स्वदारमें सन्तोष करे। पुरुष तथा स्त्रीवर्ग अपनी

इच्छाओंपर नियन्त्रण करे। लगभग बीस आदमियोंने ब्रह्मचर्य व्रत लिया, छोटे-छोटे बालकोंने रात्रिभोजन त्याग किया।

फागुन शुक्ला १२ सं० २००५ को मध्याह्नोपरान्त १ बजेसे गुरुकुलका उत्सव हुआ। प्रायः अच्छी सफलता मिली। हस्तिनागपुरका वर्तमान वातावरण अत्यन्त शान्तिपूर्ण है। यहाँ गुरुकुल जितना अच्छा कार्य कर सकता है उतना अन्यत्र नहीं। जैनसमाजको उचित है कि यहाँपर १ विद्यालय खोलें जिसमें शरणार्थी लोगोंके बालकोंको अध्ययन कराया जावे तथा १ औषधालय खोला जावे जिसमें आम जनताको औषध बाँटी जावे। चैत्र वदी ३ सं० २००५ को हस्तिनागपुरसे चलकर गणेशपुर मवाना, वसूमा, मीरापुर, ककरौली, होते हुए तिस्सा आ गये। मध्याह्नको आमसभा हुई। एक ब्राह्मणने जो कि मद्यपान करता था जीवन पर्यन्तके लिये मद्यपान छोड़ दिया, १ मुसलमान भी जीवघात छोड़ गया तथा एक चमारने मदिरा छोड़ दी। यहाँसे कवाल, मंसूरपुर, वहलना होते हुए चैत्र वदी १४ को मुजफ्फरनगर आ गये। वहाँ २००० आदमियोंका जुलूस निकला। २ तोला धूल फाँकनेमें आई होगी। दिनके दो बजेसे सभा थी। उसमें बहुतसे नर-नारी आये। गुरुकुलकी अपील की १८ हजार रु० चन्दा हो गया। चैत्र सुदी ६ सं० २००६ को मुजफ्फरनगरसे चलकर रोहाना होते हुए फुटेसरा पहुँच गये। यहाँ मुस्लिम समाजका विशाल कालेज है जिसमें उनके उच्चतम ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं, २००० छात्र उसमें शिक्षा पाते हैं। बहुत ही सरल इनका व्यवहार है, बहुत मधुरभाषी हैं।

चैत्र सुदी १२ को सहारनपुर आगये। सहारनपुरके बाहर हजारों मनुष्योंका जमाव हो गया। बड़ी सजधजके साथ जुलूस निकाला। अगले दिन जैन बागमें प्रवचन हुआ, मनुष्योंकी भीड़ बहुत थी, तदपेक्षा स्त्री समाज बहुत था। दो बी. ए. लड़कों

ने यह प्रतिज्ञा ली कि विवाहमें रुपया नहीं माँगेंगे। दो ने यह नियम लिया कि जो खर्च होगा उसमेंसे एक पैसा प्रति रुपया विद्यालयको देवेंगे। कई मनुष्योंने विवाहमें कन्या पक्षसे याञ्चा न करनेका नियम लिया। यहाँ १०—११ दिन रहे। सभी दिनोंमें समागम अच्छा रहा। वैशाख बदी १० को सरसावा आगये। यहाँ १ घटनासे चित्तमें अति क्षोभ हुआ और यह निश्चय किया कि परका समागम आदि सब व्यर्थ है। वैशाख वदी १२ को वीरसेवामन्दिरका १३वां वार्षिकोत्सव हुआ। आगामी दिन कन्या विद्यालयका वार्षिकोत्सव हुआ।

वैशाख बदी १३ को जगाधरी आ गये। सब समाजने स्वागत किया। प्रवचनमें ब्राह्मण भी बहुत आये। जैनधर्मकी पदार्थ निरूपणकी शैलीसे बहुत प्रभावित हुए। कई मानवोंने ब्रह्मचर्य व्रत लिया तथा स्त्री समाजने महीन वस्त्रोंके परिधानका त्याग किया। जगाधरीसे चलकर रत्नपुर होते हुए कुतुबपुरी आ पहुँचे। २ वजे आमसभा हुई। यहां पर जो ठाकुर राणा थे उन्होंने शिकार छोड़ दिया तथा मदिराका भी त्याग कर दिया। ग्रामके अन्य प्रतिष्ठित लोगोंने भी माँस मदिराका त्याग किया। यहाँसे समस्तपुर, नकुड़ होते हुए अम्बाड़ा आगये। धर्मशाला में कई महाशयोंने जो कि हरिजनोंमें थे, मदिराका त्याग किया। कई महाशयोंने मांसका त्याग किया। अम्बाड़ासे इस-लामपुर आ गये। मार्गमें एक पठानने ६ आम उपहारमें दिये। १ जैनी भाई लेनेको प्रस्तुत नहीं हुए। मैंने कहा कि अवश्य लेना चाहिये। आखिर यह भी तो मनुष्य हैं। इनके भी धर्मका विकास हो सकता है। इसलामपुरसे रामनगर आये। जैनियों की अपेक्षा अन्य मनुष्योंने बड़े स्नेहसे धर्मके प्रति जिज्ञासा प्रकट की तथा उनके चित्तमें मार्गका विशेष आदर हुआ। नानौता आ गये। २ वजे बाद उत्सव हुआ। कई सहस्र मनुष्य उत्सवमें आये।

कीर्तन किया गया नानौतासे तीतरों, कच्चीगढ़ी, पक्कीगढ़ी होते हुए शामली आये। प्रातःकाल पूर्व एक घटना हुई स्वप्नमें बाबा भागीरथ जी को दिगम्बर मुद्रामें देखा। मैंने कहा—'महाराज! आप दिगम्बर हो गये? आप तो यहाँ पञ्चम गुणस्थानवाले श्रावक थे? यहाँसे स्वर्ग गये, देव पर्याय पाई। फिर यह मुद्रा कहाँ पाई?' उन्होंने कहा—'भाई गणेशप्रसाद! तुम बड़े भोले हो। मैं तुम्हारे समझानेके लिए आया हूँ। यद्यपि मैं अभी सागरों पर्यन्त आयु भोगकर मनुष्य होऊँगा तब दिगम्बर पदका पात्र बनूँगा, परन्तु तुमको कहता हूँ कि तुमने जो पद अंगीकार किया है उसकी रक्षा करना। व्रत धारण करना सरल है, परन्तु उसकी रक्षा करना कठिन है। बाह्यमें एक चद्दर और २ लँगोटी रखना। एकबार पानी पीना कठिन नहीं तथा आजन्म निर्वाह करना कोई कठिन नहीं। किन्तु आभ्यन्तर निर्मलता होना अति कठिन है।'

कांदलामें ग्रामके सबसे बड़े प्रसिद्ध मौलवीसाहबने २ आम भोजनके लिए दिये। कांदलासे चलकर गंगेरु, किट्ठल छपरौली, नगला, बावली होते हुए आषाढ़ बदी ५ को बड़ौत आ गये। बड़ी शानसे स्वागत किया। कालेज भवनमें बहुत भीड़ थी। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन हुआ, भीड़ बहुत थी। बड़ौत में ६ दिन लग गये। बड़ौतसे बड़ौली, मसूरपुर, बागपत, टटेरी-मण्डी होते हुए खेखड़ा आगये। इसमें बाबा भागीरथजी प्रायः निवास करते थे। २०० घर जैनियोंके हैं, यहाँसे बड़ेगाँव, टीला, शहादरा होते हुए राजकृष्णजीके बागमें ठहर गये।

३९

दिल्लीकी भूल भुलैयामें

आषाढ़ सुदी ८ सं० २००६ को एक विशाल जूलूसके साथ दिल्लीके सुप्रसिद्ध लाल मन्दिरमें आगये। जनता बहुत थी फिर भी प्रबन्ध सराहनीय था। यहीं पर लाल मन्दिरकी पञ्चायतने अभिनन्दन पत्र समर्पित किया। मैंने भी अपना अभिप्राय जनताके समक्ष व्यक्त किया—'त्यागसे ही कल्याण मार्ग सुलभ है। त्यागके बिना यह जीव चतुर्गतिरूप संसारमें अनादिकाल से भ्रमण कर रहा है, आदि। अनाथाश्रमके भवनमें ठहराया गया। मुरारसे लेकर यहाँ तक सात माहके निरन्तर परिभ्रमण से शरीर शान्त होगया था तथा चित्त भी क्लान्त हो चुका था, इसलिये यहाँ इस मञ्जिलपर आते ही ऐसा जान पड़ा मानो भार उतर गया हो।

वर्तमानमें स्वतन्त्र भारतकी राजधानी होनेसे दिल्लीकी शोभा अनूठी है। यहाँकी जनसंख्या २२ लाखसे कम नहीं है। जिसमें जैनियोंकी जनसंख्या पच्चीस हजारसे कम ज्ञात नहीं होती। यहाँ अनेक जैन श्रीमन्त, राजमन्त्री तथा कोषाध्यक्ष हो गये हैं। जैन संस्कृतिके संरक्षक अनेक जैन मन्दिर समय-समय पर बनते रहे हैं। वर्तमानमें जैनियोंके २९ मन्दिर और ४-५ चैत्यालय हैं। ३-४ मन्दिरोंमें अच्छा विशाल शास्त्रभण्डार भी है। वर्तमानमें लालमन्दिर सबसे प्राचीन है, उसका निर्माण शाहजहाँके राज्य कालमें हुआ था। दूसरा दर्शनीय ऐतिहासिक मन्दिर 'नया मन्दिर' राजा हरसुखरायका है। इस मन्दिरमें पच्चीकारीका बहुत बारीक और अनूठा काम है जो कि ताजमहलमें भी उपलब्ध नहीं होता। वि० सं० १८५७ में इसे बनवाना

शुरू किया था और सात वर्षके कठोर परिश्रमके बाद वि० सं० १८६४ में बनकर तैयार हुआ था। उस समय इस मन्दिरकी लागत लगभग सात लाख रुपया आई थी जब कि कारीगरको चार आना और मजदूरको दो आना प्रतिदिन मजदूरीके मिलते थे।

मन्दिरमें प्रवेश करते ही दर्शकको मुगलकालीन १५० वर्ष पुरानी चित्रकलाके दर्शन होते हैं। मूर्तियोंमें स्फटिक, नीलम और मरकतकी मूर्तियाँ भी विद्यमान हैं। सरस्वती भवनमें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी आदिके १८०० के लगभग हस्त लिखित ग्रन्थ तथा २०० के लगभग हिन्दी संस्कृतके गुटकों का संकलन है। इन ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ वि० सं० १४८६ का लिखा हुआ है। ५०० से अधिक मुद्रित ग्रन्थ भी संगृहीत है।

पावन दशलक्षण पर्व

दशलक्षण पर्व आगया। जैन समाजमें दशलक्षण पर्वका महत्त्व अनुपम है। भारतमें सर्वत्र जहाँ जैन रहते हैं वहाँ इस समय यह पर्व समारोहके साथ मनाया जाता है। पर्वका अर्थ तो यह है कि इस समय आत्मामें समाई हुई कलुषित परिणति को दूरकर उसे निर्मल बनाया जाय पर लोग इस ओर ध्यान नहीं देते। बाह्य प्रभावनामें ही अपनी सारी शक्ति व्यय कर देते हैं।

हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन

इसी समय समाजमें हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन जोर पकड़ रहा था। कुछ लोग यह कहने लगे कि हरिजनोंको मन्दिर प्रवेशकी आज्ञा मिलनेसे धर्म विरुद्ध काम हो जायगा,

इसके विरुद्ध कुछ लोगोंका यह कहना रहा कि यदि हरिजन शुद्ध और स्वच्छ होकर धार्मिक भावनासे मन्दिर आना चाहते हैं तो उन्हें बाधा नहीं होना चाहिए। मन्दिर कल्याणके स्थान हैं और कल्याणकी भावना लेकर यदि कोई आता है तो उसे रोका क्यों जाय? इस चर्चाको लेकर एक दिन मैंने कह दिया कि हरिजन संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य हैं। उनमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी सामर्थ्य है, सम्यग्दर्शन ही नहीं व्रत धारण करने की भी योग्यता है। यदि कदाचित् काललब्धि वश उन्हें सम्यग्दर्शन या व्रतकी प्राप्ति हो जाय तब भी क्या भगवान्के दर्शनसे वञ्चित रहे आवेंगे? समन्तभद्राचार्यने तो सम्यग्दर्शन सम्पन्न चाण्डालको भी देव संज्ञा दी है पर आजके मनुष्य धर्मकी भावना जागृत होनेपर भी उसे जिन दर्शन-मन्दिर प्रवेशके अनधिकारी मानते हैं।....मेरे इस वक्तव्यको लेकर समाचार पत्रोंमें लेख प्रतिलेख लिखे गये। अनेकोंको हमारा वक्तव्य पसन्द आया। अनेकोंकी समालोचनाका पात्र हुआ पर अपने हृदयका अभिप्राय मैंने प्रकट कर दिया। मेरी तो श्रद्धा है कि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव सम्यग्दर्शनके अधिकारी हैं यह आगम कहता है। सम्यग्दर्शनके होनेमें वर्ण और जातिविशेषकी आवश्यकता नहीं। हम लोग इतने स्वार्थी हो गये कि विरले तो यहाँ तक कह देते हैं कि यदि इनका सुधार हो जायगा तो हमारा कार्य कौन करेगा? लोकमें अव्यवस्था हो जायगी, अतः इनको उच्च धर्मका उपदेश ही नहीं देना चाहिये। जगत्में इतना स्वार्थ फैल गया है कि जिनके द्वारा हमारा सभी व्यवहार बन रहा है उन्हींसे हम घृणा करते हैं।

देखो, विचारो, जो मनुष्य संज्ञी है यदि उसे संसारसे अरुचि हो तथा धर्मसाधन करनेकी उसकी भावना जागृत हो तो उसे कोई मार्ग भी तो होना चाहिये। मन्दिर एक आलम्बन है।

उससे वञ्चित रहा, आप स्वयं उससे बोलना नहीं चाहते, वाङ्मय आगम है उसके पढ़नेका अधिकारी नहीं, अतः स्वाध्याय नहीं कर सकता, आप सुनना नहीं चाहते तब वह तत्त्वज्ञानसे वञ्चित रहेगा, तत्त्वज्ञानके बिना संयमका पात्र कैसे होगा और संयमके विना आत्माका कल्याण कैसे कर सकेगा ? इस तरह आपने भगवान्‌का जो सार्वधर्म है उसकी अवहेलना की। धर्म प्राणी मात्रका है उसका पूर्ण विकास मनुष्य पर्यायमें ही होता है, अतः चाहे चाण्डाल हो अथवा महान् दयालु हो, धर्मश्रवणके अधिकारी दोनों ही हैं। अतः जाति अभिमानका परित्याग कर प्राणी मात्र पर दया करो, जिनके आचरण मलिन हैं उन्हें सदाचारकी शिक्षा दो।

नम्र निवेदन

भादों सुदी पूर्णिमाके दिन, दिल्लीसे निकलनेवाले हिन्दुस्तान दैनिक पत्रमें यह लेख छपा हुआ दृष्टिगोचर हुआ कि वर्णी गणेशप्रसाद शूद्रलोगोंके मन्दिर प्रवेशके पक्षमें हैं...अस्तु, हम किसी पक्षमें नहीं, किन्तु यह अवश्य कहते हैं कि धर्म आत्मा की परिणति विशेष है और उसका विकास संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें प्रारम्भ हो जाता है। जिन्हें हरिजन कहते हैं इनके भी व्रत प्रतिमा हो सकती है। ये बारह व्रत पाल सकते हैं, धर्मकी भी अकाट्य श्रद्धा इन्हें हो सकती है। हरिजनोंमें उत्पत्ति होनेसे वह इसका पात्र नहीं यह कोई नहीं कह सकता। वे निन्द्यकार्य करते हैं इससे सम्यग्दर्शनके पात्र न हों यह कोई नियामक कारण नहीं ? क्योंकि उच्च गोत्रवाले भी प्रातःकाल शौचादि क्रिया करते हैं तथा यह कहो कि उस कार्यमें हिंसा बहुत होती है इससे वे सम्यग्दर्शनादिके पात्र नहीं तब मिलवालोंके जो हिंसा होती है—हजारों मन चमड़ा और

चर्बीका उपयोग होता है तदपेक्षा तो उनकी हिंसा अल्प ही है, अतः हिंसाके कारण वे दर्शनके पात्र नहीं यह कहना उचित नहीं। यदि यह कहा जाय कि भोजनादिकी अशुद्धताके कारण वे दर्शन के पात्र नहीं तो प्रायः इस समय बहुत ही कम ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो शुद्ध भोजन करते हैं, अतः यह निर्णय समुचित प्रतीत होता है कि जो मनुष्य धर्मकी श्रद्धा रखता हो वह भी जिनदेव के दर्शनका पात्र हो सकता है। यह ठीक है कि उसके व्यवहार में शुद्ध वस्त्रादि होना चाहिये तथा मद्य मांस मधुका त्यागी होना चाहिये। व्यवहारधर्मकी यह बात है।

निश्चयधर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। उसका तो यहाँ पर विवाद ही नहीं है क्योंकि उसके पालनके प्रत्येक संज्ञी जीव पात्र हो सकते हैं। धर्म प्रत्येक प्राणीका प्राण है। आगममें शूद्रके क्षुल्लक पर्याय हो सकती है ऐसा विधान है तब क्या शूद्र लोग उसे आहार नहीं दे सकते? यह समझमें नहीं आता। यदि आहार दे सकते हैं तो श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शन अधिकारी न हों यह बुद्धिमें नहीं आता। केवल हठवादको छोड़कर अन्य युक्ति नहीं।

दिल्लीके शेष दिन

आसौज वदी ४ सं० २००६ को मेरा जयन्ती उत्सव था जिसमें उद्योगमन्त्री भी पधारे थे। आपने समयानुकूल अच्छा भाषण दिया। अनेक लोगोंने श्रद्धाञ्जलियाँ दी जिन्हें सुनकर मुझे बहुत संकोच उत्पन्न हुआ। मैंने तो उत्सवमें यही कहा— 'संसार के प्राणी मात्र पर दया करो। स्पृश्यापृश्यकी चर्चा लोग करते हैं पर जैनधर्म कब कहता है कि तुम अस्पृश्योंको नीच समझो। तुम्हीं लोग तो अस्पृश्योंको जूंठन खिलाते हो और यहाँ बड़ी-बड़ी बातें बनाते हो। नियम करो कि हम

अस्पृश्योंको अपने जैसा भोजन देंगे फिर देखो अपने प्रति उनका हृदय कितना पवित्र और ईमानदार रहता है। हृदयपर हृदयका असर पड़ता है। आप धोबीका धुला कपड़ा उठानेमें दोष समझते हैं पर शरीरपर चर्बीसे सने कपड़े बड़े शौकसे धारण करते हैं। क्या यही जैनधर्म है ? जैनधर्म पवित्रताका विरोधी नहीं पर घृणाको वह कषाय अतएव हेय समझता है। क्या कहें लोग बाह्य आचारमें तो बालकी खाल निकालते हैं पर अन्तरङ्गको शुद्ध करनेकी ओर ध्यान नहीं देते। पर मेरे मनमें जो बात थी वह व्यक्त कर दी। मैं तो इस पक्षका हूँ कि प्राणीमात्रको धर्मसाधनका अधिकार है, पञ्च पाप त्यागनेका अधिकार प्रत्येक मनुष्यको है, क्योंकि जब उसकी आत्मा बुद्धिपूर्वक पाप करती है तब उसे छोड़ भी सकती है।' दिल्लीमें हरिजनविषयक चर्चा हमारे अन्तरङ्गकी परीक्षा रही। जयन्तीका उत्सव समाप्त हुआ, लोग अपने-अपने घर गये।

असौज सुदी ८ का दिन था। दरियागंजमें शान्तिसे स्वाध्याय कर रहा था कि एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने सुनाया कि—आचार्य शान्तिसागरजीने कहा है कि यदि वर्णीका मत हरिजनके विषयमें हमारे मन्तव्यानुकूल नहीं तब वे इसमें मौन धारण करें, यदि कुछ बोलेंगे तब उनके हकमें अच्छा न होगा अर्थात् उनको जैन दिगम्बर मतानुयायी अपने सम्प्रदायबलसे पृथक् कर देवेंगे' इसका तात्पर्य यह है कि दिगम्बर जैन उन्हें आदरकी दृष्टिसे न देखेंगे। मैंने यह विचार किया कि मनुष्योंकी दृष्टिसे कुछ कल्याण तो होता नहीं और न मनुष्योंकी दृष्टिमें आदर पानेके लिये मैंने वीतराग जिनेन्द्रका धर्म स्वीकार किया है। धर्म आत्माकी परिणति है, उसे कोई रोक नहीं सकता। एक दो नहीं सब मिलकर भी मेरी वीतराग धर्मसे श्रद्धाको दूर नहीं कर सकते। लोकैषणाकी मुझे अभिलाषा नहीं है। मैंने

विचार किया कि अच्छा हुआ एक अभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त हुए।

हम दिल्लीमें आनन्दसे ३ माह २४ दिन रहे, सर्व प्रकारकी सुविधा रही। यहाँपर जनतामें धर्म श्रवणका अच्छा उत्साह रहा। समय-समयपर अनेक वक्ताओंका यहाँ समागम होता रहता था। दिल्ली भारतकी राजधानी होनेसे व्याख्यान सभाओंमें मनुष्य संख्या पुष्कल रहती थी। कार्तिक सुदी २ को दिनके २ बजे दिल्लीसे प्रस्थान कर दिया। मार्गमें अत्यन्त भीड़ थी, लोगोंको विशेष अनुराग था। सहस्रों स्त्री पुरुषोंके अश्रुपात आगया। मोहकी महिमा अपरम्पार है। बहुतसे मानव तो बहुत ही दुःखी हुए। चार माहके संपर्कने मनुष्योंके मनको मोहयुक्त कर दिया। इसीलिये पृथक् होते समय उन्हें दुःखका अनुभव हुआ।

चाहत जो मन शान्ति सुख तजहु कल्पना जाल।
व्यर्थ भरम के भूत में क्यों होते बेहाल॥ १॥
यह जग की माया विकट जो न तजोगे मित्र।
तो चहुँगत के बीच में पावोगे दुख चित्र॥ २॥

४०

नगर-नगर में, डगर-डगर में

शहादरामें दिल्लीसे ५० नर नारी आ गये। वही रागका अलाप, कोई अन्य बात नहीं थी। बहुत मनुष्योंका कहना था कि आप दिल्ली लौट चलें, जो कहो सो कर देवें। पर हमको तो कुछ करवाना नहीं, भूलभुलैयामें फँसकर क्या करता? यहाँसे चलकर गाजियाबाद आये। यहाँपर एक वर्णी शिक्षा मन्दिरकी स्थापना हुई। यहाँसे बेगमाबाद, मुरादनगर, मोदीनगर होते

हुए मेरठ पहुँच गये। श्री लाला फिरोजीलालजी दिल्लीसे आये। बहुत उदार और योग्य हैं। आपका धर्मप्रेम सराहनीय है। यहाँसे तोपखाना, छोटेमुहाना होकर दूसरे दिन प्रातःकाल श्री हस्तिनापुर आगया। गुरुकुलका नवीन भवन बनकर तैयार था अतः मगसिर बदी २ को ९ बजे उसका उद्घाटन हुआ। मगसिर बदी ३ को गणेशपुर आ गये।

इटावा की ओर

यहाँसे मवाना, छोटे मुहाना, तोपखाना, फफूँदा, खरखोंदा, कौनी, हापुड़, गुलावटी, बुलन्दशहर, मामन, मरिपुर, नगली, मवाना, भरतरी, अलीगढ़, पहाड़ी, अकराबाद, गोपीबाजार, सिकन्दराराऊ, रतवानपुर, भदरवास, पिलुआ, एटा, छिछैना, मलावन, टटऊ, कुरावली, मैनपुरी, अंडसी, करहल होते हुए पौष सुदी ५ को जसवन्तनगर आगये। यहाँपर जनताने मनःप्रसार कर स्वागत किया। बाहरसे भी बहुतसे मनुष्य आये थे। पौष सुदी ६ को बड़े वेगसे ज्वर आगया, ८ बजे तक बड़ी बेचैनी रही उसीमें नींद आगई। एक बार खुली अन्तमें कुछ शान्ति आई परन्तु पैरोंमें वातकी बहुत वेदना रही। दोनों पैर सूज गये। पैरोंकी वेदनाका बहुत वेग बढ़ गया परन्तु असन्तोष कभी नहीं आया। ज्वर भी यदा कदा आ ही जाता था। इसलिए लोग पाटे पर बैठाकर इटावा ले आये।

इटावा और उसके अञ्चलमें

यहाँ गाड़ीपुराकी धर्मशालामें ठहरे। स्थान अच्छा है। मंदिर भी इसीमें है। आठ दस दिन बड़ी व्यग्रतामें बीते। दस दिन बाद जिनेन्द्र के दर्शन किये। स्वर्गीय ज्ञानचन्द्रजी गोलालारेकी धर्मपत्नी धनवन्ती देवीने ७५०००) पचहत्तर हजार रुपया जैन पाठशाला

के अर्थ प्रदान किया। माघ शुक्ल ५ सोमवार दिनांक २३ जनवरी १९५० को उसका मुहूर्त्त था, उद्घाटन मेरे हाथोंसे हुआ। पाठशालाका नाम श्री ज्ञानधन जैन संस्कृत पाठशाला रक्खा गया।

२६ जनवरीका दिन आ गया। आजसे भारतमें नवीन विधान लागू होगा अतः सर्वत्र उत्साहका वातावरण था। श्रीयुत महाशय डा० राजेन्द्रप्रसादजी विहारनिवासी इसके सभापति होंगे। आप आस्थामय उत्तम पुरुष हैं। भारतको स्वतन्त्रता मिली परन्तु इसकी रक्षा निर्मल चरित्र से होगी। यदि हमारे अधिकारी महानुभाव अपरिग्रहवादको अपनावें तथा अपने आपको स्वार्थकी गन्धसे अदूषित रक्खें तो सरल रीतिसे स्वपरका भला कर सकते हैं। यहाँ नीलकण्ठ नामक स्थान है जिसके कूपका जल अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। यहाँ रहते हुए मैंने उसीका जल पिया। एकान्त शान्त स्थान है। अधिकांश मैं दिनका समय यहीं व्यतीत करता था। फाल्गुन मास लग गया और ऋतु में परिवर्त्तन दिखने लगा। भिण्डसे बहुतसे मनुष्य आये और उन्होंने भिन्ड चलनेका आग्रह किया, अतः फागुन कृष्ण ५ को डेढ़ बजे प्रस्थान किया।

उदी, बरही, फूफ़, दीनपुरा होते हुए भिण्ड पहुँच गये। मध्याह्न दो बजेसे नसियामें सभा हुई जन संख्या अच्छी थी। यहाँ कभी गोलसिंघारोंके मन्दिरमें और कभी चैत्यालयमें प्रवचन होता था जनता अच्छी आती थी। नौ-दस दिन यहाँ रहनेके बाद इटावाकी नशियाँमें आ गये, इटावाके अञ्चलमें भ्रमण कर यही अनुभव किया कि सभी मनुष्योंके धर्मकी आकांक्षा रहती है तथा सबको अपना उत्कर्ष भी इष्ट है परन्तु मोहके नशामें अन्धे कैसी दशा हो रही है यही अकल्याणका मूल

है। मोह एक ऐसी मदिरा है जिसके नशामें यह जीव स्वको भूल परको अपना मानने लगता है। चैत्र कृष्ण ३ संवत् २००६ को प्रातःकाल यहाँ उदासीनाश्रमकी स्थापना हो गई।

हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन

जबसे हरिजन मन्दिर प्रवेशकी चर्चा चली कुछ लोगोंने अपने स्वभाव या पक्ष विशेषकी प्रेरणासे हरिजन मन्दिर प्रवेश के विधि निषेध साधक आन्दोलनोंको उचित-अनुचित प्रोत्साहन दिया। कुछ लोगोंको जिन्हें आगमके अनुकूल किन्तु अपनी धारणाके प्रतिकूल विचार सुनाई दिये उन्होंने मेरे प्रति जो कुछ मनमें आया ऊटपटांग कह डाला। इससे मुझे जरा भी रोष नहीं हुँआ। एक महाशयने तो जैनमित्रमें यहाँ तक लिख दिया कि तुम्हारा क्षुल्लक पद छीन लिया जावेगा, मानों धर्मकी सत्ता आपके हाथोंमें आगई हो।यह 'संजद' पद नहीं जो हटा दिया। मेरा हृदय यह साक्षी देता है कि मनुष्य पर्यायवाला चाहे वह किसी जातिका हो कल्याणमार्गका पात्र हो सकता है। शूद्र भी सदाचारका पात्र है।

मुझे धमकी दी कि पीछी कमण्डलु छीन लेवेंगे, छीन लो,सब अनुयायी मिल जाओ,चर्या बन्दकर दो परन्तु जो हमारी श्रद्धा धर्म में है क्या उसे भी छीन लोगे? मेरा हृदय किसीकी बन्दर घुड़कीसे नहीं डरता। मेरे हृदयमें दृढ़ विश्वास है कि अस्पृश्य शूद्र सम्यग्दर्शन और व्रतोंका पात्र है। अस्पृश्य शूद्रादिके मन्दिर आनेसे मन्दिरमें अनेक प्रकारके विघ्न नहीं लाभ ही होगा। जो हिंसादि पाप संसारमें होते हैं यदि वह अस्पृश्य शूद्र, जैन धर्मको अङ्गीकार करेंगे तो वह महापाप अनायास कम हो जावेंगे।

पाप त्यागकी महिमा है, उत्तम कुलमें जन्म लेनेसे उत्तम हो गये यह दुराग्रह छोड़ो। उत्तम कुलकी महिमा सदाचारसे है दुराचारसे नहीं। नीच कुलीन मलिनाचारसे कलंकित हैं, इन पापोंसे यदि वे परे हो जावें तब भी आप क्या उन्हें अस्पृश्य मानेंगे ? वे यदि किसी आचार्य महाराजके सांनिध्यको पाकर पापोंका त्याग कर देवें तो क्या वे साधु नहीं हो सकते ? अतः सर्वथा किसीका निषेधकर अधर्मके भागी मत बनो। हम तो सरल मनुष्य हैं जो आपकी इच्छा हो सो कह दो आप लोग ही जैनधर्मके ज्ञाता और आचरण करनेवाले रहो परन्तु ऐसा अभिमान मत करो कि हमारे सिवाय अन्य कोई कुछ नहीं जानता।

पीछी कमण्डलु छीन लेवेंगे यह आचार्य महाराजकी आज्ञा है सो पीछी कमण्डलु तो बाह्य चिह्न हैं इनके कार्य तो कोमल वस्त्र तथा अन्य पात्रसे हो सकते हैं। पुस्तक छीननेका आदेश नहीं दिया इससे प्रतीत होता है कि पुस्तक ज्ञानका उपकरण है वह आत्माकी उन्नतिमें सहायक है उसपर आपका अधिकार नहीं जैन दर्शनकी महिमा तो वही आत्मा जानता है जो अपनी आत्माको कषायभावोंसे रक्षित रखता है। अस्तु, हरिजन विषयक यह अन्तिम वक्तव्य देकर मैं इस ओरसे तटस्थ हो गया।

वैशाख शुदी ३ अक्षय तृतीयाका दिन था, मैंने कहा कि आजका दिन महान् पवित्र और उदारताका दिन है। आज श्री आदिनाथ तीर्थंकरको श्रेयान्स राजाने इक्षुरसका आहार दिया था। आज बङ्गाल तथा पञ्जाब आदिके जो मनुष्य गृहविहीन होकर दुःखी हो रहे हैं उन्हें सहायता पहुँचावें। जिनके पास पुष्कल भूमि है उसमें गृहविहीन मनुष्योंको बसावें तथा कृषि करनेको देवें, जिनके पास मर्यादासे अधिक वस्त्रादि हैं वे

दूसरोंको देवें। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि आप जो भोजन ग्रहण करते हैं उसमेंसे भी कुछ अंश निकालकर शरणागत लोगोंकी रक्षामें लगा दो।

विद्वत्परिषद् का साहस

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद्की कार्य-कारिणी समिति बुलानेका भी विचार स्थिर हुआ। सर्व सम्मति से इसके लिए ज्येष्ठ शुक्ल ५ सं० २००७ का दिन निश्चय किया गया। विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीकी बैठक हुई। धवल सिद्धांत के ९३ वें सूत्रमें 'संजद पद आवश्यक है' इस विषयको लेकर निम्न प्रकार प्रस्ताव पास हुआ—

'फाल्गुन शुक्ला ३ वीर निर्वाण सं० २४७६ को गजपन्थामें आचार्य श्री १०८ शांतिसागरजी महाराज द्वारा की गई जीवस्थान सत्प्ररूपणाके ९३ वें सूत्रसे ताड़पत्रीय मूल प्रतिमें उपलब्ध 'संजद' पदके निष्कासनकी घोषणापर विचार करनेके बाद भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्की यह कार्यकारिणी जून सन् ४७ में सागर में आयोजित विद्वत्सम्मेलनके अपने निर्णयको दुहराती है तथा इस प्रकारसे ताम्रपत्रीय एवं मुद्रित प्रतियोंमें 'संजद' पद निष्का-सनकी पद्धतिसे अपनी असहमति प्रकट करती है।' बैठक समाप्त होनेपर विद्वान् लोग अपने अपने स्थानपर चले गये।

सच्ची स्वतन्त्रता

श्रावण शुक्ला २ सं० २००७ को १५ अगस्तका उत्सव नगर में था। 'सदियोंके बाद भारतवर्ष आजके दिन बन्धनसे मुक्त हुआ है' इसलिए प्रत्येक भारतवासीके हृदयमें प्रसन्नताका अनु-भव होना स्वाभाविक है। आजके दिन भारतको स्वराज्य मिला,

ऐसा लोग कहते हैं पर परमार्थसे स्वराज्य कहाँ मिला ? जब आत्मा परपदार्थके आलम्बनसे मुक्त हो ;आत्माश्रित हो जावे तब स्वराज्य मिला ऐसा समझना चाहिये । खेद इस बातका है कि इस स्वराज्यकी ओर किसीकी दृष्टि नहीं जा रही है ।

पर्यूषण पर्व

धीरे-धीरे पर्यूषण पर्व आ गया । पर्यूषण सालमें तीन बार आता है—भाद्रपद, माघ और चैत्रमें, परन्तु भाद्रपदके पर्यूषणका प्रचार अधिक है । पर्वके समय प्रत्येक मनुष्य अपने अभिप्राय को निर्मल बनानेका प्रयास करते हैं और यथार्थमें पूछा जाय तो अभिप्रायकी निर्मलता ही धर्म है । पर्वके बाद आश्विन कृष्ण प्रतिपदा क्षमावणीका दिन था परन्तु जैसा उसका स्वरूप है वैसा हुआ नहीं । केवल ऊपरी भावसे क्षमा माँगते हैं । एक दूसरेके गले लगते हैं । इससे क्या होनेवाला है ?

आश्विन कृष्ण ४ को मेरे जन्मदिनका उत्सव था, सबने प्रशंसामें चार शब्द कहे और हमने नीची गरदनकर उन्हें सुना । पर्यूषणपर्व सम्बन्धी चहल-पहल भी जयन्ती उत्सवके साथ समाप्त हुई । चतुर्मासकी समाप्तिके बाद मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमीको इटावा से भिण्डके लिए प्रस्थान किया । जाते समय लोगोंको बहुत दुःख हुआ ।

•

४१

फिरोजाबादमें विविध समारोह

अनेक ग्रामोंमें होते हुए माघ शुक्ल ४ सं० २००७ को फिरोजाबाद पहुँच गये । यहाँपर श्री आचार्य सूर्यसागरजी

महाराजका दर्शन हुआ। आप बहुत ही शान्त तथा उपदेष्टा हैं। आपके प्रवचनसे हमको पूर्ण शान्ति हुई। श्री छदामीलालजीने फिरोजाबादमें बहुत भारी उत्सवका आयोजन किया था। इस प्रान्तका यह वर्तमान कालीन उत्सव सबसे निराला था। क्या त्यागी, क्या व्रती, क्या विद्वान्, क्या सेठ, क्या राजनीतिमें काम करनेवाले—सबलोगोंके लिए मेलामें एकत्रित करनेका प्रयास किया था। मेलाका बहुत अधिक विस्तार था। उत्सवका उद्‌घाटन उत्तरप्रदेशके तात्कालिक मुख्यमन्त्री श्री पन्तजीने किया था। श्री आचार्य सूर्यसागरजी तथा हमलोगों का नगर प्रवेशका उत्सव माघ शुक्ल ५ सं २००७ को सम्पन्न हुआ था। बहुत अधिक भीड़ तथा जुलूसकी सजावट थी। माघ शुक्ला ११ को मध्याह्न के बाद १ बजेसे श्री महाराजकी अध्यक्षतामें व्रती सम्मेलनका उत्सव हुआ। जिसमें अनेक विवादग्रस्त विषयों पर चर्चा हुई।

चरणानुयोगके विरुद्ध प्रवृत्ति करनेवाले व्रतियोंको महाराजने शान्तभावसे उपदेश दिया कि जैनागममें व्रत न लेनेको अपराध नहीं माना है किंतु लेकर उसमें दोष लगाना या उसे भङ्ग करना अपराध बताया है अतः ग्रहण किये हुए व्रतको प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। मनुष्य पर्यायका सबसे प्रमुख कार्य चरित्र धारण करना ही है इसलिए यह दुर्लभ पर्याय पाकर अवश्य ही चरित्र धारण करना चाहिये। कितने ही त्यागीलोग तीर्थयात्रादिके बहाने गृहस्थोंसे पैसेकी याचना करते हैं यह मार्ग अच्छा नहीं है। यदि याचना ही करनी थी तो त्यागका आडम्बर ही क्यों किया? त्यागका आडम्बर करनेके बाद भी यदि अन्तःकरणमें नहीं आया तो यह आत्मवञ्चना कहलावेगी।

त्यागीको किसी संस्थावादमें नहीं पड़ना चाहिये। यह कार्य गृहस्थोंका है। त्यागी होनेपर भी वह बना रहा तो क्या किया?

त्यागीको ज्ञानका अभ्यास अच्छा करना चाहिये। आज कितने ही त्यागी ऐसे हैं जो सम्यग्दर्शनका लक्षण नहीं जानते, आठ मूल गुणोंके नाम नहीं गिना पाते। ऐसे त्यागी अपने जीवनका समय किस प्रकार यापन करते हैं वे जानें। मेरी तो प्रेरणा है कि त्यागीको क्रम पूर्वक अध्ययन करनेका अभ्यास करना चाहिये। समाजमें त्यागियोंकी कमी नहीं परन्तु जिन्हें आगमका अभ्यास है ऐसे त्यागी कितने हैं? अतः मुनि हो चाहे श्रावक, सबको अभ्यास करना चाहिए। आजका व्रतीवर्ग चाहे मुनि हो चाहे श्रावक; स्वच्छन्द होकर विचरना चाहता है यह उचित नहीं है। गुरुके साथ अथवा अन्य साथियोंके साथ विहार करनेमें इस बातकी लज्जा या भयका अस्तित्व रहता था कि यदि हमारी प्रवृत्ति आगमके विरुद्ध होगी तो लोग हमें बुरा कहेंगे, गुरु प्रायश्चित्त देंगे पर एकाविहारी होनेपर किसका भय रहा? जनता भोली है इसलिए कुछ कहती नहीं, यदि कहती है तो उसे धर्मनिन्दक आदि कहकर चुप कर दिया जाता है। इस तरह धीरे-धीरे शिथिलाचार फैलता जा रहा है। किसी मुनिको दक्षिण और उत्तरका विकल्प सता रहा है तो किसीको वीसपंथ और तेरहपंथका। किसीको दस्सा बहिष्कारकी धुन है तो कोई शूद्र जल त्यागके पीछे पड़ा है। कोई स्त्री प्रक्षालके पक्षमें मस्त है तो कोई जनेऊ पहिराने और कटिमें धागा बँधवानेमें व्यग्र है। कोई ग्रन्थमालाओंके संचालक बने हुए हैं तो कोई ग्रन्थ छपानेकी चिन्तामें गृहस्थोंके घरसे चन्दा माँगते फिरते हैं। किन्हींके साथ मोटरें चलती हैं तो किन्हींके साथ गृहस्थ जन को भी दुर्लभ कीमती चटाइयां और आसनके पाटे तथा छोलदारियां चलती हैं। त्यागी ब्रह्मचारी लोग अपने लिए आश्रय या उनकी सेवामें लीन रहते हैं। 'बहती गङ्गामें हाथ धोनेसे क्यों चूकें' इस भावनासे कितने ही विद्वान् उनके अनुयायी बन आंख मीच चुप बैठ जाते

हैं जहां प्रकाश है वहां अन्धकार नहीं और जहाँ अन्धकार है वहाँ प्रकाश नहीं। इसी प्रकार जहाँ चारित्र है वहाँ कषाय नहीं और जहाँ कषाय है वहां चारित्र नहीं। पर तुलना करनेपर किन्हीं-किन्हीं व्रतियोंकी कषाय तो गृहस्थोंसे कहीं अधिक निकलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस उद्देश्यसे चारित्र ग्रहण किया है उस ओर दृष्टिपात करो और अपनी प्रवृत्तिको निर्मल बनाओ। उत्सूत्र प्रवृत्तिसे व्रतकी शोभा नहीं।

महाराजकी उक्त देशनाका हमारे हृदयपर बहुत प्रभाव पड़ा। इसके बाद दूसरे दिन श्री भैया साहब राजकुमारसिंह इन्दौर-वालों की अध्यक्षतामें जैनसंघ मथुराका वार्षिक अधिवेशन हुआ। दूसरे दिन फिर खुला अधिवेशन हुआ। अनेक प्रस्ताव पास हुए। इसके बाद एक दिन श्री काका कालेलकरकी अध्यक्षतामें हीरक जयन्ती समारोह तथा अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पणका समा-रोह हुआ। विद्वानोंके बाद श्री कालेलकरने हमारे हाथमें ग्रन्थ समर्पण कर अपना भाषण दिया। उन्होंने जैनधर्मकी बहुत प्रशंसा की। साथ ही हरिजन समस्या पर बोलते हुए कहा कि यह स्प-र्शका रोग नहीं जैनधर्मका नहीं हिन्दू धर्मसे आया है। यदि जैनियोंकी ऐसी ही प्रवृत्ति रही तो मुझे कहना पड़ेगा कि आप लोग नामसे नहीं किन्तु परिणामसे हिन्दू बन जावेंगे। जैनधर्म अत्यन्त विशाल है। उसकी विशालता यह है कि उसमें चारों गतियोंमें जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्राणी हैं वे अनन्त संसारके दुखोंको हरने-वाला सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। धर्म किसी जातिविशेषका नहीं। धर्म तो अधर्मके अभावमें होता है। अधर्म आत्माकी विकृत अवस्थाको कहते हैं। जब तक धर्मका विकास नहीं तब तक सभी आत्माएँ अधर्म रूप रहतीं हैं। चाहे ब्राह्मण हो, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र हो, शूद्रमें भी चाहे चाण्डाल हो, चाहे भंगी हो, सम्यग्दर्शनके होते ही यह जीव किसी जातिका हो पुण्यात्मा

जीव कहलाता है अतः किसीको हीन मानना सर्वथा अनुचित है। समारोह समाप्त होनेके बाद आप संध्याकाल हमारे निवास स्थानपर भी आये। मांसाहार आदि विषयोंपर चर्चा होती रही। उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। प्रस्थानके पूर्व श्री आचार्य महाराज के पास गया तो उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा कि तेरा अवश्य कल्याण होगा, तू भोला है तुझसे प्रत्येक मनुष्य अनुचित लाभ उठाना चाहता है। तेरी अवस्था वृद्ध है अतः अब एक स्थानपर रहकर धर्म साधन कर इसीमें तेरा कल्याण है, धर्म निःस्पृहतामें है।

•

४२

पुनः बुन्देलखण्डमें

फीरोजाबादसे चलकर शिकोहाबाद में ठहर गये। यहां पर मन्दिर बहुत सुन्दर और स्वच्छ है। फाल्गुन कृष्णा ५ को बटेश्वर से बाह आगये तथा मन्दिरकी धर्मशालामें ठहर गये। थकानके कारण ज्वर हो गया। अब शारीरिक शक्ति दुर्बल हो गई, केवल कषायसे भ्रमण करते हैं। सागरमऊ, नदगुवां, होकर अटेर आ गये। सायंकाल ४ बजे सार्वजनिक सभा हुई, जैन अजैन सभी आये। सबने यह स्वीकार किया कि शिक्षाके विना उपदेशका कोई असर नहीं होता अतः सर्वप्रथम हमें अपने बालकोंको शिक्षा देना चाहिए। शिक्षाके बिना हम अविवेकी रहते हैं, चाहे जो हमें ठग ले जाता है, हमारा चारित्रनिर्माण नहीं हो पाता है।

यहांसे परतापपुर होकर पुरा आये। सबने अष्टमी चतुर्दशी-

को ब्रह्मचर्यका नियम लिया। कई ब्राह्मणोंने भी रविवार, तथा एकादशीको ब्रह्मचर्य रखनेका प्रण किया। यहांसे लावन, छैंकुरी, मौ, बरासो होते हुए असौना आये। ग्रामीण जन बहुत ही सरल व उदार होते हैं। इनमें पापाचारका प्रवेश नहीं होता। ये विषयोंके लोलुपी भी नहीं होते। इसके अनुकूल कारण भी ग्रामवासियों को उपलब्ध नहीं होते अतः उनके संस्कार अन्यथा नहीं होते। मगरौल, सौड़ा, वस्मी, नहला, रामपुरा, सेंतरी, इन्द्रगढ़, भड़ौल, कैती तथा जुजारपुर ठहरते हुए चैत्र कृष्ण १ को सोनागिर आ गये। जनता बहुत एकत्रित थी। चैत्र कृष्ण २ को श्री १०८ विमलसागरजी आये। आप बहुत ही उत्तम विचारके हैं। क्षेत्रकी सानन्द वन्दना की। यह क्षेत्र अत्यन्त रम्य और वैराग्यका उत्पादक है। श्री चन्द्रप्रभुके मन्दिरके सामने सङ्गमसर के फर्शसे जड़ा हुआ एक बहुत बड़ा रमणीक चबूतरा है। सामने सुन्दर मानस्तम्भ है। यहाँसे दृष्टिपात करनेपर पर्वतकी अन्य काली-काली चट्टानें बहुत भली मालूम होती हैं। प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व जब लाल-लाल प्रभा सङ्गमर्मरके श्वेत फर्शपर पड़ती है तब बहुत सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर होता है। सोनागिरि में आठ दिन रहा। चैत्र कृष्णा ९ संवत् २००७ को १ बजे श्री सिद्धक्षेत्र स्वर्णगिरिसे दतियाके लिए प्रस्थान कर दिया। शरीर की शक्ति हीन थी किन्तु अन्तरङ्गकी बलवत्तासे यह शरीर इसके साथ चला आया। तत्त्वदृष्टिसे वृद्धावस्था भ्रमणके योग्य नहीं। दौलतरामजीने कहा है 'अर्धमृतक सम बूढ़ापनो कैसे रूप लखे आपनो' पर विचार कर देखा तो वृद्धावस्था कल्याण मार्गमें पूर्ण सहायक है। युवावस्थामें प्रत्येक आदमी बाधक होता हैं। कहता है-भाई! अभी कुछ दिन तक संसारके कार्य करो पश्चात् वीतरागका मार्ग ग्रहण करना। इन्द्रियाँ विषय ग्रहणकी ओर ले जाती हैं, मन निरन्तर अनाप सनाप संकल्प विकल्पके चक्रमें

फँसा रहता है। जब अवस्था वृद्ध हो जाती है तब चित्त स्वयमेव विषयोंसे विरक्त हो जाता है।

तीसरे दिन प्रातः साढ़े ६ बजे चलकर ८ बजे झांसी आ गये। श्री जिनालयमें जिनदेवके दर्शन कर चित्तमें शान्ति रसका आस्वादन किया। मूर्ति बहुत ही सुन्दर और योग्य संस्थान विशिष्ट थी। तदनन्तर प्रवचन हुआ जनताने शान्त चित्तसे श्रवण किया। अपनी-अपनी योग्यतानुसार सबने लाभ उठाया। यहीं पर श्री फिरोजलालजी दिल्लीसे आ गये। आप बहुत ही सरल और सज्जन प्रकृतिके हैं। आपके कुटुम्बका बहुत ही उदार भाव है। आपकी धर्मपत्नी तो साक्षात् देवी हैं। आपके यहाँ जो पहुँच जाता उसका बहुत ही आतिथ्य सत्कार करते हैं। चैत्र शुक्ल १ विक्रम सं० २००८ को ५ बजे बरुआसागर आ गये। श्री बाबू रामस्वरूप जी द्वारा निर्मापित गणेश वाटिका नामक स्थानपर निवास किया। दूसरे दिन नगरमें आहारके लिये गये। श्री जैन मन्दिर की वन्दना की, अनन्तर आहारको निकले। हृदयमें अनायास कल्पना आई कि आज स्व० पं० देवकीनन्दन जीके घर आहार होना चाहिये। उनके गृहपर कपाट बन्द थे, वहांसे अन्यत्र गये, वहां पर कोई न था, उसके बाद तीसरे घर गये तब वहां स्वर्गीय पण्डितजी की धर्मपत्नी द्वारा आहार दिया गया। इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध परिणाममें जो कल्पना की जाती है उसकी सिद्धि अनायास हो जाती है।

चैत्र शुक्ला १० को यहांकी पाठशालाके छात्रोंके यहां भोजन हुआ। बड़े भाव से भोजन कराया। भोजन क्या था ? अमृत था। उसका मूल कारण उन छात्रोंका भाव था। चैत्र शुक्ला १३ को भगवान् महावीर स्वामीके जन्म दिवसका उत्सव था, मैंने तो केवल यह कहा कि हमने आत्मा को पहिचानकर विकारोंपर विजय

प्राप्त कर ली तो हमारा महावीर जयन्तीका उत्सव मानना सार्थक है। श्री 'नीरज' आये। आप श्री लक्ष्मणप्रसादजी रीठीके सुपुत्र हैं। आपके पिताका स्वर्गवास होगया। आपके अच्छा व्यापार होता था परन्तु उन्होंने व्यापार त्याग दिया था। अब आप प्रेसका काम करते हैं। कवि हैं। हँसमुख हैं, होनहार व्यक्ति हैं। मुझसे मिलनेके लिए आये थे। चि० श्री नरेन्द्रकुमार 'विद्यार्थी' आया था। यह स्वाभिमानी है, जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धा है, उद्योगी है, परोपकारी भी है, लालची नहीं, किसीसे कुछ चाहता नहीं, प्रत्येक मनुष्यसे मेल कर लेता है। अभी आयु विशेष नहीं अतः स्वभावमें बालकता है। ऐसा बोध होता है कि काल पाकर यह बालक विशेष कार्य करेगा। आजकल विज्ञानका युग है। इसमें जो पुरुषार्थ करेगा वह उन्नति करेगा।

श्रुतपञ्चमी

ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको श्रुतपंचमीका उत्सव था। मैंने कहा कि आजका पर्व हमको यह शिक्षा देता है कि यदि कल्याण की इच्छा है तो ज्ञानार्जन करो। ज्ञानार्जनके विना मनुष्य जन्म की सार्थकता नहीं। आजकल बड़े-बड़े विद्वान् यह उपदेश देते हैं कि स्वाध्याय करो। यही आत्मकल्याणका मार्ग है। धर्म जाननेका उपदेश देंगे, अपने बालकोंको एम. ए. बनाया होगा परन्तु धर्मशिक्षाका मिडिल भी न कराया होगा। अन्यको मद्य, मांस, मधुके त्यागका उपदेश देते हैं पर आपसे कोई पूँछे— अष्ट मूल गुण क्या हैं? हँस देवेंगे।

त्यागीवर्गको यह उचित है जहाँ जावें वहाँपर यदि विद्यालय होवे तो ज्ञानार्जन करें, केवल हल्दी धनिया जीरेके त्यागमें ही अपना समय न बितावें। श्रुतपंचमीके दिन हम लोग शास्त्रोंकी सम्भाल करते हैं पर झाड़ पोंछकर या धूप दिखाकर

अलमारीमें रख देना ही उनकी सम्भाल नहीं हैं। शास्त्रके तत्त्व को अध्ययन अध्यापनके द्वारा संसारके सामने लाना यही शास्त्रोंकी संभाल है। आज जैनमन्दिरोंमें लाखोंकी सम्पत्ति रुकी पड़ी है, जिसका यदि उपयोग होता भी है तो सङ्गमर्मरके फर्श लगवाने तथा सोने चांदी के उपकरण आदि में होता है पर वीतराग जिनेन्द्रकी वाणीके प्रचार हेतु उसका उपयोग करनेमें मन्दिरोंके अधिकारी सकुचाते हैं, यदि एक-एक मन्दिर एक-एक ग्रन्थ प्रकाशनका भार उठा ले तो समस्त उपलब्ध शास्त्र एक वर्षमें प्रकाशित हो जावें। एक-एक महिलाकी पेटियोंमें बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस साड़ियां निकलेंगी पर शास्त्रके नामपर दो रुपयेका शास्त्र भी उसकी पेटीमें नहीं होगा। अच्छे-अच्छे लखपतियोंके घर दस बीस रुपयेके भी शास्त्र नहीं निकलते। क्या बात है ? इस ओर रुचि नहीं। यदि रुचि हो जाय तो शास्त्र सामने आ जावें। जब कभी जल वृष्टि होनेसे ग्रीष्मकी भयंकरता कम हो गई इस लिये बरुआसागरसे प्रस्थान करने का निश्चय किया। आषाढ़ कृष्ण १० सं० २००८ के दिन मध्यान्हकी सामायिकके बाद ज्यों ही प्रस्थान करनेको उद्यत हुआ कि बहुतसे स्त्री पुरुष आगये। सबकी इच्छा थी कि यहां पर चातुर्मास हो पर मैं एक बार ललितपुरका निश्चय कर चुका था इसलिये मैंने रुकना उचित नहीं समझा। लोगोंके अश्रुपात होने लगा। तब मैंने कहा—क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय ही आत्माके सबसे प्रबल शत्रु हैं। इनसे पिण्ड छुड़ानेका प्रयत्न करो। हमें यहाँ रोककर क्या करोगे। ३ माह रोकनेसे तो यह दशा हो गई कि नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा अब चार माह और रोकोगे तो क्या होगा। स्नेह दुःखका कारण है अतः उसे दूर करनेका प्रयास करो। इतना कह कर हम चल पड़े। लोग बहुत दूर तक भेजने आये। आज बरुवासागरसे चल कर नदी पर विश्राम किया।

●

४३

झांसीके अंचलमें

सूर्यकी सायंकालीन सुनहली किरणोंसे अनुरञ्जित हरी भरी झाड़ियोंसे सुशोभित वेत्रवतीका तट बड़ा रम्य मालूम होता था। सन्ध्याकालीन सामायिकके बाद रात्रिको यहीं विश्राम किया, दूसरे दिन प्रातः ८ बजे बाद नौका चली ९ के बाद नदीके उस पार पहुँच सके। मल्लाह बड़े परिश्रमसे कार्य करते हैं मिलता भी उन्हें अच्छा है परन्तु मद्यपानमें सब साफ कर देते हैं। कितने ही मल्लाह तो दो दो रुपये की मदिरा पी जाते हैं अतः इनके पास द्रव्यका संचय नहीं हो पाता। यद्यपि राष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री आदि इनकी उन्नतिमें प्रयत्नशील हैं परन्तु इनका वास्तविक उद्धार कैसे हो इस पर दृष्टि नहीं। जो लोग वर्तमानमें श्रेष्ठ हैं उनसे कहते हैं कि इनके प्रति घृणा न करो परन्तु जब तक इन लोगों में मद्य माँसका प्रचार है तब तक न तो लोग इनके साथ समानताका व्यवहार करेंगे और न इनका उत्कर्ष होगा। देशके नेता केवल पत्रोंमें लेख न लिख कर या बड़े बड़े शहरोंमें भाषण न देकर इन गरीबों की टोलियोंमें आकर बैठें तथा इन्हें इनके हितका मार्ग दिखलावें तो ये सहज सुपथ पर आ सकते हैं। स्वभावके सरल हैं परन्तु अज्ञानके कारण अपना उत्कर्ष नहीं कर सकते।

राज्यकी ओरसे मद्यबिक्री रोकी जावे, गांजा चरस आदिका विरोध किया जावे। इनसे करोड़ों रुपयेकी आय सरकारको होती है परन्तु इनके सेवनसे होनेवाले रोगोंको दूर करनेके लिये अस्पतालोंमें भी करोड़ों रुपये व्यय करना पड़ते हैं। राज्य चाहे तो सब कर सकता है। आषाढ़ कृष्णा १२ सं० २००८ को झांसी

पहुँच गये, मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्य संख्या पर्याप्त थी। धर्मश्रवणकी इच्छा सबको रहती है—सब मनोयोग पूर्वक सुनते भी हैं परन्तु उपदेश कर्तव्य पथमें नहीं आता। इसका मूल कारण वक्तामें आभ्यन्तर आर्द्रता नहीं है।

त्रयोदशीको एक बजे झाँसीसे निकल कर ४ बजे बिजौली पहुँच गये। एक डेरीफार्म देखा, महिषी और गायोंकी स्वच्छता देख चित्त प्रसन्नतासे भर गया। आज भारतवर्ष अपनी पूर्व गुण-गरिमासे गिर गया है। जहाँ देखो वहीं पैसेकी पकड़ है, पश्चिमी सभ्यतासे केवल विषय पोषक कार्योंको भारत ने अपनाया है। जहाँ प्रथमावस्थामें मद्य मांस मधुका त्याग कराया जाता था वहाँ अब तीनों अमृतरूपमें माने जाने लगे हैं। अंग्रेजोंमें जो गुण थे उन्हें भारतने नहीं अपनाया। वह समयका दुरुपयोग नहीं करते थे, उन्होंने भारतवर्षकी महिलाओंके साथ सम्बन्ध नहीं किया। प्राचीन वस्तुओं को रक्षा की, विद्यासे प्रेम बढ़ाया, स्वच्छताको प्रधानता दी इत्यादि। मुसलमानोंमें भी बहुतसे गुण हैं। जैसे एक बादशाह भी अपनी जातिके अदना आदमीके साथ भोजनादि करनेमें संकोच नहीं करता। यदि किसी के पास १ रोटी हो और दस मुसलमान आ जावें तो वह एक एक टुकड़ा खाकर संतोष कर लेंगे। नमाजके समय कहीं भी हों वहीं पर नमाज पढ़ लेंगे,परस्परमें मैत्री भावना रक्खेंगे, एक दूसरेको अपनाना जानते हैं इत्यादि। परन्तु हमारे देशके लोग किसीसे गुण ग्रहण न कर अधिकांश उसके दोष ही ग्रहण करते हैं।

४४

ललितपुरमें

आषाढ़ शुक्ला १२ सं० २००८ को संध्या समय ललितपुरमें आकर चार माहके लिए भ्रमण सम्बन्धी खेदसे मुक्त हो गये।

क्षेत्रपालमें चतुर्मास

आषाढ़ शुक्ला १३ को ४ वजे शामको समारोहके साथ चलकर क्षेत्रपाल आगये। ५ वजे सब स्कूलोंके छात्र आये। उन्हें यहाँ वाले भाइयोंने लड्डू बाँटे। बालक प्रसन्न थे। १००० से ऊपर होंगे। यह अवसर सबके लिए मनोहर था—सबही प्रसन्न चित्त थे। यदि ऐसे उत्सव जिनमें निज और परका भेद न हो, होते रहें तो नागरिक जनताका पारस्परिक सौहार्द बना रहे।

क्षेत्रपाल ललितपुरका सर्वाधिक मनोरम स्थान है। एक अहातेके अन्दर भव्य मन्दिर हैं, श्री अभिनन्दन स्वामीकी मनोज्ञ प्रतिमाके दर्शन करनेसे चित्त आह्लादित हो उठता है। यह प्रतिमा यहाँ महोबासे लाई गई थी ऐसा सुना जाता है। मन्दिरों के साथ एक धर्मशाला तथा एक विशाल बाग भी संलग्न है। यहाँ पहले संस्कृत पाठशाला चलती थी जो अब टूट चुकी है। यह स्थान शहरसे १ मील स्टेशनके करीब है। प्रातःकाल प्रवचन में शहरसे १ मील दूर होनेपर भी अधिक संख्यामें जनता दौड़ी आती थी।

लोगोंके हृदयमें धर्मके प्रति श्रद्धा है परन्तु उन्होंने जो लीक पकड़ ली है या जिन कार्योंको उन्होंने धर्म मान रक्खा है उससे भिन्न कार्यमें वे अपना योग नहीं देना चाहते। देशमें लाखों

मनुष्य अन्नके कष्टसे पीड़ित होनेपर भी लोग विवाहादि कार्यों में लाखों रुपया बारूदकी तरह फूँक देनेमें संकोच न करेंगे। परन्तु अन्न-वस्त्र विहीनोंकी रक्षामें ध्यान न देवेंगे। देवदर्शनादि करनेमें समय नहीं मिलता ऐसा बहाना कर देवेंगे परन्तु सिनेमा आदि देखनेमें आँख भले ही खराब हो जावे इसकी परवाह न करेंगे।

इंटर कालेजका उपक्रम

ललितपुर बुन्देलखण्ड प्रान्तका केन्द्र स्थान है, जैनियोंकी अच्छी बस्ती है और व्यापारका अच्छा स्थान है। फिर भी यहाँ शिक्षाका आयतन न होना हृदयमें चोट करता रहता था। एक पाठशाला पहले क्षेत्रपालमें थी, जिससे प्रान्तके छात्रोंको लाभ होता था परन्तु अब वह बन्द हो चुकी है। इच्छा थी कि यहाँ पर ज्ञानका एक अच्छा आयतन स्थिर हो तो प्रान्तके बालकोंका बहुत कल्याण हो। आजकल लोगोंकी रुचि अंग्रेजी विद्याकी ओर अधिक है, अतः उसीके आयतन स्थापित करना चाहते हैं। मुझे इसमें हर्ष विषाद नहीं। भाषा उन्नतिका साधन है। यदि हृदयकी पवित्रताको न छोड़ा जाय तो किसी भाषासे मनुष्य अपनी उन्नति कर सकता है। मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि भादों तक एक हजार रुपये का चन्दा हो जावेगा और कालेज की स्थापना हो जावेगी। शान्तिसे पर्वके दिन व्यतीत हुए, पर्वके अनंतर जयन्ती उत्सवका आयोजन हुआ। अबतक कालेज खोलने का दृढ़ निश्चय हो गया था और उसकी इस उत्सवमें घोषणा कर दी गई। कालेजका नाम 'वर्णी इण्टर कालेज' रक्खा गया।

फोड़ा और मलेरिया मित्र का शुभागमन

कार्तिक कृष्णा ११ सं० २००८ को शारीरिक अवस्था यथो-

चित नहीं रही—एक फोड़ा उठनेके कारण कष्ट रहा। फिर भी स्वाध्याय किया, द्वादशीसे पीड़ा अधिक बढ़ गई अतः स्वाध्यायमें समर्थ नहीं हो सका। इसी फोड़ाके रहते हुए ५ वर्ष बाद हमारे अत्यन्त प्राचीन मलेरिया मित्रने दर्शन दिया। उसने कहा तुम हमको भूल गये। तुमने कितने वादे किये पर एकका भी पालन नहीं किया। उसीका यह फल है कि आज मैंने फिर तुम्हें दर्शन दिया। मलेरियाकी प्रबलता तथा फोड़ाकी तीव्र वेदनासे चित्तमें बहुत खिन्नता हुई। उपचारके लिए फोड़ापर मिट्टीकी पट्टी बाँधी पर उससे पीड़ामें रञ्चमात्र भी कमी नहीं हुई। हमारी वेदना देख सब लोग दुःखी थे।

टीकमगढ़से डाक्टर सिद्दीकी साहब आये। फोड़ा देखकर उन्होंने कहा कि फोड़ा खतरनाक है। बिना ऑपरेशनके अच्छा होना असंभव है और जल्दी ऑपरेशन न किया गया तो इसका विष शरीरमें अन्यत्र फैल जानेकी संभावना है। डाक्टरकी बात सुनकर सब चिन्तामें पड़ गये। सब लोगोंने ऑपरेशन करानेकी प्रेरणा की परन्तु मैंने दृढ़तासे कहा कि कुछ हो मांसभोजीसे मैं ऑपरेशन नहीं कराना चाहता। डाक्टरने मेरी बात सुनी तो उसने बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि मैं जीवनपर्यन्तके लिए मांसका त्याग करता हूँ। ऑपरेशनकी तैयारी हुई तो डाक्टर बोला कि ऑपरेशनमें समय लगेगा। बिना कुछ सुँघाये ऑपरेशन कैसे होगा ? मैंने कहा कि कितना समय लगेगा ? उसने कहा कि १५ मिनट। मैंने कहा—आप निश्चिन्ततासे ऑपरेशन कीजिये, सुँघानेकी चिन्ता न करें। यह कहकर मैं निश्चल पड़ रहा, १५ मिनटमें ऑपरेशन होगया, फोड़ाके भीतर जो विकृत पदार्थ था वह निकल गया इसलिए शान्तिका अनुभव हुआ।

फोड़ामें आराम तो ऑपरेशनके दिनसे ही होने लगा था परन्तु घावके भरनेमें एक मासके लगभग लग गया। मार्गशीर्ष

३० को ललितपुरसे जानेका निश्चय कर लिया। इसके एकदिन पूर्व चौधरीजीके मन्दिरमें प्रातःकाल जनताका सम्मेलन हुआ। जब ललितपुरसे प्रस्थान करनेका समय आया तब लोग बहुत दुःखी हुए। मैंने कहा—'मोहकी परिणति छोड़ो और शान्तिसे अपना समय यापन करो। कालेजका आपने जो उपक्रम किया है वह प्रशस्त कार्य है। यह आगे बढ़ता रहे ऐसा प्रयास करें। ज्ञान आत्माका धन है। आपके बालक उसे प्राप्त करते रहें यह भावना आपको होना चाहिये.....' इतना कहकर मैं आगे बढ़ गया। बहुत जनता भेजने आयी, जो क्रम-क्रमसे वापिस हो गई।

●

४५

बुन्देलखण्डकी तीर्थ-यात्रा

पपौरा

मार्गशीर्ष शुक्ला ५ सं० २००८ को पपौरा गये। समस्त जिनालयों की वन्दना की। मेलाका उत्सव था अतः बाहरसे जनता बहुत आई थी। यह क्षेत्र अति उत्तम है परन्तु यहाँके लोग उत्साहपूर्वक दान नहीं करते अन्यथा जहाँ ७५ गगनचुम्बी मन्दिर हैं वहाँ स्वर्गलोककी छटा दिखती। इस क्षेत्रकी उन्नति तब हो सकती है जब कोई दानी महाशय एक लक्ष १०००००) लगावे। आजकल नवीन मन्दिर निर्माणकी लोग इच्छा करते पर प्राचीन मन्दिरोंका उद्धार नहीं कराते। नवीन मन्दिर निर्माणमें उनका निर्माताके रूपमें गौरव होता है और प्राचीन मन्दिरोंके उद्धारमें नहीं। यही प्रतिष्ठाकी आकांक्षा लोगोंको इस कार्यकी ओर प्रवृत्त नहीं होने देती।

अहार

टीकमगढ़से पौष कृष्ण ६ को अहार क्षेत्र पहुँच गये। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है, श्रीशान्तिनाथ और कुन्थुनाथ भगवान् की मूर्ति है। अरहनाथ भगवान्की भी मूर्ति रही होगी पर वह उपद्रवियोंके द्वारा नष्ट कर दी गई। उसका स्थान रिक्त है। श्रीशान्तिनाथ भगवान्की मूर्ति बहुत ही सौम्य तथा शान्ति-दायिनी है। इसके दर्शन कर श्रवणबेलगोलाके बाहुबली स्वामी-का स्मरण हो आता है। यहाँ किसी समय अच्छी बस्ती रही होगी। प्राचीन मूर्तियाँ भी खण्डित दशामें बहुत उपलब्ध हैं। संग्रहालय बनवाकर उसमें सबका संग्रह किया गया है। मुख्य मन्दिरके सिवाय एक छोटा मन्दिर और भी है। पास ही मदन-सागर नामका विशाल तालाब है। एक पाठशाला भी है। यदि साधन अनुकूल हों तो यहाँ शान्तिसे धर्मसाधन किया जा सकता है।

वहाँसे चलकर धनगुवां आये। ग्राम साधारण है पर लोग उत्साही हैं। नरेन्द्रकुमार 'विद्यार्थी' साहित्याचार्य, एम० ए० जो निर्भीक वक्ता व लेखक हैं, यहीं के हैं। शास्त्रप्रवचन हुआ जिसमें ग्रामके सब लोग सम्मिलित हुये। देहातके लोगोंमें सौमनस्य अच्छा रहता है। यहाँसे चलकर श्री द्रोणगिरि क्षेत्र पर पहुँच गये। बहुत ही रमणीक व उज्ज्वल क्षेत्र है यहाँ पहुँचने पर न जाने क्यों अपने आप हृदयमें एक विशिष्ट प्रकारका आह्लाद उत्पन्न होने लगता है। ग्रामके मन्दिरमें श्री ऋषभनाथ भगवान्के दर्शन कर चित्तमें अत्यन्त हर्ष हुआ।

पौष शुक्ला ५ को श्री द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्रकी वन्दना की। यद्यपि शारीरिक शक्ति दुर्बल थी तो भी अन्तरङ्गके उत्साहने यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न करा दी। यात्राके बाद गुफाके आगे

प्राङ्गणमें शान्त चित्तसे बैठे। सामने गाँवका तथा युगल नदियोंका संगम दिख रहा था। दूर दूर तक फैली खेतोंकी हरियाली दृष्टिको बलात् अपनी ओर आकर्षित कररही थी। द्रोणगिरिमें पं० गोरेलालजी सज्जन व्यक्ति हैं।

रेशंदीगिरि

यहाँ पर्वतपर पार्श्वनाथ समवसरणके नामसे एक विशाल मन्दिरका निर्माण हो रहा है। श्री पार्श्वनाथ भगवान्की शुभ्रकाय विशाल मूर्तिकी प्रतिष्ठा थी। अतः फाल्गुन कृष्णा ३ सं०२००८ से पञ्चकल्याणकका मेला रेशन्दीगिरिजीमें था। नाला पार करके मैदानमें विशाल पण्डाल बनाया गया था। रात्रिको चर्चा बहुत हुई परन्तु लोगोंका कहना था कि यदि वास्तवमें एकीकरण चाहते हो तो इन जातीय सभाओंको समाप्त करो। इन सभाओंने जनताके हृदयमें फूट डालनेके सिवाय कुछ नहीं किया है।

४६

सागरके सुरम्य तट पर

चैत्र कृष्णा ३ को १ बजे शाहपुरसे चले। अगले दिन सागर पहुँच गये। रात्रिको स्वागत समारोहके उद्देश्यसे मोराजी भवनमें सभा एकत्रित हुई। यहाँ आकर कुछ समयके लिये भ्रमण सम्बन्धी आकुलतासे मुक्त हो गये। यहाँकी समग्र जनता को लाभ मिल सके इस उद्देश्यसे आठ-आठ दिन समस्त मन्दिरों में प्रवचनका क्रम जारी किया। चैत्र शुक्ला १३ सं० २००९ महावीर जयन्तीका उत्सव था। जनता अधिक थी। समा-

रोह अच्छा हुआ। दूसरे दिन सर्वधर्म सम्मेलनका आयोजन था जिसमें जैन हिन्दू मुसलमान और ईसाई धर्मवालोंके व्याख्यान हुये। अन्तमें मैंने भी बताया कि धर्म तो आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम है। काम क्रोध लोभ मोह आदि विकार आत्मा की उस निर्मल परिणतिको मलिन किये हुए हैं। जिस दिन यह मलिनता दूर हो जायगी उसी दिन आत्मामें धर्म प्रकट हुआ कहलावेगा। किसी कुल या जातिमें उत्पन्न होनेसे कोई उस धर्म का धारक नहीं हो जाता। कुलमें तो शरीर उत्पन्न होता है सो इसे जितने परलोकवादी हैं सब आत्मासे जुदा मानते हैं। शरीर पुद्गल है। उसका धर्म तो रूप रस गन्ध स्पर्श है। वह आत्मामें कहां पाया जाता है? आपका धर्म ज्ञान दर्शन क्षमा मार्दव-आर्जव आदि गुण हैं। ये सदा आत्मामें पाये जाते हैं। आत्माको छोड़कर अन्यत्र इनका सद्भाव नहीं होता।

इतना तो सब मानते हैं कि इस समय संसारमें कोई विशिष्ट ज्ञानी नहीं। विशिष्ट ज्ञानीके अभावमें लोग अपने-अपने ज्ञानके अनुसार पदार्थको समझने का प्रयास करते हैं। सर्वज्ञ (विशिष्ट ज्ञानी) के अभावमें लोग अपने-अपने ज्ञानके दीपक जलाते हैं। फिर भी एक सूर्य संसारका जितना अंधकार नष्ट कर देता है उसको पृथ्वीके छोटे बड़े सब दीपक भी मिल कर नष्ट नहीं कर सकते। ज्ञान थोड़ा हो, इसमें हानि नहीं परन्तु मोह मिश्रित ज्ञान हो तो वह पक्ष खड़ा कर देता है। यही कारण है कि इस समय उपलब्ध पृथ्वीपर नाना धर्म, नाना मत-मतान्तर प्रचलित हैं। यह कलिकालकी महिमा है। इस कालका यही स्वभाव है। आज लोगोंमें इतनी तो समझ आई है कि विभिन्न धर्मवाले एक स्थानपर बैठकर एक दूसरेके धर्मकी बात सुनते हैं, सुनाते हैं। जैनधर्मका अनेकान्तवाद तो इसीलिये अवतीर्ण हुआ है कि यह सब धर्मोंका सामञ्जस्य कर सके।

समय यापन

श्री १०८ मुनि आनन्दसागरजी भी विहार करते हुए सागर पधारे। सागरमें बालचन्द्र मलैया श्रद्धालु जीव हैं। सम्पन्न होने पर भी कोई प्रकारका व्यसन आपको नहीं। आपने सागरसे २ मील दक्षिणमें तिली ग्राममें एक विस्तृत तथा सुन्दर भवन बनवाया है। पूजाके लिये चैत्यालय भी निर्माण कराया है। एकान्त प्रिय होनेसे अधिकांश आप वहीं पर रहते हैं। आपका आग्रह कुछ दिनके लिये अपने बागमें ले जानेका हुआ। मैंने स्वीकृत कर लिया अतः वैशाख शुक्ला १३ को वहां गया, बहुत ही रम्य स्थान है। सभी तरहके सुभीते हैं। यदि कोई यहां तत्त्व विचार करना चाहे तो कोई उपद्रव नहीं। तीन दिन यहां रहा।

महिलाश्रम की आवास-व्यवस्था

सागरमें सिंघई कुन्दनलालजी एक सहृदय तथा आवश्यकताका अनुभव करनेवाले व्यक्ति हैं। उन्होंने पिछले समयमें महिलाश्रमको ११०००) ग्यारह हजार नकद दान दिये थे। उन्होंने कहा कि यदि महिलाश्रमकी कमेटी ग्यारह हजार रुपये हमारे पहलेके मिला दे तो मैं ग्यारह हजार और देता हूँ। इन बाईस हजारसे उक्त मकान खरीद लिया जावे। 'भूखेको क्या चाहिये ? दो रोटियां' वाली कहावतके अनुसार महिलाश्रमकी कमेटीने उक्त बात स्वीकार कर ली जिससे २२ हजार रुपयोंमें उक्त मकान खरीद कर सिंघेन दुर्गाबाईके नामसे महिलाश्रमको सौंप दिया गया। ग्रीष्मावकाशके बाद जब आश्रम खुला तब वह अपने निजके मकानमें पहुँच गया। इस मकानमें इतनी पुष्कल जगह है कि यदि व्यवस्थित रीतिसे बनाई जावे तो ५०० छात्राएँ सानन्द अध्ययन कर सकती हैं। आषाढ़ शुक्ला १४ के

दिन सागरमें चातुर्मासका नियम ग्रहण किया। श्रावण कृष्णा १० सं० २००९ को समाचार मिला कि डालमियानगरमें श्रावण कृष्णा ८ सोमवारकी रात्रिको १२ बजकर ५५ मिनटपर श्री सूर्यसागर जी महाराजका समाधिपूर्वक देहावसान हो गया। समाचार सुनते ही हृदयपर एक आघात सा लगा। आप एक विशिष्ट आचार्य थे, फिरोजाबादके साक्षात्कारके अनन्तर तो आपमें हमारी अत्यन्त भक्ति होगई थी। इसके पहले जब आपकी रुग्णावस्थाके समाचार श्रवण किये थे तब मनमें आया था कि एक बार उनके चरणोंमें पहुँचकर उनकी वैयावृत्त्य करें परन्तु बाह्य त्यागके संकोचमें पड़ गये। हमारा मनोरथ मनका मनमें रह गया।

आत्माका कल्याण तो अन्तरङ्ग परिणामोंकी निर्मलतासे होता है। नारकी निरन्तर दुःखमय स्थानमें हैं। वहाँ का परिकर निरन्तर दुःख दायक है फिर भी परिणामोंकी गति विचित्र है वहाँ भी अनन्त संसारके नाशक सम्यग्दर्शनके पात्र होते हैं। यह तो संज्ञी जीव है अवधिज्ञानी हैं; निगोदका जीव सहज विशुद्धता द्वारा मनुष्य होकर मोक्षका पात्र हो जाता है।

प्रतिवर्ष पहली अगस्तको श्री तिलक महात्मा (लोकमान्यबाल गंगाधर तिलक) की पुण्य स्मृतिमें लोग उनका अन्तिम दिवस मनाते हैं। यह वह महापुरुष है जिसने भारतवर्षको स्वाधीनता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने केवल स्वाधीनताका पाठ नहीं पढ़ाया, परलोककी शुद्धिके लिये गीताका मराठी भाषामें भाष्य भी बनाया और उसमें यह सिद्ध किया कि गृहस्थावस्थामें भी यदि निष्काम कर्म करें तब भी आत्मा संसार बन्धनसे मुक्त हो सकता है। अन्तमें यही सिद्धान्त तो प्रसन्नताका दाता है कि पर पदार्थसे स्नेह छोड़ो यही उपादेय है।

आश्विन कृष्ण ४ को मेरा जयन्ती उत्सव मनाया गया।

लोगोंने सदाकी तरह हमारी प्रशंसाके गीत गाये पर हम गर्दन नीची किये यही सोचते रहे कि ऐसी कोई वस्तु नहीं देखी जाती है जो आत्माको शान्तिप्रद हो। ५ वर्षकी अवस्थासे ७८ वर्ष की अवस्था तक जो संसारी मनुष्योंका व्यवहार हो रहा है हमने सब किया, अर्थात् यथाशक्ति पुण्य और पापके जो कार्य थे किये परन्तु शान्तिका लेश भी न आया। अशान्ति क्या है और शान्ति क्या है ? यह भी ज्ञानमें नहीं आता कि जो कार्य करनेकी आकांक्षा हृदयमें उत्पन्न होती है उसी समय एक व्यग्रता होती है और उसके मिटने पर शान्ति आती है।

●

४७

बिहार की ओर बिहार

पौष शुक्ल ३ को यह निश्चय किया कि अन्तिम जीवन श्री पार्श्वप्रभुके चरण कमलोंके सांनिध्यमें ही पूर्ण करना उत्तम होगा। अनादि कालसे परावलम्बनमें बिताया अब तो जिनके द्वारा मोक्षमार्गका विकास हुआ है उनका निर्वाण क्षेत्र ही स्वावलम्बनमें सहकारी हो। यद्यपि शरीर शक्तिहीन है तथापि श्रीपार्श्वप्रभुमें इतना अनुराग है कि वह पूर्ण बल प्रदान करनेमें निमित्त होंगे। ईसरी स्थान ही इस समय समाधिमरणके लिए उपयुक्त है। पार्श्व प्रभुकी निर्वाण भूमि है तथा अनादि से वहाँ तीर्थङ्कर प्रभु निर्वाण को गये हैं। सदा धार्मिक मनुष्यों का समागम है।

पौष शुक्ल ११ को सागरसे ईसरीके लिए प्रस्थान कर दिया। माघ शुक्ल १५ को श्री कुण्डलपुर जी आ गये। दूसरे दिन मेलेका अन्तिम दिवस था। लगभग ५ हजार नरनारी होंगे ? धर्मकी

अच्छी प्रभावना तथा क्षेत्रको अच्छी आय हुई। लोगोंमें जागृति हुई। प्रायः जनता धर्म पिपासु है। तन्मयताके साथ वड़े बाबा (भगवान महावीर) के गीत गानेमें आनन्दमग्न महिलाओंकी कण्ठश्री से गुंजित तालाब और पर्वतराजके अञ्चलमें सुनाई पड़ता था—

"बन्दत कटें करमके जाल, लाल ! कुण्डलपुर क्षेत्र सुहावने"

रामवनमें एक दिन

यहाँसे चैत्र कृष्ण ६ को चलकर माधोगढ़ होते हुए ७ को रामवन आये। यहाँ एक रम्य बाग है, एक स्वस्तिकके आकार की वापिका 'मानस-सर'के नामसे बहुत सुन्दर है उसके चारों ओर घाटों और मन्दिरोंका निर्माण हो रहा है। यहांके व्यवस्थापक श्रीशारदाप्रसाद बहुत ही धार्मिक प्रकृतिके लगनशील विद्वान् व्यक्ति हैं, रामवनमें आपकी बहुत सी योजनाएँ हैं। एक छोटीसी टेकरीपर एक कुटिया वनी है। कुटियाके नीचे तलघर है। उसमें अच्छा प्रकाश है, उष्णकालके लिए बहुत ही उपयोगी है। यहाँपर हनुमानजीका मन्दिर है। रामनाम मन्दिरमें २७ करोड़ रामनाम लिखे रखे गये हैं, एक अरबकी योजना है। चित्तमें आया कि इस स्थानपर ही रह जावें परन्तु हमलोगोंने अपनी वृत्ति इतनी संकुचित बना रक्खी है कि जैन जनता ही हमारी है,हम जैन जनताके हैं। प्रत्येक विषयमें हमलोग संकोच करते हैं। तीर्थोंको अपना मानते हैं, मन्दिरोंको अपना मानते हैं। वास्तवमें तीर्थ पृथक् कोई वस्तु नहीं। यहाँ शान्तिका परम अनुभव हुआ।

प्रयागसे काशी

वैशाख कृष्ण ९ को काशी आ गये। भेलूपुरकी धर्मशालामें

ठहर गए। यह वही भेलूपुर है जहाँ बाईजीका रहना था। यहीं रहकर हमने पहले विद्याभ्यास किया था, वैशाख कृष्ण १४ को विद्यालयका वार्षिकोत्सव हुआ। उत्सवमें ४ बजे श्री आनन्दमयी माता पधारीं। आप शान्तिमयी हैं। प्रायः सभीके आनन्दमें निमित्त हो जाती हैं। दूसरे दिन श्री आनन्दमयी माताके यहाँ गये। बहुत ही सुन्दर भवन था। आश्रम बहुत ही भव्य है। अनेक साधु और साध्वी निर्मल परिणामों वाले थे। यहीं पर क्रम-विकास पर व्याख्यान हुआ। अन्तमें आनन्दमयी माताने यह कहा कि अपना पराया भेद छोड़ो। यहाँ सन्मति जैन निकेतन तथा काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय भी गये।

काशीसे गया

जेष्ठ कृष्ण ३० को गया पहुँच गये। बड़े ठाठ-बाटसे स्वागत हुआ। जैनभवनमें ठहर गये। आषाढ़ कृष्ण २ को ईसरीके लिये प्रस्थान किया। गयासे ५ मील ही चले कि वर्षाके कारण पुनः गया आना पड़ा। इससे हमको बड़ा खेद हुआ।

●

४८

संत बिनोवासे भेंट

श्रावण कृष्णा १० प्रातःकाल सन्त बिनोवाजी भावे आये। ५ बजे आये १५ मिनिट ठहरे। आप बहुत ही शान्त स्वभावके हैं। आपका भाव अत्यन्त निर्मल है 'सभी प्राणी सुखके पात्र हों। कोई दुखका अनुभव न करे।' मैत्री भावना उत्कृष्ट आपमें पाई जाती है। 'दुःखानुत्पत्त्यभिलाषो मैत्री' यही तो उसका लक्षण है।

वचनसे पाठ तो सब करते हैं, कार्यमें परिणत करना बिरले महापुरुषोंका काम है। धर्मकी परिभाषा प्रत्येक व्यक्ति करता है किन्तु उस रूप प्रवृत्ति करना किसी महापुरुषके द्वारा ही होता है। भाद्रपद शुक्ल ३ को टाउनहालमें बिनोवा भावेकी जयन्ती थी। हम भी गये। इस अवसर पर हमने कहा—

बन्धुवर !

आज एक महापुरुष की जयन्ती है। विचार करके देखो उनकी यह महापुरुषता क्या भूमि दान दिला देते हैं, इससे है। नहीं, अरे! जब भूमि तुम्हारी चीज ही नहीं तब दिलानेका प्रश्न ही नहीं आता। उन्होंने एक पुस्तकमें लिखा है—'भूमि तो भगवानकी है' तो तुम्हारी कैसे हुई ? और जो तुम्हारी नहीं उसका दान कैसा ? सबसे भारी बात तो यह है कि मैं उनके गुणों से मोहित हूँ। मेरे ध्यान में यह बात आई कि उन्होंने पञ्चेन्द्रिय के विषयों को लात मार कर अपनी ओर ध्यान दिया। यह भूमि दान तो आनुषङ्गिक है। संसार के भोगों को जिसने छोड़ दिया वही महापुरुष है, उसीकी प्रशंसा है। ऐसे महापुरुष से ऐसा छोटा सा काम कराना इससे अधिक भारत की कङ्गाली और क्या होगी ! जिनसे मोक्षमार्ग मिलता है उन्हें संसार मार्ग में लगाओ। मैं तो समझता हूँ यह कोई चीज नहीं है। तुम्हारी यह मूर्च्छा त्याग कराते हैं, अरे हमारा अगर कोई चोट्टापन मिटादे तो इससे बड़ा उपकारी और कौन होगा ?

बिनोवा जी से कहो कि बाबा जी ! अब आप वृद्ध हो गये, धर्म ध्यान करो। जान तो गये भूदान करना है और सबके सब एक ही दिन में कर डालो। एक बात हम कहते हैं किसान तो दान करते सो ठीक ही है। हम सबके लायक दान बताते हैं। जो भीख मांगकर खाते हैं वे भी दान दे सकते हैं। ऐसा करने

से अनेक यूनिवर्सिटी हो जांय, विद्यालय हो जांय। खाने पहिनने में जो खर्च हो प्रति रुपया एक पैसा दान दो, सब भारतवर्ष में गरीबी मिट जाय। एक पैसा प्रति रुपया ही दो अधिक नहीं। उसमें कोई व्यतिक्रम नहीं होना चाहिये। जो भीख मांगकर लायगा वह भी तो पेट भर खायगा अतः वह भी एक रोटी दे सकता है।

हमारा तो यही कहना है कि तुम सब विनोवाजीके गुणोंका कुछ न कुछ अंश लेकर जाओ। जैसा उन्होंने त्याग किया वैसा करो। दान करो, चाहे न करो पर लोभ छोड़कर जाओ। लोभ उनके पास नहीं है अतः लोभ छोड़कर जाओ। विनोवा जी दूसरोंके दुःखसे दुःखी होकर ;कि यह भारतके किसान हैं, गरीब हैं, दुःखी हैं, इसीसे वे अपना दुःख दूर करनेको प्रयत्नशील हैं। इन गरीबोंको दो रोटियाँ देना चाहते हैं। करुणा उत्पन्न हुई उसीके दूरीकरणार्थ यह भूमिदान प्रथा है। हम तो चाहते हैं ऐसा महापुरुष चिरकालतक सानन्द जीवे।

गयामें पर्यूषण पर्व

लोगोंने १० दिन मन्दिरोंमें धर्मध्यानमें अपना अधिकांश समय व्यतीत किया।

आश्विन कृष्ण ४ को मेरी जयन्ती उत्सव था। बाहरसे बहुत महानुभाव आये थे। आश्विन कृष्ण ५ को टाउनहालकी सार्वजनिक सभामें गये। अहिंसा तत्त्वपर व्याख्यान थे। प्रायः सभीने अहिंसासे ही विश्वशान्ति सम्भव बतलाई।

गांधी जयन्ती समारोह

२ अक्तूवरको स्थानीय पुस्तकालयमें गांधी जयन्ती उत्सव था। जनसंख्या अच्छी थी, ५०० तो महिलाएँ ही होंगी। हम लोगोंका भी निमन्त्रण था। गांधीजी एक अद्वितीय त्यागी पुरुष

थे, जो काम वह करते थे निष्कपट भावसे करते थे। इसीसे जनतापर उनका पूर्ण प्रभाव था। यही कारण था कि इतना प्रभावशाली ब्रिटेन भी उनके प्रभावमें आ गया तथा बिना किसी शर्तके भारतको त्याग कर स्वदेश चला गया। इतना त्याग करना भी एक महती अपूर्व घटना जगतमें नहीं देखी जाती। भारतमें पहले ब्रिटिश (अंग्रेजों) की सत्ता थी। सभी जनता उनके व्यवहारसे असन्तुष्ट थी, कांग्रेसके गीत गाती थी, दैवयोगसे गांधीजीके प्रयत्नसे भारतका भाग्य विकास हुआ और भारतमें स्वराज्य हो गया।

कार्तिक कृष्ण ७ को नालन्दा बौद्ध विश्वविद्यालयके अधिष्ठाता मिलने आये। बहुत ही शिष्ट थे। आपका जैन दर्शनमें अनुराग है। आपकी अन्तरङ्ग इच्छा है कि नालन्दामें भी जैन दर्शनके अध्यापनादि कार्य हों और इस हेतु एक जैन विद्यालय खोला जावे तब परस्पर आदान प्रदान होनेसे धर्मका वास्तव पता हो सकता है तथा तुलनात्मक अध्ययनका भी अवसर छात्रों को मिल सकता है।

इस तरह गयाका चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। विद्वानों का खूब समागम रहा, लोगोंको धार्मिक लाभ भी अच्छा मिला।

●

४९

पार्श्व प्रभुकी चरण-शरणमें

हृदयमें गिरिराजके दर्शन करनेकी उत्कट उत्सुकता थी इसलिए कार्तिक सुदी २ सं० २०१० रविवारको १ बजे गयासे प्रस्थान कर अगहन सुदी ३ संवत् २०१० को प्रातः ८½ बजते-बजते ईसरी पहुँच गये। चित्तमें बड़ा हर्ष हुआ। एक बार यहाँ

आकर पुनः परिवर्तन करनेके लिये निकल पड़ा था और उस चक्रमें फँस १० वर्ष यत्र तत्र भटकता रहा। शरीरमें शक्ति नहीं थी फिर भी भटकना पड़ा। आज पुनः श्रीपार्श्व प्रभुकी निर्वाण भूमिके समीप आ जानेसे हृदयमें जो आनन्द हुआ वह शब्दोंके गोचर नहीं। यहाँके समस्त त्यागियों तथा परिकर-के अन्य लोगोंको भी महान् हर्ष हुआ।

देखते देखते ईसरीमें बहुत परिवर्तन हो गया है। यहाँ आनेपर मुझे ऐसा लगने लगा जैसे 'भारहीनो बभूव'—शिरसे भारी भार उतर गया हो। यहाँका प्राकृतिक दृश्य नयनाभिराम है। पास ही हरे भरे गिरिराजके दर्शन होते हैं। श्रीपार्श्व प्रभुका निर्वाण स्थान अपनी निराली शोभासे दर्शकोंको अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। आकाशको चीरती हुई गिरिराजकी हरी भरी चोटियाँ कभी तो धूमिल घनघटासे आच्छादित हो जाती हैं और कभी स्वच्छ-अनावृत दिखाई देती हैं। प्रातःकाल के समय पर्वतकी हरियालीपर जब दिनकरकी लाल लाल किरणें पड़ती हैं तब एक मनोहर दृश्य दिखाई देता है। लम्बी चौड़ी चट्टानें और वृक्षोंकी शीतल छायाएँ ध्यानके लिये बलात् प्रेरणा देती हैं। धर्म साधनकी भावनासे यहाँ चारों तरफकी जनता सर्वदा आती रहती है। श्रीगिरिराजकी वन्दनाका हृदयमें बहुत अनुराग था अतः अगहन सुदी १० को मधुवनके लिए प्रस्थान किया। द्वादशीको प्रातः वन्दनार्थ गिरिराजपर गये। भक्तिसे भरे नर-नारी पुण्य पाठ पढ़ते हुए पर्वतपर चढ़ रहे थे। जिस स्थानसे अनन्तानन्त मुनिराज कर्मबन्धन काटकर निर्वाण धामको प्राप्त हुए उस स्थानपर पहुँचनेसे भावोंमें सातिशय विशुद्धता आ जाय इसमें आश्चर्य नहीं। शुक्लपक्ष था अतः चारों ओर स्पष्ट चाँदनी छिटक रही थी। मार्गके दोनों ओर निस्तब्ध वृक्षपंक्ति खड़ी थी। श्रीकुन्थुनाथ भगवान्‌की टोंकपर पहुँच

गये। सूर्योदय कालकी लाल लाल आभा वृक्षोंकी हरी-भरी चोटियोंपर अनुपम दृश्य उपस्थित कर रही थी। क्रम क्रमसे समस्त टोकोंकी वन्दना कर १० बजे श्रीपार्श्वनाथ भगवान्के निर्वाण स्थानपर पहुँच गये। वन्दना पूर्ण होनेपर हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ, श्रीसमन्तभद्रस्वामीने पार्श्वनाथ भगवान्का जो स्तोत्र लिखा है उसे पढ़कर चित्तमें शान्ति आई। यहीं मध्याह्नकी सामायिककर दिनके ३½ बजे मधुवन वापिस आ गये। भक्तिका प्राबल्य देखो कि स्त्रियाँ तथा आठ आठ वर्षके बच्चे भी १८ मीलका पहाड़ी मार्ग चलकर भी खेदका अनुभव नहीं करते। जो स्त्रियाँ अन्यत्र २ मील चलनेमें भी कष्टका अनुभव करती हैं वे यहाँ १८ मीलका लम्बा पहाड़ी मार्ग एक साथ चलकर भी कष्टका अनुभव नहीं करतीं। यहाँसे पुनः ईसरी वापिस आ गये।

●

५०

राष्ट्रपतिसे साक्षात्कार

ईसरीमें सम्वत् २०१२ सन् १९५५ के अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें विहार राज्य ग्राम पञ्चायतका चतुर्थ अधिवेशन था। उसके उद्घाटनके लिए भारतवर्षके राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी आये थे। जैन हाईस्कूलके मैदानमें आपका भाषण हुआ। आप प्रकृतिके सरल तथा श्रद्धालु व्यक्ति हैं। साक्षात्कार होनेपर आपने बहुत ही शिष्टता दिखलाई। मैंने आपसे कहा कि जिस विहार प्रान्तमें भगवान् महावीर तथा महात्मा बुद्ध जैसे अहिंसाके पुजारियोंने जन्म लिया वही विहार आपका प्रान्त है और इसी प्रान्तमें मांस तथा मद्यके सेवनकी प्रचुरता देखी जाती है। इस

मांस, मद्य-सेवनसे गरीबोंकी गृहस्थी उजड़ रही है। उनके बाल-बच्चोंको पर्याप्त अन्न और वस्त्र नहीं मिल पाता। निर्धन अवस्थाके कारण शिक्षाकी ओर भी उनकी प्रगति नहीं हो पाती इसलिए ऐसा प्रयत्न कीजिये कि जिससे यहाँके निवासी इन दुर्व्यसनोंसे बचकर अपना भला कर सकें। आप जैसे आस्थावान् राष्ट्रपति-पाकर भारतवर्ष गौरवको प्राप्त हुआ है।

उत्तरमें उन्होंने कहा कि हमें भी यही इष्ट है। हम ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं कि विहार ही क्यों भारतके किसी भी प्रदेशमें मद्यपान आदि न हो। पूज्य गाँधीजीने मद्य-निषेधको प्रारम्भ किया है और हम उनके पदानुगामी हैं परन्तु खेद इस बातका है कि हम द्रुतगतिसे उनके पीछे नहीं चल पाते हैं।

●

५१

स्याद्वाद विद्यालयकी स्वर्ण जयन्ती

श्री स्याद्वाद विद्यालय बनारस जैन समाजकी प्राचीन एवं महोपकारिणी संस्था है। ५० वर्षसे जैन समाजमें संस्कृत विद्याका प्रचार इस विद्यालयसे हो रहा है। सैकड़ों विद्वान् इस विद्यालयमें पढ़कर तैयार हुए हैं अतः संस्कृत विद्याका प्रचार केन्द्र यह विद्यालय अपना बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पं० कैलाशचन्द्रजी इसके प्रधानाध्यापक हैं। यथार्थमें आप विद्यालयके प्राण हैं। आपके द्वारा ही वह व्यवस्थितरूपसे चला आरहा है।

इस विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव मधुवनमें श्री साहु शान्तिप्रसादजी कलकत्ताकी अध्यक्षतामें अच्छी तरह सम्पन्न हुआ। जनता इतनी अधिक आई कि मधुवनकी तेरहपन्थी,

बीसपन्थी तथा श्वेताम्बर कोठोकी सब धर्मशालाएँ ठसाठस भर गयीं। ऊपरसे डेरा-तम्बुओंका प्रबन्ध करना पड़ा।

माघ वदी १४ सम्वत् २०१२ को श्री ऋषभ निर्वाण दिवसका उत्सव मनाया गया। रात्रिमें वर्णी जयन्तीका आयोजन था, दूसरे दिन स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव हुआ। विद्यालयका परिचय देते हुए उसके अबतकके कार्यकलापोंका निर्देश श्री पं० कैलाशचन्द्रजीने किया। साहुजीने अपना भाषण दिया भाषणमें ही विद्यालयको चिरस्थायी करनेकी अपील समाजसे कर दी। समाजने हृदय खोलकर विद्यालको सहायता दी। विद्यालयको लगभग डेढ़ दो लाखकी आय हो गई।

उत्सव समाप्त होनेपर मैं प्रातःकाल श्रीपार्श्व प्रभुकी वन्दना करनेके लिए गया। श्री विद्यार्थी नरेन्द्र तथा श्री 'नीरज' साथ थे। पार्श्वप्रभुकी चरण-शरणमें अनुपम शान्तिका अनुभव हुआ। रथयात्रा आदि कार्य शान्तिसे सम्पन्न हुए। हम सायंकाल मधुवनसे ईसरी आ गये। मेला भी यथाक्रमसे विघट गया।

●

८२

आचार्य नमिसागरजी का समाधिमरण

आचार्य श्री नमिसागरजी महाराज महातपस्वी थे। आपकी आकांक्षा थी कि हमारा समाधिमरण वर्णी गणेशप्रसादके सांनिध्यमें हो। इस आकांक्षासे प्रेरित होकर आप देहलीसे मधुवन तकका लम्बा मार्ग तयकर श्री पार्श्वप्रभुसे पादमूलमें पधारे थे। आप निर्द्वन्द-निरीह वृत्तिके साधु थे। संसारके विषम वातावरणसे दूर थे। आत्मसाधना ही आपका लक्ष्य था। ७०

वर्षकी आपकी अवस्था थी फिर भी दैनिक चर्यामें रञ्चमात्र भी शिथिलता नहीं आने देते थे।

श्री सम्मेदशिखरजीकी यात्रा कर आप ईसरी आ गए जिससे सबको प्रसन्नता हुई। वृद्धावस्थाके कारण आपका शरीर दुर्बल हो गया तथा उदरमें व्याधि उत्पन्न हो गई जिससे आपने १२-१०-१९५६ शुक्रवारको समाधिका नियम ले लिया। आपने सब प्रकारके आहार और औषधिका त्याग कर केवल छाछ और जल ग्रहण करनेका नियम रक्खा। महाराज तेरहपन्थी कोठीमें ठहरे थे। मैं आपके दर्शनके लिए गया। चलते-चलते मेरी श्वास भर आई। यह देख महाराज बोले—आपने क्यों कष्ट किया ? आप तो हमारे हृदयमें विद्यमान हैं।

अनन्तर सबकी सम्मतिसे उन्हें उदासीनाश्रममें ले आये और सरस्वतीभवनमें ठहरा दिया। इस समय आपने अपने ऊपरसे झुंगी हटवा दी तथा खुले स्थानमें पलाल पर शयन किया। जब अन्तिम दो दिन रह गये तब आपने छाँछका भी परित्याग कर दिया, केवल जल लेना स्वीकृत रक्खा। कार्तिक वदी ३ सं० २०१३ को १० वजे आपने तीन चुल्लू जलका आहार लिया। हम सामायिकमें वैठना ही चाहते थे कि इतनेमें समाचार मिला कि महाराजका स्वास्थ्य एकदम खराब हो रहा है। हम उसी समय उनके पास आये। हमने पूछा कि महाराज! सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान है ? उन्होंने हूँकार भरा और उसी समय उनके प्राण निकल गये। सब हृदय शोकसे भर गये। रात्रिमें शोकसभा हुई जिसमें मैंने श्रद्धाञ्जलि भाषणमें लोगोंसे यही कहा कि महाराज तो आत्मकल्याण कर स्वर्गमें कल्पवासी देव होगये। अब उनके प्रति शोक करनेसे क्या लाभ है ? शोक तो वहाँ होना चाहिये जहाँ अपना स्नेहभाजन व्यक्ति दुःखको प्राप्त हो। अब तो हम सबका पुरुषार्थ इस प्रकारका होना चाहिये कि जिससे

जन्म-मरणकी यातनाओंसे वचकर हमारा आत्मा शाश्वत सुखका पात्र होसके।

•

८३

गणेश विद्यालयकी स्वर्ण जयन्ती

सत्तर्कसुधातरङ्गिणी पाठशाला सागर पहले सत्तर्क विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध हुई, अब गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध है। इस संस्थाने बुन्देलखण्ड प्रान्तमें काफी कार्य किया है। ५० वर्ष पूर्व जहाँ मन्दिरोंमें पूजा और विधान बाँचने वाले विद्वान् नहीं मिलते थे वहाँ अब धवल-महाधवल जैसे ग्रन्थराजोंका अनुवाद और प्रवचन करनेवाले विद्वान् विद्यमान हैं। जहाँ संस्कृतके ग्रन्थ वाँचनेमें लोग दूसरेका मुख देखते थे वहाँ आज संस्कृतमें गद्य पद्य रचना करनेवाले विद्वान् तैयार हो गये हैं।

एक छोटीसी पाठशाला वृद्धि करते करते आज विशाल महा विद्यालयका रूप धारण कर समाजमें कार्य कर रही है। किसी समय इसमें ५ विद्यार्थी थे पर अब इसमें २०० छात्र भोजन पाते हुए विद्याध्ययन करते हैं। एक पहाड़ीकी उपत्यकामें विद्यालय का सुन्दर और स्वच्छ भवन वना है उसीमें संस्कृत विभाग तथा हाई स्कूल इस प्रकार दोनों विभाग अपना कार्य संचालन करते हैं। संस्कृतमें प्रारम्भसे शास्त्री आचार्य तक तथा हाई-स्कूलमें एण्ट्रेंसतक पढ़ाई होती है।

इस संस्थाको भी कार्य करते हुए बहुत वर्ष हो गये थे इस

लिए इसके आयोजकोंने भी मधुवनमें इसकी स्वर्णजयन्ती मनाने का आयोजन किया।

इस बीच श्री कानजी स्वामी भी श्री गिरिराजकी वन्दनार्थ ससंघ पधार रहे थे जिससे लोगोंमें उक्त अवसरपर पहुँचनेकी उत्कण्ठा बढ़ रही थी। फाल्गुन सुदी १२-१३ सं० २०१३ उत्सव के दिन निश्चित किये गये। इस उत्सवमें बहुत जनता एकत्रित हुई। सब धर्मशालाएँ भर चुकीं और उसके बाद कमेटीको सैकड़ों डेरे तम्बुओंका भी प्रबन्ध करना पड़ा।

गणेश विद्यालयवालोंने मुझे उत्सवका अध्यक्ष बना दिया। उत्सवके प्रारम्भमें विद्यालयमें अबतक पढ़कर निकलनेवाले स्नातक (छात्रों) की ओरसे ५२ स्वर्णमुद्राएँ विद्यालयकी सहायता के लिए हमारे सामने रखी गई। विद्यालयके ५२ वर्षका कार्य-परिचय जनताके समक्ष उसके मन्त्री श्रीनाथूराम गोदरेने रक्खा। ५०-६० हजार रुपयेके वचन मिल गये। फुटकर सहायता भी लोगोंने बहुत दी। उत्सवका कार्यक्रम दो दिन चलता रहा और जनता बड़ी प्रसन्नतासे उसमें भाग लेती रही। उत्सव समाप्त होनेपर पार्श्व प्रभुके दर्शनार्थ गिरिराजपर गये। पार्श्वप्रभुकी चरण शरणमें पहुँचने पर ऐसा आभास होने लगा जैसे पथ भ्रान्त पथिक अपने अभीष्ट स्थानपर पहुँच गया हो।

•

८४

दो सन्तोंसे मिलन

श्रीकानजी स्वामी

श्री कानजी स्वामी फागुन सुदी ५ वि० सं० २०१३ को संघ सहित मधुवन आ गये थे। प्रसन्नमुख तथा विचारक व्यक्ति हैं।
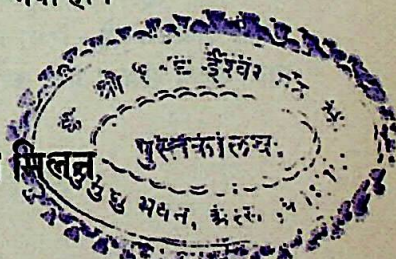
आप प्रारम्भमें स्थानकवासी श्वेताम्बर थे परन्तु श्री कुन्दकुन्द स्वामीके ग्रन्थोंका अवलोकन करनेसे दिगम्बर धर्मकी ओर आपकी दृढ़ श्रद्धा हो गई जिससे आपने स्थानकवासी श्वेताम्बर धर्म छोड़कर दिगम्बर धर्म धारण कर लिया न केवल आपने ही किन्तु अपने उपदेशसे सौराष्ट्र तथा गुजरात प्रान्तके हजारों व्यक्तियोंको भी दिगम्बर जैन धर्ममें दीक्षित किया है। आपकी प्रेरणासे सोनगढ़ तथा उस प्रान्तमें अनेक जगह दिगम्बर जैन मन्दिरोंका निर्माण हुआ है। आपके प्रवचन प्रायः निश्चय धर्मकी प्रमुखता लेकर होते हैं।

आचार्य श्रीतुलसीजी

अगहन सुदी ८ वि० सं० २०१६ को अणुव्रत आन्दोलनके प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी जी ससंघ उदासीन आश्रममें आये। आपके संघमें अनेक विद्वान् साधु थे। सभी अच्छे विचारोंके थे। आचार्य श्री तुलसी जी भद्र परिणामवाले साधु हैं। आपके विचार उत्तम हैं। वास्तवमें अगर अणुव्रत आन्दोलन सफल हो जाय तो लोग सच्चरित्र होकर आत्मकल्याणके मार्गपर चलने लगें। यही अणुव्रत तो महाव्रतोंकी नींव है।

मैं तो यही चाहता हूँ—'हे भगवन्! संसारका कोई भी प्राणी दुःखी न रहे। सभी अपने योग्य कल्याण-मार्गपर चलें, सभी सच्चे सुखको प्राप्त करें।'

खण्ड २

•

दिव्य दान

•
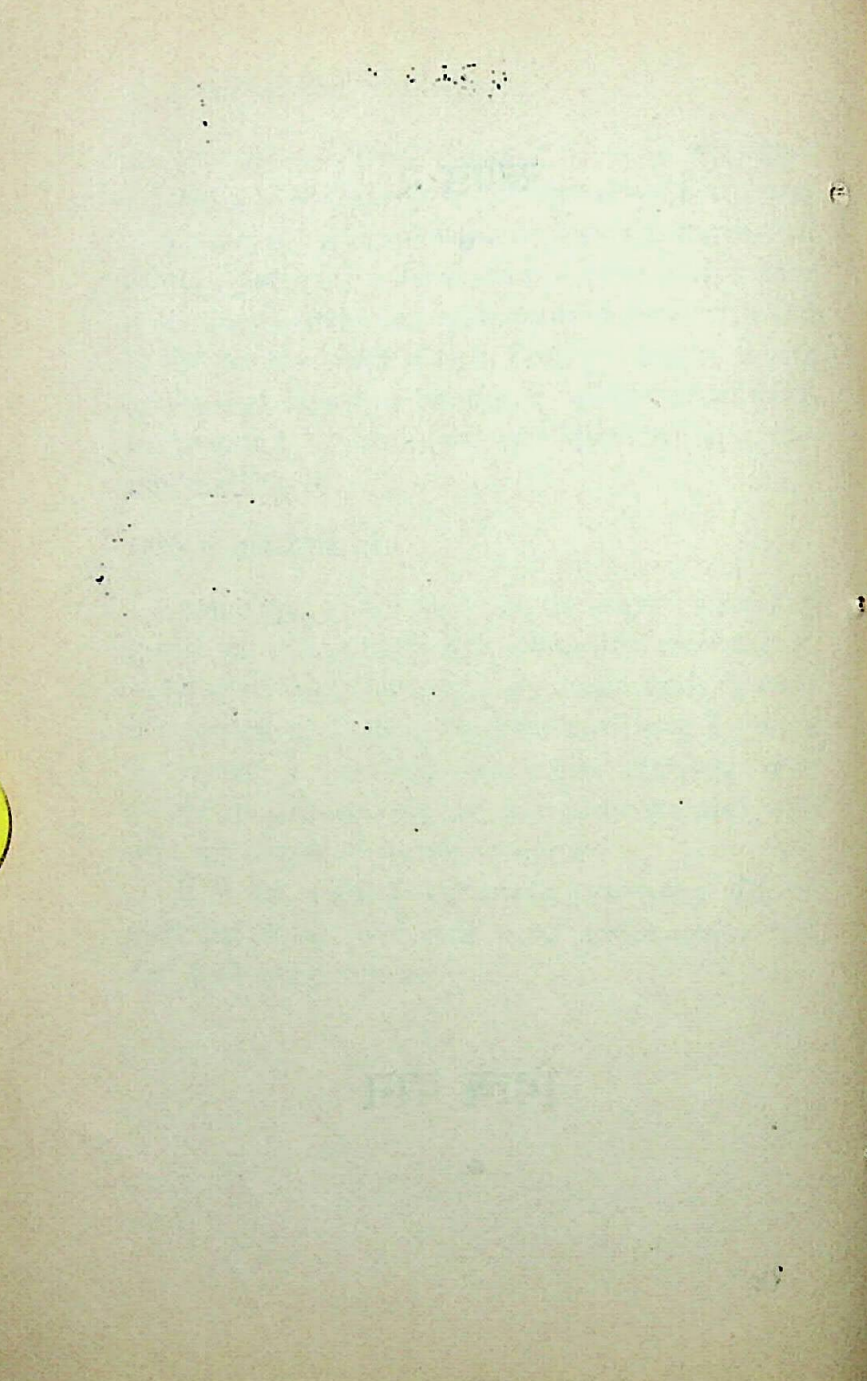
जिनेन्द्र कुमार जैन

मङ्गल प्रभात

[बालक बालिकाओंके लिये]

●

१
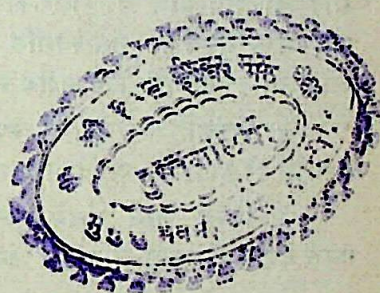
मंगल प्रभात (बाल्यावस्था)

१. उन्नति और अवनतिके दो सुगम और दुर्गम मार्ग सदाचार और दुराचारकी ओर प्रवृत्ति और निर्वृत्तिका निर्णय यदि बाल्यावस्थामें ही बालकको करा दिया जाय तो उसके स्वर्णिम संसारमें ही उसे स्वर्गीय सौख्य सदनका सुख, समृद्धि और शान्ति मिलनेमें कोई संशय नहीं है।

२. अच्छी और बुरी परम्पराओंका बीजारोपण बाल्यावस्थामें ही होता है। आदि भला तो अन्त भला।

३. जिन्हें आज धूलमें खेलते और गलियोंमें किलोल करते देखते हो, कौन जानता है उनमें कौन धूल भरा हीरा है?

४ बच्चोंको जैसी शिक्षा दी जाती है वैसे ही उनके जीवनका निर्माण होता है। इसलिये उन्हें शिक्षा देनेवाला उतना ही निष्णात होना चाहिये जितना कि एक सन्मार्ग-दर्शक गुरु होता है।

५. बालक निर्द्वन्द्व ही जन्म लेता है, गुण दोषोंका ग्रहण तो वह अपने चारों ओरके अच्छे बुरे वातावरणसे करता है।

६. बालकोंकी निश्छल वृत्ति ही इस बातकी परिचायक होती है कि उन्हें बुरा बनानेकी अपेक्षा अच्छा बनाना अधिक सरल है।

७. छह सात माहकी अवस्थामें बालककी अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं और लगभग डेढ़ वर्षकी अवस्थामें उसमें समझ आती है। यहींसे उसकी अनुकरण प्रियता प्रारम्भ होती है। तब

आवश्यक यह होता है कि उसके साथ रहनेवाले माता-पिता, भाई-बहिन, नौकर-चाकर सभी अपने सदाचारकी सावधानी रखें जिससे बालकके जीवन पर अच्छे संस्कारोंका प्रभाव पड़े। इस समय उसका अन्तःकरण उस स्वच्छ दर्पणकी भाँति होता है जिसके सामने रखे पदार्थोंका प्रतिबिम्ब उसमें ज्योंका त्यों झलक जाता है।

८. बालकको अक्षर ज्ञानके साथ सरल सुबोध कहानियों द्वारा सत्य बोलना, परोपकार करना, उद्यागो एवं पराक्रमी बनना आदि जीवन निर्मापक शिक्षा दी जानी चाहिये।

९. बालजीवनकी पाठशालामें यदि कठिनाई, विपत्ति, परिश्रम और निस्वार्थकी चार कक्षाएँ भी उत्तीर्ण कर लीं तो समझो बहुत कुछ पढ़ लिया।

•

२

आधुनिक शिक्षा

संसारकी परिस्थिति इस समय अत्यन्त भयङ्कर और दयनीय हो रही है। परिग्रह पिशाचके आवेगमें मानवने दानवका आश्रय ले लिया है। लाखों निरपराध व्यक्तियोंकी निर्मम हत्या हो रही है। करोड़ोंकी सम्पत्ति अग्निदेवके द्वारा भस्म हो चुकी। हजारों मकानोंको श्मशान बना दिया! कहते क्या हैं? ऐसा स्वराज्य आजतक संसारमें किसीने नहीं पाया जो विना लड़ाई किये ही मिल गया। ऐसा इतिहासमें कोई भी दृष्टान्त नहीं है। परन्तु यह भी तो दृष्टान्त इतिहासमें नहीं मिलता कि राज्य मिलनेपर इतनी हत्याएँ निरपराधियोंकी हुई हों। इससे यही सिद्ध होता

है कि आजकलके मनुष्योंके हृदयमें धार्मिक शिक्षाका बिलकुल अभाव है। यह आजके विज्ञानका फल है।

विलायतवालोंको लोग बड़ा विज्ञानी मानते हैं और उनकी बड़ी बड़ी कीर्तियाँ आलाप करते हैं। परन्तु उन्होंने एक अणुबम से लाखों मनुष्य और करोड़ोंकी सम्पत्तिका स्वाहा कर दिया। जो जापान ५० वर्षमें सम्पन्न हुआ था वह एक दिनमें रसातल पहुँचा दिया गया। जापानकी लोग बड़ी प्रशंसा करते थे कि उसने थोड़े ही कालमें अपने देशको सम्पन्न बना लिया। परन्तु यदि उसकी अन्तरङ्ग व्यवस्था देखें तो पता चले। उसने ५ वर्षसे चीनको नाकों दम कर दिया, लाखों मनुष्योंका स्वाहा कर दिया तथा जो देश काबूमें आया उसे भिखमङ्गा बना दिया।

मैं तो इतिहास भूगोल जानता नहीं पर इतना अवश्य जानता हूँ कि आजकलकी शिक्षा केवल अर्थोपार्जनकरी और काम विषयक है। इसलिये लोगोंके हृदयमें शिक्षित होनेपर भी वह राष्ट्रीयता नहीं आई जो आजके स्वतन्त्र नागरिकको आवश्यक है। राष्ट्रीयता जब तक पूर्णरूपसे नहीं आयगी स्वदेश और स्वदेशी वस्तुओंसे प्रेम न होगा और न औद्योगिक धन्धोंको प्रोत्साहन मिलेगा। यन्त्रादि द्वारा लाखों मन कपास और लाखों थान कपड़ा मिलों द्वारा एक दिनमें बन जाता है। फल यह होता है कि इने-गिने धनाढ्योंको उससे लाभ पहुँचता है या लाखों मजदूरों को मजदूरी मिलती है परन्तु करोड़ों और हजारों दुकानदार आजीविकाके बिना मारे मारे फिरते हैं। इसी प्रकार यन्त्रों द्वारा एक दिनमें हजारों मन तैल तैयार हो जाता है। फल इसका यह हुआ जो इने-गिने धनाढ्य और सहस्रों मजदूर मजदूरी पा जाते है परन्तु हजारों तेली हाथपर हाथ धरे रोते हैं। कोलुओं द्वारा जो तैल निकलता था वह स्वच्छ होता था तथा खली निकलती थी उसमें तैलका अंश रहनेसे गाय भैंसोंको खानेमें

स्वाद आता था। वह पुष्टकर होता था। इसी प्रकार शक्कर आदिके मिलोंकी भी व्यवस्था समझिये। यह तो कुछ भी बात नहीं, यदि कपड़ेके मिलोंकी व्यवस्थाका जाननेवाला लिखता तो पता चलता कि उनमें हजारों मन चर्वी लगती है। यह चर्वी क्या वृक्षोंसे आती है ? नहीं; कसाईखानोंको पहले आर्डर दिये जाते हैं कि इतने मन चर्वी हमको भेजो। चमड़ा कितना लगता है इसका पारावार नहीं। इतनेपर भारतवासी चाहते हैं जो गो वध बन्द हो जावे।

पाठकगण! जरा मनको शान्त कर विचारो तो सही हम स्वयं इन बातोंसे घृणा नहीं करते! पतलेसे पतला जोड़ा चाहिये चाहे उसमें अण्डेका पालिश क्यों न हो। ग्रामोंमें चले जाइये पशुओंके चरनेको भूमि नहीं! मनुष्योंके आचरणके ऊपर दृष्टिपात कर यदि कोई लिखे तो पुराण बन जावे।

अच्छेसे अच्छे अपनेको माननेवाले होटलोंमें चायके प्याले चाटते देखे गये हैं। जिस प्यालासे मांसभक्षी चाय पीते हैं उसीसे निरामिषभोजी चाय पी रहे हैं। कोई कहे क्या करते हो ? तो उत्तर मिलता है अजी छोड़ो इसी छुआछूतने भारतको गारत कर दिया। इसका मूल कारण यदि देखा जावे तब **शिक्षामें धर्म-शिक्षा और सच्ची राष्ट्रीयताका अभाव ही इसका कारण है।** अतः यदि देशका कल्याण करनेकी सत्य भावना है तब एक तो **प्रारम्भसे धार्मिक शिक्षा** अनिवार्य करो और दूसरे यह प्रतिज्ञा प्रत्येक व्यक्तिको करना चाहिये कि **हम स्वदेशी वस्त्रादिका ही उपयोग करेंगे।**

शिक्षाका महत्त्व इतना है जो आत्मा इस लोककी कथा छोड़ो परलोकमें भी सुखका पात्र हो जाता है। **शिक्षा उसे कहते हैं**

जिससे प्राणियोंको सुख हो । सभी मनुष्य दुखसे भयभीत रहते हैं और सुखको चाहते हैं अतः शिक्षा ऐसी हो जिसके द्वारा प्राणियोंको सुख हो। जिस शिक्षासे प्राणियोंका विनाश हो वह काहेंकी शिक्षा ? वह तो एक तरहका अस्त्र है। केवल धनार्जन करना शिक्षाका काम नहीं, धनार्जन तो व्यापारसे होता है।

भारतमें ऐसे ऐसे फर्म करोड़पतियोंके हैं जो उनके मालिक साधारण पढ़े लिखे हैं यह संसार महान् दुःखोंका भण्डार है इसमें शान्तिका लाभ विना उत्तम शिक्षाके नहीं मिलता।

प्राचीन कालमें अपरिग्रही गुरु शिक्षा देते थे जिसके द्वारा संसारी मनुष्य सुमार्गमें प्रवृत्तिकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे तथा अन्तिम वयमें गृहस्थीका भार बालकोंके ऊपर छोड़ आप संसारसे विरक्तहोकर मुक्ति पथके पात्र हो जाते थे। आजकल उस शिक्षाके अभावमें केवल धन सञ्चय करते करते परलोक चले जाते हैं और वही संस्कार अपने उत्तराधिकारीमें छोड़ जाते हैं। अतः यदि समाज और देशका उत्थान आप लोगोंको इष्ट है तब पहले शिक्षाकी व्यवस्था ठीक करो।

१. आधुनिक शिक्षामें प्रायः चार्वाक मतकी ही पुष्टि होती है। आजकल शिक्षाका प्रयोजन केवल अर्थोपार्जन तथा काम सेवन मुख्य रह गया है। जहाँसे शिक्षाका श्रीगणेश होता है पहला पाठ यही होता है कि आजीविका किस प्रकार होगी? तथा ऐसा कौनसा उपाय है जिससे संसारकी सम्पत्तिका स्वामी मैं बन जाऊँ ? संसार चाहे किसी भी आपत्तिमें रहे।

(१८।३।४९)

२. लोगोंके आचरण प्रायः देशकालादिके अनुरूप बदल रहे हैं। लड़कोंको स्कूलमें जाना पड़ता है, वहाँपर धार्मिक शिक्षाका प्रायः अभाव है। नागरिक बननेका कोई साधन नहीं, ऊपरी चमक-दमकमें सर्वस्व खो दिया। आवश्यकताएँ इतनी विपुल हो गई हैं कि मनुष्य उनके पूर्ण करनेके लिए नाना अनर्थ करते हैं।

(२३ । ८ । ४९)

३. देहातोंमें शिक्षाकी बहुत कमी है, ४ कक्षातक हिन्दीकी पढ़ाई होती है। अधिकांश व्यक्ति धनाभावके कारण अपने बालकोंको बड़े नगरोंमें नहीं भेज सकते हैं। कई छात्र बाहर जाकर अध्ययन करते हैं किन्तु वहाँ धार्मिक शिक्षा नहीं मिलती इससे नैतिक और धार्मिक शिक्षाकी कमी रह जाती है। फलतः सदाचरण—ऐहिक और पारलौकिक जीवनको सुधारनेवाली क्रियाओंका ज्ञान नहीं हो पाता, उनका परिपालन भी नहीं हो पाता। केवल विद्यालयसे काम रहता है। धनार्जनमात्रको पुरुषार्थ समझ उसीमें आयु व्यतीत कर देते हैं। धर्म पुरुषार्थको कल्पित, धोखेबाज पण्डितोंकी बिना पूँजीकी दुकान आदि तक कह देते हैं। आवश्यकता इस बातको है कि उन्हें धर्मकी शिक्षा दी जाय। ऐसी शिक्षा जिसमें पाखण्ड न हो, छल न हो, धूर्तता न हो, पौंगापन्थ या धर्मके नामपर रूढ़िवादिता न हो।

(६ । ३ । ५१)

४. धर्मके पिपासु जितने ग्रामीण जन होते हैं उतने नागरिक मनुष्य नहीं होते। देहातमें भोजन स्वच्छ तथा दूध घी शुद्ध मिलता है। शाक बहुत स्वादिष्ट तथा जलवायु भी उत्तम मिलती है किन्तु शिक्षाकी कमीसे अपने भावोंको अभिव्यक्त नहीं कर पाते। यदि एक दृष्टिसे देखा जावे तो उनमें आधुनिक शिक्षाका

प्रचार न होनेसे प्राचीन आर्यधर्ममें उनकी श्रद्धा है। तथा स्त्री समाजमें भी इस स्कूली और कालेजी शिक्षाके न होनेसे कार्य करनेकी कुशलता है। हाथसे पीसना, रोटी बनाना और अतिथिको दान देना आवश्यक समझती हैं। फिर भी शिक्षाकी आवश्यकता है। वह शिक्षा ऐसी हो जिससे मानवमें मानवता विकसित हो। यदि केवल धनोपार्जनकी ही शिक्षा भारतमें रही तो अन्य देशोंकी तरह भारत भी परको हड़पनेके प्रयत्नमें रहेगा। और जिन विषयोंसे मुक्त होना चाहता है उन्हींका पात्र हो जावेगा।

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

भारतमें विश्व बन्धुत्वकी भावनापूर्ण जो यह सिद्धान्त था वह बालकोंके हृदयमें शिक्षा द्वारा अङ्कित किया जाता था परन्तु अब तो जिनके बालक होते हैं उनके माँ बाप पहिले ही गुरुजीसे यह निवेदन कर देते हैं कि हमारे बालकको वह शिक्षा देना जिससे वह आनन्दसे रोटी खा सके। जिस देशमें बालकोंके पिता ऐसे विचारवाले हों वहाँ बालक विद्योपार्जनकर परोपकार निष्णात होंगे, असम्भव है।

●

३

विद्यार्थियोंको शुभ सन्देश

१. विद्यार्थी जीवनकी सार्थकता इसीमें है कि विद्यार्थी अपनी शक्तिका सदुपयोग करें। छात्रोंका जीवन तभी सार्थक हो सकता है जब वे अपने जीवनकी रक्षा और अपने बहुमूल्य

समयका सदुपयोग करें। बुद्धिका सदुपयोग ही उसका सच्चा विकास है। अन्यथा जिससे बाल्यकालमें ऐसी आशा थी कि यह यौवनावस्थामें संसारमें ऐसा प्रसिद्ध व्यक्ति होगा कि संसार का कल्याण करेगा, वह अपना ही कल्याण न कर सका! केवल गल्पवादके रसिक होनेसे छात्र जीवनकी सार्थकता नहीं है यह तो उसका अपव्यय है।

२. विद्यार्थीको सबसे पहिले शिक्षाका महत्त्व समझना चाहिए जिसके लिए वह घर द्वार सब छोड़कर यहाँ वहाँ दौड़ा दौड़ा फिरता है। शिक्षाके महत्त्वके सम्बन्धमें केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि शिक्षासे इस लोककी तो कथा ही छोड़ो परलोकमें भी सुख मिलता है। शिक्षाका स्वरूप ही प्राणियोंको सुख देना है क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा अमोघ मन्त्र है जो दुःखातुर संसारको सच्चा सुख प्रदान कर सकता है।

३. जितने संस्कृतके विद्वान् हैं वे तो अपने बालकोंको अर्थकरी विद्या (अँग्रेजी) पढ़ानेमें लगा देते हैं। जो बालक सामान्य परिस्थितिवालोंके हैं उनकी यह धारणा होती है कि संस्कृत विद्या पढ़नेसे कुछ लौकिक वैभव तो मिलता नहीं, पारलौकिक की आशा तब की जावे जब कुछ धनार्जन हो, अतः वे बालक भी संस्कृत पढ़नेसे उदास हो जाते हैं। रहे धनाढ्योंके बालक सो उनके अभिभावकोंके विचार ही ये रहते हैं कि हमको पंडित थोड़े ही बनाना है जो हमारे बालक संस्कृत पढ़नेके लिए दर दर भटकें। हमारे ऊपर जब धनकी कृपा है तब अनायास बीसों पण्डित हमारे यहाँ आते ही रहेंगे। अतः वे भी वही अर्थकरी विद्या (अंग्रेजी) पढ़ाकर बालकोंको दुकानदारीके धन्धेमें लगा देते हैं। इस तरह आजकल पाश्चात्य विद्याकी तरफ ही लोगोंका ध्यान है और जो आत्मकल्याणकी साधक संस्कृत और प्राकृत विद्या है उस ओर समाजका

लक्ष्य नहीं। परन्तु छात्रोंको इससे हताश नहीं होना चाहिये। यह सत्य कि लौकिक सुखोंके लिए पाश्चात्य विद्या (अँग्रेजी) का अभ्यास करके अनेक यत्नोंसे धनार्जन कर सकते हैं परन्तु लौकिक सुख स्थायी नहीं, नश्वर है अनेक आकुलताओंका घर है, इसलिए विद्यार्थियोंका कर्तव्य है कि वे प्राचीन संस्कृत विद्याके पारगामी पण्डित बनकर जनताके समक्ष वास्तविक तत्त्वके स्वरूपको रखें।

छात्र जीवनको सफल बनानेके लिए ये बातें ध्यान देने योग्य हैं—

१. परोपकारके अन्तस्तलमें यदि स्वोपकार निहित नहीं तब वह परोपकार निर्जीव है। विद्यार्थीका स्वोपकार उसका अध्ययन है अतः सर्वप्रथम उसीकी ओर ध्यान देना चाहिए। हमें प्रसन्नता इसी बातमें होगी कि विद्यार्थी बीचमें अपना पठन-पाठन न छोड़ें, जिस विषयको प्रारम्भ करें गम्भीरताके साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन करें, पठित विषय पर अपना पूर्ण अधिकार रखनेका प्रयास करें।

२. शारीरिक संस्कारोंसे अपनी प्रवृत्तिको कलुषित न होने दें। ब्रह्मचर्यके संरक्षणका पूर्ण ध्यान रखें।

३. अन्य सभी कामोंके पहले जितनी शिक्षा प्राप्त करना हो उसे पूर्ण करके ही दूसरे कार्य करनेका विचार करें।

४. छात्र जीवनमें सदाचार पर पूर्ण ध्यान दें।

५. स्वप्नमें भी दैन्यवृत्तिका समागम न होने दें।

६. अभिमानकी मात्रा मर्यादित न हो परन्तु साथ ही साथ स्वाभिमान जैसा धन भी सुरक्षित रहे।

७. गुरुके प्रति भक्ति हो, अभिप्राय निर्मल हो।

८. मनोवृत्तिदूषक साहित्य और चित्रपट देखनेसे दूर रहे।

९. उत्तम पुरुषोंके ही जीवनचरित अधिकांश पढ़ें। अधम पुरुषोंके भी जीवनचरित पढ़ें परन्तु उनके पढ़नेमें विधिनिषेध-ज्ञान अवश्य रखें।

१०. विद्याध्ययनके कालमें शक्ति और समयानुसार धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन अवश्य करें।

११. "सन्तोष सबसे बड़ा धन है" और "सादगी सबसे अच्छा जीवन है" इन बातोंका स्मरण रखें।

४

सदाचार

१. संसारके सभी सद्व्यवहारोंकी आधारशिला सदाचार है। सदाचार स्वर्गीय सौख्य सदनकी सुदृढ़ नींव है।

२. संसारकी समस्त सुन्दरता, श्रेष्ठता और सत्सामाजिकता यदि प्राप्त हो सकती है तो वह एकमात्र सदाचारसे ही।

३. यदि सदाचार है तो दुःखपूर्ण संसार भी स्वर्ग है और यदि असदाचार है तो सुखपूर्ण स्वर्ग भी नरक है।

४. सदाचार और असदाचार जीवनके दो मार्ग हैं। पहला मार्ग कुछ कठिन है परन्तु इस कठिनताके साथ सुख ही सुख है। दूसरा मार्ग बिलकुल सरल है परन्तु इस सरलताके साथ दुःख ही दुःख है।

५. सदाचार मानव जीवनके नन्दन काननका वह कल्पतरु है जिसमें श्रद्धा, ज्ञान और चारित्रकी तीन शाखाएँ निकलती हैं। और उन शाखाओंमेंसे दया, नम्रता, शुभाकांक्षा, कर्तव्यशीलता, दृढ़प्रतिज्ञा, इन्द्रियविजय, परोपकारपरायणता,

अध्यवसाय, सुस्वभाव, उदारता और प्रामाणिकताकी उपशाखाएँ निकलती हैं जिसमें विवेकके पल्लव, सद्भावनाके सुमन और स्वपर कल्याणके फल लगते हैं।

६. जिनके पास सदाचारकी सुनिधि है वे सच्चे अर्थमें पुण्यात्मा, महात्मा, एवं सम्मानित साहूकार हैं, जो इसके विपरीत हैं वे आजके अर्थमें साहूकार होने पर भी कर्जदार हैं; दिवालिया हैं।

७. अधिक सम्पत्ति सदाचारकी शिक्षिका नहीं,दुराचारकी दूती है।

८. सदा सत्कार्य करते रहना सदाचारके मार्ग पर चलना है।

९. सद्भावनाओं और सद्वासनाओंके बलपर जो नामवरी मिल सकती है वह बड़ी भारी सम्पत्ति और थोथी पराक्रमशीलताके बलपर नहीं मिल सकती।

१०. मानव जीवन राज्य है,मन उसका राजा है, इन्द्रियाँ उसकी सेना है, कषाय शत्रु हैं। यदि मन विवेकशील है तो इन्द्रियाँ सदा सचेत रहकर कषाय शत्रुओंको पराजित करती रहेंगी।

११. धार्मिकता, नीतिमत्ता, बुद्धिमत्ता और आत्मदृढ़ता यह सदाचारकी चार कसौटियाँ हैं।

१२. सदाचारी मनुष्यके लिए दृढ़ निश्चय, उत्साह, साहस और कर्तव्य जहाँ वरदान हैं वहाँ दुराचारी मनुष्यके लिए वे अभिशाप हैं।

१३. सदाचारी मनुष्य राष्ट्रकी वह आत्मा है जो अजर अमर रहता है। और दुराचारी मनुष्य राष्ट्रका वह शरीर है जिसे सदा सुरक्षित रखनेपर भी राजरोग लगे ही रहते हैं।

१४. सदाचारका प्रारम्भ राष्ट्रकी उन्नतिका प्रारम्भ है, दुराचारका प्रारम्भ राष्ट्र की अवनतिका प्रारम्भ है।

१५. अनुभवी वक्ताओंके भाषण तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका मूल सिद्धान्त एकमात्र सदाचारपूर्वक रहना सिखाता है।

१६. सदाचारके बिना सुख पानेका यत्न करना आकाशके पुष्पावचयनके सदृश है।

१७. जिस तरह मकान पक्का बनानेके लिये नींवका पक्का होना आवश्यक है, उसी तरह उज्ज्वल भविष्य निर्माणके लिये (आदर्श जीवनके लिये) बालजीवनके सुसंस्कार सदाचारादिका सुदृढ़ होना आवश्यक है।

१८. सभ्यता और असभ्यता विद्यासे नहीं जानी जाती। चाहे संस्कृत भाषाका विद्वान् हो, चाहे हिन्दी, अँग्रेजी या और किसी भाषाका विद्वान् हो। जो सदाचारी है वह सभ्य है, जो असदाचारी है वह असभ्य है। प्रत्युत बिना पढ़े लिखे भी जो सदाचारी हैं वे सभ्य हैं और बुद्धिमान भी यदि सदाचारी नहीं तो असभ्य हैं।

१९. सदाचार ही जीवन है। इसकी निरन्तर रक्षा करनेका प्रयत्न करो।

●

५

विनय

१. विनयका अर्थ नम्रता या कोमलता है। कोमलतामें अनेक गुण वृद्धि पाते हैं। यदि कठोर जमीनमें बीज डाला जाय तो व्यर्थ चला जायगा। पानीकी बारिसमें जो जमीन कोमल हो

जाती है उसीमें बीज जमता है। बच्चेको प्रारम्भमें पढ़ाया जाता है—

"विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥"

"विद्या विनयको देती है, विनयसे पात्रता आती है, पात्रता से धन मिलता है, धनसे धर्म और धर्मसे सुख प्राप्त होता है।"

जिसने अपने हृदयमें विनय धारण नहीं किया वह धर्मका अधिकारी कैसे हो सकता है?

२. विनयी छात्र पर गुरुका इतना आकर्षण रहता है कि वह उसे एक साथ सब कुछ बतलानेको तैयार रहता है।

३. आजकी बात क्या कहें? आज तो विनय रह ही नहीं गया। सभी अपने आपको बड़ेसे बड़ा अनुभव करते हैं। मेरा मान नहीं चला जाय इसकी फिकरमें पड़े रहते हैं, पर इस तरह किसका मान रहा है? आप किसीको हाथ जोड़कर या सिर झुकाकर उसका उपकार नहीं करते बल्कि अपने हृदयसे मानरूपी शत्रुको हटाकर अपने आपका उपकार करते हैं। किसीने किसी की बात मान ली, उसे हाथ जोड़ लिये, सिर झुका दिया, इतनेसे ही वह प्रसन्न हो जाता है और कहता है कि इसने मान रख लिया। तुम्हारा मान क्या रख लिया; अपना अभिमान खो दिया, अपने हृदयमें जो अहंकार था उसने उसे अपने शरीरकी क्रियासे दूर कर दिया।

४. विनयके सामने सब सुख धूल है। इससे आत्माका महान् गुण जागृत होता है, विवेक शक्ति जागृत होती है। आज कल लोगोंमें विनयकी कमी है, इसलिये हर एक बातमें क्यों क्यों करने लगते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि उनमें श्रद्धाके न होनेसे विनय नहीं है अतः हर एक बात में कुतर्क उठाया करते हैं।

एक आदमीको "क्यों" का रोग हो गया, जिससे बेचारा बड़ा परेशान हुआ। पूछने पर किसीने उसे सलाह दी कि तूँ इसे किसीको बेच डाल, भले ही सौ पचास रुपये लग जांय। बीमार आदमी इस विचारमें पड़ा कि यह रोग किसे बेचा जाय। किसीने सलाह दी—स्कूलके लड़के बड़े चालाक होते हैं, अतः ५०) देकर किसी लड़केको यह रोग दे दो। उसने ऐसा ही किया। एक लड़केने ५०) लेकर उसका वह "क्यों" रोग ले लिया; सब लड़कोंने मिल कर ५०) की मिठाई खाई। जब लड़का मास्टर के पास पहुँचा, मास्टरने कहा—"कलका पाठ सुनाओ" लड़काने कहा—क्यों ? मास्टरने कान पकड़ कर लड़केको स्कूलके बाहर निकाल दिया। लड़केने सोचा कि यह "क्यों" रोग तो बड़ा बुरा है। वह अस्पतालके किसी मरीजको बेच दिया जाय तो अच्छा है। ये लोग तो पलंग पर पड़े पड़े आराम करते ही हैं ऐसा ही किया, एक मरीजको वह रोग सौंप दिया। दूसरे दिन जब डाक्टर आये तब उन्होंने मरीजसे पूछा—"तुम्हारा क्या हाल है?" मरीजने उत्तर दिया "क्यों"। डाक्टरने उसे अस्पतालसे बाहर किया, रोगीकी समझमें आया कि वास्तवमें "क्यों" रोग तो एक खतर-नाक वस्तु है, वह भी वपिस कर आया। अबकी बार उसने सोचा अदालती आदमी बहुत टंच होते हैं, इसलिए उन्हींको यह रोग दिया जाय, उसने ऐसा ही किया। परन्तु जब वह अदालती आदमी मजिस्ट्रेटके सामने गया, मजिस्ट्रेटने कहा—"तुम्हारी नालिशका ठीक ठीक मतलब क्या है ?" आदमीने उत्तर दिया "क्यों"। मजिस्ट्रेटने मुकदमा खारिज कर उसे

अदालतसे निकाल दिया।

इस उदाहरणसे सिद्ध है कि कुतर्कसे काम नहीं चलता। अतः आवश्यक है कि मनुष्य दूसरेके प्रति कुतर्क न करें अपितु श्रद्धा रखें जिससे कि उसके हृदयमें विनय जैसा गुण जागृत हो।

सफलताके साधन

[युवक-युवतियोंके लिये]

•

१

सफलताके साधन

कार्योंकी विविधताके समान सफलता भी अनेक तरहकी है। परन्तु उन सभी सफलताओंका उद्देश्य "जीवन सुखी रहे" यही है, और उसके साधन ये हैं—

१. सदा सत्य बोलो, किसीके प्रभाव बहकाव या दबावमें आकर झूठ मत बोलो।

२. निर्भीकतासे रहो।

३. किसीसे आर्थिक या किसी भी तरहके लाभकी आशा मत करो।

४. किसीसे यशकी आशा मत करो।

५. किसीसे अन्न, वस्त्र या किसी भी पदार्थकी याचना मत करो।

६. जिस कार्यके लिये हृदय सहमत हो, यदि वह शुभ कार्य है तो अवश्य करो।

७. स्वीय रागादिक मेटनेकी चेष्टा करो।

८. परकी प्रशंसा या निन्दासे स्वरूप पराङ्मुखता न हो जावे इस ओर निरन्तर सतर्क रहो।

९. मन और इन्द्रियोंको सदा अपने वशमें रखो।

१०. मनके अनुकूल होनेपर भी प्रकृतिके प्रतिकूल कोई भी कार्य मत करो।

११. कहनेकी प्रकृति छोड़ो, करनेका अभ्यास करो।

१२. किसी कायको देखकर भय मत करो। उपायसे महान्-से महान् कार्य भी सहजमें हो जाते हैं।

१३. जो कुछ करना चाहते हो धीरता और सतत प्रयत्न-शीलतासे करो।

१४. जिस कार्यसे आत्मामें आकुलता न हो उस कार्यको ही कर्तव्यपथमें लानेका प्रयत्न करो।

१५. किसीको मत सताओ और दूसरोंको अपने समान समझो।

●

२

ब्रह्मचर्य

१. ब्रह्मचर्य शब्दका अर्थ "आत्मामें रमण करना है।" परन्तु आत्मामें आत्माका रमण तभी हो सकता है जब कि चित्त-वृत्ति विषय वासनाओंसे निर्लिप्त हो, विषयाशासे रहित होकर एकाग्र हो। इस अवस्थाका प्रधान साधक वीर्यका संरक्षण है अतः वीर्यका संरक्षण ही ब्रह्मचर्य है।

२. आत्मशक्तिका नाम वीर्य है, इसे सत्त्व भी कहते हैं। जिस मनुष्यके शरीरमें वीर्य शक्ति नहीं वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं, बल्कि लोकमें उसे नपुंसक कहा जाता है।

३. आयुर्वेदके सिद्धान्तानुसार शरीरमें सप्त धातुएँ होती हैं—१ रस, २ रक्त, ३ माँस, ४ मेदा, ५ हड्डी ६ मज्जा और ७ वीर्य। इनका उत्पत्तिक्रम रससे रक्त, रक्तसे माँस, माँससे मेदा, मेदासे हड्डी, हड्डीसे मज्जा और मज्जासे वीर्य बनता है। इस उत्पत्ति क्रमसे स्पष्ट है कि छठवीं मज्जा धातुसे बननेवाली सातवीं शुद्ध धातु वीर्य है। अच्छा स्वस्थ मनुष्य जो आधा सेर

भोजन प्रतिदिन अच्छी तरह हजम कर सकता है वही ८० दिनमें ४० सेर याने एक मन अनाज खाने पर केवल एक तोला शुद्ध धातु वीर्यका सञ्चय कर सकता है। इस हिसाबसे एक दिनका सञ्चय केवल १। सवा रत्तीसे कुछ कम ही पड़ता है। इसलिए यह कहा जाता है कि हमारे शरीरमें वीर्य शक्ति ही सर्वश्रेष्ठ शक्ति है, वही हमारे शरीरका राजा है। जिस तरह राजाके बिना राज्यमें नाना प्रकारके अन्याय मार्गोंका प्रसार होनेसे राज्य निरर्थक हो जाता है उसी तरह इस शरीरमें इस वीर्य शक्तिके बिना शरीर निस्तेज हो जाता है, वह नाना प्रकारके रोगोंका आरामगृह बन जाता है। अतः इस अमूल्य शक्तिके संरक्षणकी ओर जिनका ध्यान नहीं वे न तो लौकिक कार्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं और न पारमार्थिक कार्य करनेमें समर्थ हो सकते हैं।

४. ब्रह्मचर्य संरक्षणके लिए न केवल विषय भोगका निरोध आवश्यक है अपि तु तद्विषयक वासनाओं और साधन सामग्रीका निरोध भी आवश्यक है। १ अपने रागके विषयभूत स्त्री पुरुषका स्मरण करना, २ उनके गुणोंकी प्रशंसा करना, ३ साथमें खेलना, ४ विशेष अभिप्रायसे देखना, ५ लुक छिपकर एकान्तमें वार्तालाप करना, ६ विषय सेवनका विचार और ७ तद्विषयक अध्यवसाय ब्रह्मचर्यके घातक होनेसे विषय सेवनके सदृश ही हैं। इसीलिए आचार्योंने ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेको स्त्रियोंके सम्पर्कसे दूर रहनेका आदेश दिया है। यहां तक कि स्त्री समागमको ही संसार-वृद्धिका मूल कारण कहा है, क्योंकि स्त्री-समागम होते ही पाँचों इन्द्रियोंके विषय स्वयमेव पुष्ट होने लगते हैं। प्रथम तो उसके रूपको निरन्तर देखनेकी अभिलाषा बनी रहती है। वह निरन्तर सुन्दर रूपवाली बनी रहे, इसके

लिए अनेक प्रकारके उपटन, तेल आदि पदार्थोंके संग्रहमें व्यस्त रहता है। उसका शरीर पसेव आदिसे दुर्गन्धित न हो जाय, अतः निरन्तर चन्दन, तेल, इत्र आदि बहुमूल्य वस्तुओंका संग्रहकर उस पुतलीकी सम्हालमें संलग्न रहता है। उसके केश निरन्तर लंबायमान रहें अतः उनके लिये नाना प्रकारके गुलाब, चमेली, केवड़ा आदि तेलोंका संग्रह करता है तथा उसके सरस कोमल, मधुर शब्दोंका श्रवणकर अपनेको धन्य मानता है और उसके द्वारा सम्पन्न नाना प्रकारके रसास्वाद लेता हुआ फूला नहीं समाता है। उसके कोमल अंगोंको स्पर्शकर आत्मीय ब्रह्म-चर्यका और वाह्यमें शरीर-सौंदर्यका कारण वीर्यका पात होते हुए भी अपनेको धन्य मानता है। इस प्रकार स्त्री समागमसे ये मोही पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें मकड़ीके जालकी तरह फँस जाते हैं। इसीलिये ब्रह्मचर्यको असिधारा व्रत, महान् धर्म और महान् तप कहा है।

५. धर्म साधनका कारण मनुष्यका स्वस्थ शरीर कहा गया है। इसलिए ही नहीं अपि तु जीवनके संरक्षण और उसके आदर्श निर्माणके लिये भी जो १ शान्ति, २ कान्ति, ३ स्मृति, ४ ज्ञान, ५ निरोगिता जैसे गुण आवश्यक हैं उनकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यका पालन नितान्त आवश्यक है।

६. यह कहते हुए लज्जा आती है, हृदय दुःखसे द्रवीभूत हो जाता है कि जिस अद्भुत वीर्य शक्तिके द्वारा हमारे पूर्वजों ने लौकिक और पारमार्थिक कार्यकर संसारके संरक्षणका भार उठाया था, आजकल उस अमूल्य शक्तिका बहुत ही निर्विचार-के साथ ध्वंस किया जा रहा है। आजसे १००० वर्ष पहिले इसकी रक्षाका बहुत ही सुगम उपाय था—ब्रह्मचर्यको पालन करते हुए बालकगण गुरुकुलोंमें वासकर विद्योपार्जन करते

थे। आजकी तरह उन दिनों चमक-दमक प्रधान विद्यालय न थे और न आज जैसा वह वातावरण ही था। उन्नतिका जहाँ तक प्रश्न है प्रगतिशीलता साधक है परन्तु वह प्रगतिशीलता खटकनेवाली है जिससे रागकी वृद्धि और आत्माका घात होता हो। माना कि आजकलके विद्यालयोंमें वैसे शिक्षक नहीं जिनके अवलोकन मात्रसे शान्तिकी उद्भूति हो। छात्रों पर वह पुत्र प्रेम नहीं जिसके कारण छात्रोंमें गुरु आदेश पर मर मिटनेकी भावना हो, और न छात्रोंमें वह गुरुभक्ति है जिसके नाम पर विद्यार्थी असम्भवको संभव कर दिखाते थे। इसका कारण यही था कि पहलेके गुरु छात्रोंको अपना पुत्र ही समझते थे। अपने पुत्रके उज्ज्वल भविष्य निर्माणके लिए जिन संस्कारों और जिस शिक्षाकी आवश्यकता समझते थे वही अपने शिष्योंके लिए भी करते थे। परन्तु अब तो पांसे उलटे ही पड़ने लगे हैं! अन्य बातोंको जाने दीजिये शिक्षामें भी पक्षपात होने लगा है। गुरुजी अपने सुपुत्रोंको अंग्रेजी पढ़ाना हितकर समझते हैं तब अपने शिष्यों (दूसरोंके लड़कों) को संस्कृत पढ़ाते हैं! भले ही संस्कृत आत्मकल्याण और उभय लोकमें सुखकारी है परन्तु इस विषम वातावरणसे उस आदर्श संस्कृत भाषा और उस अतीतके आदर्शों पर छात्रोंकी अश्रद्धा होती जाती है जिससे वे अपनेको योग्य बना सकते हैं। आवश्यक यह है कि गुरु शिष्य पुनः अपने कर्तव्योंका पालन करें जिससे प्रगतिशील युगमें उन आदर्शोंको भी प्रगति हो, विद्यालयोंके विशाल प्राङ्गणोंमें ब्रह्मचारी बालक खेलते कूदते नजर आवें और गुरुवर्ग उनके जीवन निर्माता और सच्चे शुभचिन्तक बनें।

७. ब्रह्मचर्य साधनके लिए व्यायाम द्वारा शरीरके प्रत्येक अङ्गको पुष्ट और संगठित बनाना चाहिये। सादा भोजन और

व्यायामसे शरीर ऐसा पुष्ट होता है कि वृद्धावस्था तक सुदृढ़ बना रहता है। जो भोजन हम करते हैं उसे जठराग्नि पचाती है फिर उसका धातु उत्पत्ति क्रमानुसार रसादि परम्परासे वीर्य बनता है। इस तरह वीर्य और जठराग्निमें परस्पर सम्बन्ध है—एक दूसरेके सहायक हैं। इन्हींके अधीन शरीरकी रक्षा है, इनकी स्वस्थतामें शरीरकी स्वस्थता है। प्राचीन समयमें इसी अखण्ड ब्रह्मचर्यके बलसे मनुष्य बद्धवीर्य ऊर्ध्वरेता कहे जाते थे।

८. जिस शक्तिको छात्रवृन्द अहर्निश अध्ययन कार्यमें लाते हैं वह मेधा शक्ति भी इसी शक्तिके प्रसादसे बलवती रहती है, इसीके बलसे अभ्यास अच्छा होता है, इसीके बलसे स्मरण शक्ति अद्भुत बनी रहती है। स्वामी अकलङ्कदेव, स्वामी विद्यानन्दि, महाकवि तुलसीदास, भक्त सूरदास और पण्डित-प्रवर टोडरमलकी जो विलक्षण प्रतिभा थी वह इसी शक्तिका वरदान था।

९. आजकल माता पिताका ध्यान सन्तानके सुसंस्कारोंकी रक्षाकी ओर नहीं है। धनाढ्यसे धनाढ्य भी व्यक्ति अपने बच्चोंको जितना अन्य आभूषणोंसे सज्जित एवं अन्य वस्तुओंसे सम्पन्न देखनेकी इच्छा रखते हैं उतना सदाचारादि जैसे गुणोंसे विभूषित और शील जैसी सम्पत्तिसे सम्पन्न देखनेकी इच्छा नहीं रखते। प्रस्तुत उसके विरुद्ध ही शिक्षा दिखाते हैं जिससे कि सुकुमारमति बालकको सुसंगतिकी अपेक्षा कुसङ्गतिका प्रश्रय मिलता है। फल स्वरूप वे दुराचरणके जाल में फँसकर नाना प्रकारकी कुत्सित चेष्टाओं द्वारा शरीरकी संरक्षण शक्तिका ध्वंस कर देते हैं। दुराचारसे हमारा तात्पर्य केवल असदाचरणसे नहीं है किन्तु १—आत्माको विकृत

करनेवाले नाटकोंका देखना, २—कुत्सित गाने सुनना, ३—शृङ्गार-वर्धक उपन्यास पढ़ना, ४—बाल विवाह (छोटे छोटे वर कन्या का विवाह), ५—वृद्ध विवाह और ६—अनमेल विवाह (वर छोटा कन्या बड़ी, या कन्या छोटी वर बड़ा) जैसे सामाजिक और वैयक्तिक पतनके कारणोंसे भी है।

मेरी समझमें इन घृणित दुराचारोंको रोकनेका सर्व श्रेष्ठ उपाय यही है कि माता पिता अपने बच्चोंको सबसे पहिले सदाचारके संस्कारसे ही विभूषित करनेकी प्रतिज्ञा करें। सदाचार एक ऐसा आभूषण है जो न कभी मैला हो सकता है, न कभी खो सकता है। वह व्यक्तिके साथ छायाकी तरह सदा साथ रहता है। बालक ही वे युवक होते हैं जो एक दिन पिताका भार ग्रहण कर कुटुम्बमें धर्मपरम्परा चलाते हैं, बालक ही वे नेता होते हैं जो समाजका नेतृत्व कर उसे नवीन जीवन और जागृति प्रदान करते हैं, यहाँ तक कि बालक ही वे महर्षि होते हैं जो जनताको कल्याण पथका प्रदर्शन कर शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त करानेमें सहायक बनते हैं।

१०. गृहस्थोंके संयममें सबसे पहले इन्द्रिय संयमको कहा है। उसका कारण यही है कि ये इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं कि वे आत्माको हठात् विषयकी ओर ले जाती हैं, मनुष्यके ज्ञानादि गुणोंको तिरोहित कर देती हैं, स्वीय विषयके साधन निमित्त मनको सहकारी बनाती हैं, मनको स्वामीके बदले दास बना लेती हैं। इन्द्रियोंको यह सबलता आत्मकल्याणमें बाधक है, अतः उनका निग्रह अत्यावश्यक है। उपाय यह है कि सर्व प्रथम इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति ही उस ओर न होने दो। परन्तु यदि जब कोई इन्द्रियका समभिधान हो रहा है, कोई प्रतिबन्धक कारण विषय निवारक नहीं है और आप उसके ग्रहण करनेके लिए तत्पर हो गये हैं तो उसी समय आपका कार्य है कि इन्द्रियको विषयसे

हटाओ। उसे यह निश्चय करा दो कि तेरी अपेक्षा मैं ही बलशाली हूँ, तुझे विषय ग्रहण न करने दूँगा। जहाँ दस पाँच अवसरों पर आपने इस तरह विजय पा ली, अपने आप इन्द्रियाँ आपके मनके अधीन हो जावेंगी। जिस विषय सेवन करनेसे आपका उद्देश्य काम तृप्त करनेका था वह दूर होकर शरीर रक्षाकी ओर आपका ध्यान आकर्षित हो जायगा। उस समय आपकी यह दृढ़ भावना होगी कि मेरा स्वभाव तो ज्ञाता-द्रष्टा है, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यवाला है। केवल इन कर्मोंने इस प्रकार जकड़ रखा है कि मैं निज परणतिका परित्याग कर इन विषयों द्वारा तृप्ति चाहता हूँ। यह विषय कदापि तृप्ति करनेवाले नहीं। देखनेमें तो किंपाक सदृश मनोहर प्रतीत होते हैं किन्तु परिपाकमें अत्यन्त विरस और दुःख देनेवाले हैं। मैं व्यर्थ ही इनके वश होकर नाना दुखोंकी खनि हो रहा हूँ। इस तरहको भावनाओंसे जीवनमें एक नवीन स्फूर्ति और शुभ भावनाओंका सञ्चार होता है, विषयोंकी ओर प्रवृत्ति होती है।

११. जिन उत्तम और कुलशीलधारक प्राणियोंने गृहस्थावस्थामें उदासीनवृत्ति अवलम्बन कर विषय सेवन किए वे महानुभाव उस उदासीनताके बलसे इस परम पदके अधिकारी हुए। श्री भरत चक्रवर्तीको अन्तर्मुहूर्तमें ही अनन्त चतुष्टय लक्ष्मीने संवरण किया। वह महनीय पद प्राप्ति इसी भावनाका फल है। ऐसे निर्मल पुरुष जो विषयको केवल रोगवत् जान उपचारसे औषधिवत् सेवन करते हैं उन्हें यह विषयाशा नागिन कभी नहीं डँस सकती।

१२. संसारमें जो व्यक्ति काम जैसे शत्रु पर विजय पा लेते हैं वही शूर हैं। उन्हींकी शुभ कामनाओंके उदयाचल पर दिव्य ज्योति तीर्थंकर सूर्यका उदय होता है जिसके उदय होते ही अनादिकालीन मिथ्यान्धकार ध्वस्त हो जाता है।

१३. ब्रह्मचर्य एक ऐसा व्रत है जिसके पालनेसे सम्पूर्ण व्रतोंका समावेश उसीमें हो जाता है तथा सभी प्रकारके पापोंका त्याग भी व्रतके पालनेसे हो जाता है। विचार कर देखिये जब स्त्री सम्बन्धी राग घट जाता है तब अन्य परिग्रहोंसे सहज ही अनुराग घट जाता है, क्योंकि वास्तवमें स्त्री ही घर है, घास-फूस, मिट्टी चूना आदिका बना हुआ घर घर नहीं कहलाता। अतः इसके अनुराग घटानेसे शरीरके शृङ्गारादि अनुराग स्वयं घट जाते हैं। माता-पिता आदिसे स्नेह स्वयं छूट जाता है। द्रव्यादिकी वह ममता भी स्वयमेव छूट जाती है जिसके कारण गृहबन्धनसे छूटनेमें असमर्थ भी स्वयमेव विरक्त होकर दैगम्बरी दीक्षाका अवलम्बन कर मोक्षमार्गका पथिक बन जाता है।

१४. ब्रह्मचर्यके साधकको मुख्यतया इन बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये—

१. प्रातः ४ बजे उठकर धार्मिक स्तोत्रका पाठ और भगवन्नामस्मरण करनेके अनन्तर ही अन्य पुस्तकोंका अध्ययन पर्यटन या गृह कार्य किया जाय।

२. सूर्य निकलनेके पहले ही शौचादिसे निवृत्त होकर खुले मैदानमें अपनी शारीरिक शक्ति और समयानुसार दण्ड, बैठक, आसन, प्राणायाम आदि आवश्यक व्यायाम करे।

३. व्यायामके अनन्तर एक घण्टा विश्रान्तिके उपरान्त ऋतुके अनुसार ठंडे या गरम जलसे अच्छी तरह स्नान करे। स्नानके अनन्तर एक घण्टा देव पूजा और शास्त्र स्वाध्याय आदि धार्मिक कार्य कर दस बजेके पहिले तकका जो समय शेष रहे उसे अध्ययन आदि कार्योंमें लगावे।

४. दस बजे निर्द्वन्द्व होकर शान्त चित्तसे भोजन करे। भोजन सादा और सात्त्विक हो। भोजनमें लाल मिर्च आदि

उत्तेजक, रबड़ी मलाई आदि गरिष्ठ एवं अन्य किसी भी तरहके चटपटे पदार्थ न हों।

५. भोजनके बाद आध घण्टे तक या तो खुली हवामें पर्यटन करे या पत्रावलोकन आदि ऐसा मानसिक परिश्रम करे जिसका भार मस्तिष्क पर न पड़े। बादमें अपने अध्ययनादि कार्यमें प्रवृत्त हो।

६. सायंकाल चार बजे अन्य कार्योंसे स्वतन्त्र होकर शौचादि दैनिक क्रियासे निवृत्त होनेके पश्चात् ऋतुके अनुसार पाँच या साढ़े पाँच बजे तक सूर्यास्तके पहिले पहिले भोजन करे।

७. भोजनके पश्चात् एक घण्टे खुली हवामें पर्यटन करे। तदनन्तर दस बजे तक अध्ययनादि कार्य करे।

८. दस बजे सोनेके पूर्व ठण्डे जलसे घुटनों तक पैर और ऋतु अनुकूल हो तो शिर भी धोकर स्तोत्र पाठ या भगवन्नामस्मरण करके शयन करे।

९. सदा अपने कार्यसे कार्य रखे, व्यर्थ विवादमें न पड़े।

१०. अपने समयका एक-एक क्षण अमूल्य समझ उसका सदुपयोग करे।

११. मनोवृत्ति दूषक साहित्य, नाटक, सिनेमा आदिसे दूर रहे।

१२. दूसरोंकी माँ बहिनोंको अपनी माँ बहिन समझे।

१३. "सत्संगति और विनय जीवनकी सफलताका अमोघ मन्त्र है" इसे कभी न भूले।

१४. जिनका विद्यार्थी या उदासीन जीवन नहीं है अपितु गृहस्थ जीवन है वे भी उक्त ब्रह्मचर्यके साधक नियमोंको

ध्यानमें रखते हुए पर्वके दिनमें ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर अपने शरीरका संरक्षण करें।

१५. सबसे अच्छी रामबाण औषधि ब्रह्मचर्य है, अतः उसके संरक्षणका सदा ध्यान रखें।

●

३

तीन बल

सांसारिक आत्मामें तीन बल होते हैं—१ कायिक २ वाचनिक और ३ मानसिक। जिनके वे बलिष्ठ होते हैं वे ही जीवनका वास्तविक लाभ ले सकते हैं।

कायबल

१. जिनका कायबल श्रेष्ठ है वे ही मोक्ष पथके पथिक बन सकते है। इस प्रकार जब मोक्षमार्गमें भी कायबलकी श्रेष्ठता आवश्यक है तब सांसारिक कार्य इसके बिना कैसे हो सकते हैं।

२. प्राचीन महापुरुषोंने जो कठिनसे कठिन आपत्तियाँ और उपसर्ग सहन किये वे कायबलकी श्रेष्ठता पर ही किये, अतः शरीरको पुष्ट रखना आवश्यक है, किन्तु इसीके पोषणमें सब समय न लगाया जावे। दूसरेकी रक्षा स्वात्मरक्षाकी ओर दृष्टि रखकर ही की जाती है, अपने आपको भूलकर नहीं।

वचनबल

३. जिनमें वचन बल था उन्हींके द्वारा आज तक मोक्ष मार्गकी पद्धतिका प्रकाश हो रहा है, और उन्हींकी अकाट्य युक्तियों और तर्कों द्वारा बड़े-बड़े वादियोंका गर्व दूर हुआ है।

४. वचनबलकी ही ताकत है कि एक वक्ता व गायक अपने भाषण या गायनसे श्रोताओंको मुग्ध करके अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। जिनके वचनबल नहीं वह मोक्षमार्गकी प्राप्ति करनेमें अक्षम होता है।

मनोबल

५. मनोबलमें वह शक्ति है जो अनन्तजन्मार्जित कलङ्कोंकी कालिमाको एक क्षणमें पृथक् कर देती है।

६. जिनसे आत्महितकी सम्भावना है उसे कष्ट मत दो। आत्महितका मूल कारण सद्विचार है और उसका उत्पादक मन है, अतः उसे प्रत्येक कार्य करनेसे रोको। यदि वह दुर्बल हो जायगा तो आत्महित करनेमें अक्षम हो जाओगे।

७. सब दोषोंमें प्रबल दोष मनकी दुर्बलता है। जिनका मन दुर्बल है वे अति भीरु हैं और भीरु मनुष्यके लिए संसारमें कोई स्थान नहीं।

८. मनोबलकी विशुद्धताका ही परिणाम है कि जिसके द्वारा यह प्राणी शुभ भावनाओं द्वारा अनुपम तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्धकर संसारका उद्धार करनेमें समर्थ होता है।

९. अन्तरङ्ग तपमें सर्वप्रथम मनोबलकी बड़ी आवश्यकता है। मनोबल उसीका प्रशंसनीय है जो प्रपञ्च और बाह्य पदार्थोंके संसर्गसे अपनी आत्माको दूर रखता है।

१०. जिनके तीनों बल श्रेष्ठ हैं वे इस लोकमें सुखी हैं और परलोकमें भी सुखी रहेंगे।

११. संसारमें जितने व्यापार हैं वे सब मनोबल पर अवलम्बित हैं। मनोबल ही बल है। इसके बिना असैनी जीवोंमें सम्यग्दर्शनकी योग्यता नहीं।

हमारा कर्त्तव्य

वर्तमानमें हम लोग कषायसे दग्ध हो रहे हैं जिससे तीनों बलकी रक्षाका एक भी उपाय हमारे पास नहीं है। कायकी ओर दृष्टिपात करनेसे यह अनायास समझमें आ जाता है कि हमने कायबलकी तो रक्षा की ही नहीं शेष दो बलोंकी भी रक्षा नहीं की।

शारीरिक बलका कारण माता पिताका शरीर है। हमारी जातिके रिवाजने बालविवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह और कन्या विक्रयको जन्म दिया जिससे समाजका ही नहीं वरन् धर्मका भी ह्रास हुआ। यदि वे कुरीतियाँ न होतीं तो बलिष्ठ सन्ततिकी वह परम्परा चलती जो दूसरोंके लिए आदर्श होती और जिससे वचनबल और मनोबलकी श्रेष्ठताकी भी रक्षा होती।

जिस समाज में इन तीनों बलोंकी रक्षा नहीं की जाती वह समाज जीवित रहते हुए भी मृतप्राय है। हमें आशा है कि सबका ध्यान इस ओर जायगा और वे अपनी सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक परम्पराको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए निम्न विचारोंको कार्य रूपमें परिणत करेंगे—

१. बाल विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह और कन्याविक्रय या वरविक्रय जैसी घातक दुष्ट प्रथाओंका बहिष्कार करना।

२. माता पिताका आदर्श सदाचारी गृहस्थ होना।

३. अपने बालकोंको सदाचारी बनाना।

४. सन्ततिको सुशिक्षित बनाना।

५. बालकोंमें ऐसी भावना भरना जिससे वे बचपनसे ही देश, जाति और धर्मकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझें।

●

४

स्वाध्याय

१. स्वाध्याय संसार सागरसे पार करनेको नौकाके समान है, कषाय अटवीको दग्ध करनेके लिये दावानल है, स्वानुभव समुद्रकी वृद्धिके लिये पूर्णिमाका चन्द्र है। भव्य कमल विकसित करनेके लिये भानु है, और पाप उलूकको छिपानेके लिये प्रचण्ड मार्तण्ड है।

२. स्वाध्याय ही परम तप है, कषाय निग्रहका मूल कारण है, ध्यानका मुख्य अङ्ग है, शुक्लध्यानका हेतु है, भेदज्ञानके लिये रामवाण है, विषयोंमें अरुचि करानेके लिये मलेरिया सदृश है, आत्मगुणोंका संग्रह करनेके लिये राजा तुल्य है।

३. सत्समागमसे भी स्वाध्याय विशेष हितकर है। सत्स-मागम आस्रवका कारण है जब कि स्वाध्याय स्वात्माभिमुख होनेका प्रथम उपाय है। सत्समागममें प्रकृति विरुद्ध भी मनुष्य मिल जाते हैं परन्तु स्वाध्यायमें इसकी भी सम्भावना नहीं, अतः स्वाध्यायकी समानता रखने वाला अन्य कोई नहीं।

४. स्वाध्यायकी अवहेलना करनेसे ही हम दैन्यवृत्तिके पात्र और तिरस्कारके भाजन हुए हैं।

५. कल्याणके मार्गमें स्वाध्याय प्रधान सहकारी कारण है।

६. स्वाध्यायसे उत्कृष्ट और कोई तप नहीं।

७. स्वाध्याय आत्मशान्तिके लिये है, केवल ज्ञानार्जनके लिये नहीं। ज्ञानार्जनके लिये तो विद्याध्ययन है। स्वाध्याय तप है। इससे संवर ओर निर्जरा होती है।

८. स्वाध्यायका फल निर्जरा है, क्योंकि यह अन्तरङ्ग तप

है। जिनका उपयोग स्वाध्यायमें लगता है वे नियमसे सम्यग्दृष्टि हैं।

९. आगमाभ्यास ही मोक्षमार्गमें प्रधान कारण है। वह होकर भी यदि अन्तरात्मासे विपरीताभिप्राय न गया तब वह आगमाभ्यास अन्धेके लिये दीपककी तरह व्यर्थ है।

१०. शास्त्राध्ययनमें उपयुक्त आत्मा कर्म बन्धनसे शीघ्र मुक्त होता है।

११. सम्यग्ज्ञानका उदय उसी आत्माके होता है जिसका आत्मा मिथ्यात्व कलङ्क कालिमासे निर्मुक्त हो जाता है। वह कालिमा उसीकी दूर होती है जो अपनेको तत्त्व भावनामय बनानेके लिये सदा स्वाध्याय करता है।

१२. शारीरिक व्याधियोंकी चिकित्सा डाक्टर और वैद्य कर सकते हैं लेकिन सांसारिक व्याधियोंकी रामबाण चिकित्सा केवल श्री वीतराग भगवान्‌की विशुद्ध वाणी ही कर सकती है।

१३. स्वाध्यायका मर्म जानकर आकुलता नहीं होनी चाहिए। आकुलता मोक्षमार्गमें साधक नहीं, साधक तो निराकुलता है।

१४. स्वाध्याय परम तप है।

१५. मनुष्यको हितकारिणी शिक्षा आगमसे मिल सकती है या उसके ज्ञाता किसी स्वाध्यायप्रेमीके सम्पर्कसे मिल सकती है।

१६. तात्त्विक विचारकी यही महिमा है कि यथार्थ मार्ग पर चले।

१७. एक वस्तुका दूसरी वस्तुसे तादात्म्य नहीं। पदार्थकी कथा छोड़ो, एक गुणका अन्य गुणसे और एक पर्यायका अन्य पर्यायसे कोई सम्बन्ध नहीं। इतना जानते हुए भी परके विभावों द्वारा की गई स्तुति निन्दा पर हर्ष विषाद करना सिद्धान्त पर अविश्वास करनेके तुल्य है।

१८. जो सिद्धान्तवेत्ता हैं वे अपथ पर नहीं जाते। सिद्धान्त-वेत्ता वही कहलाते हैं जिन्हें स्वपर ज्ञान है। तथा वे ही सच्चे वीर और आत्मसेवी हैं।

१९. शास्त्रज्ञान और बात है और भेदज्ञान और बात है। त्याग भेदज्ञानसे भी भिन्न वस्तु है। उसके विना पारमार्थिक लाभ होना कठिन है।

२०. कल्याणके इच्छुक हो तो एक घंटा नियमसे स्वाध्यायमें लगाओ।

२१. कालके अनुसार भले ही सब कारण विशुद्ध मिलें फिर भी स्वाध्यायप्रेमी तत्त्वज्ञानीके परिणामोंमें सदा शान्ति रहती है, क्योंकि आत्मा स्वभावसे शान्त है, वह केवल कर्म कलङ्क द्वारा अशान्त हो जाता है। जिस तत्त्वज्ञानी जीवके अनन्त संसारका कारण कर्म शान्त हो गया है वह संसारके वास्तविक स्वरूपको जानकर न तो किसीका कर्ता बनता है और न भोक्ता ही होता है, निरन्तर ज्ञानचेतनाका जो फल है उसका पात्र रहता है। उपयोग उसका कहीं रहे परन्तु वासना इतनी निर्मल है कि अपना संसारका उच्छेद उसके हो ही जाता है। निरन्तर अपनेको निर्मल रखिये, स्वाध्याय कीजिए, यही संसार-बन्धनसे मुक्तिका कारण है।

२२. यदि वर्तमानमें आप वीतरागकी अविनाभाविनी शान्ति चाहें तब असम्भव है, क्योंकि इस कालमें परम वीतरागताकी प्राप्ति होना दुर्लभ है। अतः जहाँतक बने स्वाध्याय व तत्त्वचर्चा कीजिए।

२३. उपयोगकी स्थिरतामें स्वाध्याय मुख्य हेतु है। इसीसे इसका अन्तरंग तपमें समावेश किया गया है। तथा यह संवर और निर्जराका भी कारण है। श्रेणीमें अल्पसे अल्प आठ प्रव-

चनमात्रिका ज्ञान अवश्य होता है। अवधि और मनःपर्ययसे भी श्रुतज्ञान महोपकारी है। यथार्थ पदार्थका ज्ञान इसके ही बलसे होता है। अतः सब उपायोंसे इसकी वृद्धि करना यही मोक्षमार्गका प्रथम सोपान है।

२४. जिस तरह व्यापारका प्रयोजन आर्थिक लाभ है उसी तरह स्वाध्यायका प्रयोजन शान्तिलाभ है।

२५. अन्तरङ्गके परिणामों पर दृष्टिपात करनेसे आत्माकी विभाव परिणतिका पता चलता है। आत्मा परपदार्थोंकी लिप्सा से निरन्तर दुखी हो रहा है, आना जाना कुछ भी नहीं। केवल कल्पनाओंके जालमें फँसा हुआ अपनी सुधमें बेसुध हो रहा है। जाल भी अपना ही दोष है। एक आगम ही शरण है। यही आगम पंचपरमेष्ठीका स्मरण कराके विभावसे आत्माकी रक्षा करनेवाला है।

२६. स्वाध्याय तपके अवसरमें, जो प्रतिदिनका कार्य है, यह ध्यान नहीं रहता कि यह कार्य उच्चतम है।

२७. स्वाध्याय करते समय जितनी भी निर्मलता हो सके करनी चाहिये।

२८. स्वाध्यायसे बढ़कर अन्य तप नहीं। यह तप उन्हींके हो सकता है जिनके कषायोंका क्षयोपशम हो गया है,क्योंकि बन्धन-का कारण कषाय है। कषायका क्षयोपशम हुए बिना स्वाध्याय नहीं हो सकता, केवल ज्ञानार्जन हो सकता है।

२९. स्वाध्यायका फल रागादिकोंका उपशम है। यदि तीव्रो-दयसे उपशम न भी हो तब मन्दता तो अवश्य हो जाती है। मन्दता भी न हो तब विवेक अवश्य हो जाता है। यदि विवेक भी न हो तब तो स्वाध्याय करनेवाले न जाने और कौनसा लाभ ले सकेंगे? जो मनुष्य अपनी राग प्रवृत्तिको निरन्तर अवनत कर तात्त्विक

सुधार करनेका प्रयत्न करता है वही इस व्यवहार धर्मसे लाभ उठा सकता है। जो केवल ऊपरी दृष्टिसे शुभोपयोगमें ही सन्तोष कर लेते हैं वे उस पारमार्थिक लाभसे वञ्चित रहते हैं।

३०. सानन्द स्वाध्याय कीजिये, परन्तु उसके फलस्वरूप रागादि मूर्च्छाकी न्यूनतापर निरन्तर दृष्टि रखिये।

३१. आगमज्ञानका इतना ही मुख्य फल है कि हमें वस्तु-स्वरूपका परिचय हो जावे।

३२. शास्त्रज्ञानका यही अभिप्राय है कि अपनेको परसे भिन्न समझा जावे। जब मनुष्य नाना प्रयत्नोंमें उलझ जाता है तब वह लक्ष्यसे दूर हो जाता है। वैसे तो उपाय अनेक हैं पर जिससे राग द्वेषकी शृंखला टूट जावे और आत्मा केवल ज्ञाता द्रष्टा बना रहे वह उपाय स्वाध्याय ही है। निरन्तर मूर्च्छाके वाह्य कारणोंसे अपनेको रक्षित रखते हुए अपनी मनोभावनाको पवित्र बनानेके लिए शास्त्र स्वाध्याय जैसे प्रमुख साधनको अवलम्बन बनाओ।

३३. शास्त्रस्वाध्यायसे ज्ञानका विकास होता है और जिनके अभिप्राय विशुद्ध हैं उनके यथार्थ तत्त्वोंका बोध होता है।

३४. इस कालमें स्वाध्यायसे ही कल्याण मार्गकी प्राप्ति सुलभ है।

३५. स्वाध्यायको तपमें ग्रहण किया है अतः स्वाध्याय केवल ज्ञानका ही उत्पादक नहीं किन्तु चारित्रका भी अङ्ग है।

●

९

संयम

१. मनुष्य पर्यायमें मोक्षमार्गका साधक संयम होता है। यदि इस शुभावसरसे चूक जाओ तब सागरोंतक उस संयमकी

योग्यता नहीं। संयम बिना संसारके नाशका उपाय नहीं अतः संयमकी रक्षापूर्वक ही अपने मनुष्य जीवनको यापन करो। अन्य मनुष्योंकी प्रवृत्ति देखकर तद्रूप न हो जाओ। अपने परिणामोंकी शक्ति देखकर ही उसका उपयोग करो।

(३०।८।४४)

२. संयमका पालन करो। अज्ञानावस्थामें जो भूल हो उसका प्रायश्चित्त करो। फिर आगे कभी वह भूल मत करो। संयमका पालना ही आत्महित है। संयमकी रक्षा करना कठिन है। भूख और प्यासका सहन करना कठिन नहीं। यदि अन्तरङ्गमें शान्ति है तब तृषा और क्षुधा कोई बाधक नहीं। और यदि अशान्ति है तब प्रथम तो सहना कठिन है साथ ही संयम और संयमीकी प्रतिष्ठा भी नहीं है।

(१७।५।४४)

३. मनुष्य जन्मकी सार्थकता इसीमें है कि स्त्री पुरुष संयमका पालन करें। संयमके पालन करनेवाले इस लोक और परलोकमें आनन्दके पात्र होते हैं।

(५।७।४४)

४. मनुष्य जन्ममें संयमकी महती आवश्यकता है। संयम कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे हम प्राप्त न कर सकें। इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका अवबोध होता है तो होने दो परन्तु विषयोंमें रागबुद्धि न हो यही संयम धारण करनेका मुख्य उपाय है।

(१८।८।४४)

५. नारकी और देवोंमें तो संयम ही नहीं, तिर्यञ्चोंमें संयम नहीं, केवल देशसंयम है परन्तु जितनी योग्यता मनुष्योंमें है वह अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसे नरतनको पाकर संयमको न पालना समुद्रसे निकले मोतियोंको फिर उसीमें फेक देना है।

(६।११।४४)

६. मानव जीवनकी सार्थकता संयम पालनेमें है। केवल बाह्य आचरणोंसे कुछ विशेष लाभ नहीं। लाभ तो आत्मामें शान्ति होनेसे है।

(३।११।४४)

•

६

मद्य-मांस-मधु त्याग

मदिरा त्याग

गृहस्थका मद्य, मांस और मधुका त्याग करना धर्मका मूल सिद्धांत है। यह बात प्रत्यक्ष देखनेमें आती है कि मदिरा पान करनेवाले उन्मत्त हो जाते हैं और उन्मत्त होकर जो-जो अनर्थ करते हैं सब जानते हैं। मदिरा पान करनेवालोंकी तो यहाँ तक प्रवृत्ति देखी गई कि वे अगम्यागमन भी कर बैठते हैं, मदिराके नशामें मस्त हो नालियोंमें पड़ जाते हैं, कुत्ता मुखमें पेशाब कर रहा है फिर भी मधुर-मधुर कहकर पान करते जाते हैं, बड़े-बड़े कुलीन मनुष्य इसके नशेमें अपना सर्वस्व खो बैठते हैं, उन्हें धर्म कथा नहीं रुचती, केवल वेश्यादि व्यसनोंमें लीन रहकर इहलोक और परलोक दोनोंकी अवहेलना करते रहते हैं। इसीको श्रीअमृतचन्द्र स्वामीने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें अच्छी तरह दर्शाया है। वे लिखते हैं—

'मद्यं मोहयति मनो मोहितचित्तस्तु विस्मरति धर्मम्।
विस्मृतधर्मो जीवो हिंसां निःशङ्कमाचरति ॥'

'मदिरा मनको मोहित करती है। जिसका चित्त मोहित हो

जाता है वह धर्मको भूल जाता है और जो मनुष्य धर्मको भूल जाता है वह निःशङ्क होकर हिंसाका आचरण करता है।'

मांस त्याग

धर्मका दूसरा सिद्धान्त यह है कि मांस भक्षण नहीं करना चाहिये। मांसकी उत्पत्ति जीव घातके बिना नहीं होती। जरा विचारो तो सही कि जिस प्रकार हमें अपने प्राण प्यारे हैं उसी प्रकार अन्य प्राणियोंको क्या उनके प्राण प्यारे न होंगे ? जब जरा सी सुई चुभ जाने अथवा काँटा लग जानेसे हमें महती वेदना होती है तब तलवारसे गला काटनेपर अन्य प्राणियोंको कितनी वेदना न होती होगी ? परन्तु हिंसक जीवोंको इतना विवेक कहाँ ? हिंसक जीवोंको देखनेसे ही भयका संचार होने लगता है। हाथी इतना बड़ा होता है कि यदि सिंहपर एक पैर रख दे तो उसका प्राणान्त हो जावे परन्तु वह सिंहसे भयभीत हो जाता है। क्रूर सिंह छलांग मारकर हाथीके मस्तकपर धावा बोल देता है। इसीसे उसको 'गजारि' कहते हैं। मांस खानेवाले अत्यन्त क्रूर हो जाते हैं। उनसे संसारका उपकार न हुआ है न होगा। भारतवर्ष दया प्रधान देश था। इसने संसारके प्राणीमात्रको धर्मका उपदेश सुनाया है। यहां ऐसे-ऐसे ऋषि उत्पन्न हुए कि जिनके अवलोकन मात्र से क्रूर जीव भी शान्त हो जाते थे। जैसा कि एक जगह कहा है—

'सारङ्गी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशं केकिकान्ता भुजङ्गम्।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम्॥

'जिनका मोह नष्ट हो चुका है, कलुषता शान्त हो चुकी है और जो समभावमें आरूढ़ हैं ऐसे योगीश्वरोंका आश्रय पाकर हिरणी सिंहके बालकको अपना पुत्र समझकर स्पर्श करने लगती है, गाय व्याघ्रके बालकको अपना पुत्र समझने लगती है, बिल्ली हंसके बालकको और मयूरी प्रेमके परवश हुए सर्पको स्पर्श करने लगती है....इस प्रकार विरोधी जन्तु मदरहित होकर आजन्म-जात वैरभावको छोड़ देते हैं—सबमें परस्पर मैत्रीभाव होजाता है।' कहनेका तात्पर्य यह है कि जिनकी आत्मा राग द्वेष मोहसे रहित हो जाती है उनके सान्निध्यमें क्रूरसे क्रूर जीव भी शांत-भावको प्राप्त हो जाते हैं इसमें आश्चर्यकी क्या बात है, क्योंकि आत्माका स्वभाव अशान्त नहीं है। जिसप्रकार जलका स्वभाव शीतल है परन्तु अग्निका निमित्त पाकर गर्म हो जाता है और अग्निका निमित्त दूर होते ही पुनः शीतल हो जाता है उसी प्रकार आत्मा स्वभावसे शान्त है परन्तु कर्मकलङ्कका निमित्त पाकर अशान्त हो रहा है। ज्यों ही कर्मकलङ्कका निमित्त दूर हुआ त्यों ही पुनः शान्त हो जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि यद्यपि सिंहादिक क्रूर जन्तु हैं तो भी उनका आत्मा शान्त स्वभाववाला है इसलिए योगीश्वरोंके पादमूलका निमित्त पाकर अशान्ति दूर हो जाती है। योगियोंके पादमूलका आश्रय पाकर उनकी उपादान शक्तिका विकास हो जाता है अतः मोही जीवोंको उत्तम निमित्त मिलानेकी आवश्यकता है।

योगी होना कुछ कठिन बात नहीं परन्तु हम राग, द्वेष और मोहके वशीभूत होकर निरन्तर अपने पराये गुण दोष देखते रहते हैं। वीतराग परिणतिका जो कि आत्माका स्वभाव है अमल नहीं करते। यही कारण है कि आजन्म दुःखके पात्र रहते हैं। जिन्होंने राग, द्वेष, मोहको जीत लिया उनकी दशा लौकिक मानवोंसे भिन्न हो जाती है। जैसा कि कहा है—

'एकः पूजां रचयति नरः पारिजातप्रसूनैः
क्रुद्धः कण्ठे क्षिपति भुजगं हन्तुकामस्ततोऽन्यः ।
तुल्या वृत्तिर्भवति च तयोर्यस्य नित्यं स योगी
साम्यारामं विशति परमज्ञानदत्तावकाशम् ॥'

'जिस महानुभाव योगीकी ऐसी वृत्ति हो गई है कि कोई तो विनयपूर्वक पारिजातके पुष्पोंसे पूजा कर रहा है और कोई क्रुद्ध होकर मारनेकी इच्छासे कण्ठमें सर्प डाल रहा है परन्तु उन दोनोंमें ही जिसकी सदा एक-सी वृत्ति रहती है वही योगीश्वर समभावरूपी आराममें प्रवेश करता है। ऐसे समभावरूपी क्रीडावनमें ही केवलज्ञानके प्रकाश होनेका अवकाश है।'

कहनेका तात्पर्य यह है कि जहाँ आत्मामें निर्मलता आजाती है वहाँ शत्रु मित्रभावकी कल्पना नहीं होती। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे शत्रु मित्रके स्वरूपको नहीं समझते हैं, क्योंकि वह तो ज्ञानका विषय है परन्तु मोहका अभाव होनेसे उनके शत्रु मित्रकी कल्पना नहीं होती। इस समय ऐसे महापुरुषों की विरलता ही क्या; अभाव ही है। इसीलिए संसारमें अशान्तिका साम्राज्य है।

जिसके मुखसे सुनो 'परोपकार करना चाहिये' यही बात निकलती है परन्तु अपनेको आदर्श बनाकर परोपकार करनेकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। जब तक मनुष्य स्वयं आदर्श नहीं बनता तब तक उसका संसारमें कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। यही कारण है कि अनेक प्रयत्न होने पर भी समाजकी उन्नति नहीं देखी जाती।

मधु त्याग

धर्मका तीसरा सिद्धान्त मधु त्याग करना है। मधु क्या है ? अनन्त सम्मूर्च्छन जीवोंका निकाय है, मक्खियोंका उच्छिष्ट है। परन्तु क्या कहें जिह्वा लम्पटी पुरुषोंकी बात ? उन्हें तो रसास्वादसे मतलब चाहे उसकी एक बूँदमें अनन्त जीवोंका संहार क्यों न हो जाय। जिनमें मनुष्यत्वका कुछ अंश है, जिनके हृदयमें दयाका कुछ संचार है उनकी प्रवृत्ति तो इस ओर स्वप्नमें भी नहीं होनी चाहिये। यह कालका प्रभाव ही समझना चाहिये कि मनुष्य दिन प्रतिदिन इन्द्रिय लम्पटी होकर धार्मिक व्यवस्था को भङ्ग करते जाते हैं। जिसके कारण समाज अवनत होती जा रही है। राजाओंके द्वारा समाजका बहुत अंशोंमें उत्थान होता था परन्तु इस समयकी बलिहारी। उनका आचरण जैसा हो रहा है वह आप प्रजाके आचरणसे अनुमान कर सकते हैं।

•

७

स्त्रियोंकी समस्याएँ

दुःखकी बात यह है कि स्त्रियोंकी समस्याएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं, और जब समस्याएँ बढ़ती हैं तब स्वभावसे उलझती भी जा रही हैं ! ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जिसमें समस्या न हो !

बाल जीवनकी समस्याएँ

कन्याका जन्म सुनते ही लोग अप्रसन्नता व्यक्त करते हैं— "हाय ! हम सोचते थे लड़का होगा, पर लड़की हुई ! भाग्यमें

जो होता है, वही मिलता है"आदि ऐसे वचन कुलके लोग कहते हैं जिनसे अपमान प्रतीत होता है। ऐसी प्रथा ही चल पड़ी है कि जो उत्सव लड़केके जन्ममें मनाया जाता है वह लड़कीके जन्ममें नहीं मनाया जाता! एक दिन तो ऐसा भी रहा है कि कन्याके साथ इतना पक्षपात किया गया कि उसका होते ही मर जाना अच्छा समझा गया! अस्तु, उसे प्रेम किया भी जाता है तो वैसा नहीं, जैसा लड़केसे किया जाता है? लालन पालन यहाँ तक कि शिक्षाके विषयमें भी उसे वह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता जो लड़के को होता है!

युवा जीवनकी समस्याएँ

कन्या जैसे बड़ी हुई, विवाहकी समस्या सामने आती है। कन्यावालेपर डाका पड़ता है। इसका विवरण सुनो तो धिक् शब्दोंका प्रयोग होने लगेगा। लड़का कहता है लड़की दिखादो। दैवयोगसे रूपमें उत्तीर्ण हो गई तब पूछता है ग्रेजुएट है? दैव-योगसे उसमें भी उत्तीर्ण होगई तब प्रश्न आता है कि गाना बजाना जानती है? नृत्य जानती है? इत्यादि विषयोंमें उत्तीर्ण होना तो लड़कीकी परीक्षा हुई। अब पिताकी परीक्षाका समय आया। फिर क्या प्रश्न होता है—कहिये कितना दोगे? सौदा तो तभी पड़ेगा, एक मोटर, एक रेडियो, २०,०००) बीस हजार रुपये नगद। यदि इसमें अनुत्तीर्ण हुआ सौदा नहीं पटा! सौदा पटा और अगर उसमें कुछ कमी रहगई तो ससुरालमें जन्मभर कटु शब्दोंका प्रयोग उसके प्रति होता है, अपमान होता है।

पति यदि विवेकशील न हुआ तब आहार विहारमें यहाँतक कि सन्ततिके संरक्षणमें भी अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं।

मनुष्य प्रायः गर्भमें बालक रहनेपर स्त्री संभोग करते हैं। उस समय गर्भस्थ बालकके कष्टको कौन देखनेवाला है? जैसे-

जैसे नव मास पूर्णकर गर्भसे निष्कासन हुआ, तब बालकके उत्पन्न होनेसे यथाशक्ति अपव्यय किया। जैसे-तैसे देवी-देवता पूजते इकतालीस दिनके हुए तब माँ के धार्मिक कार्योंके करनेका समय आया। यह तो बात छोड़िए, अब मुख्य बातपर आइए। हमको क्षुधाने सताया हमारे पास अन्य साधन तो कुछ हैं ही नहीं। "बालानां रोदनं बलम्"। क्षुधाके अर्थ रोने लगे, माँ ने थोड़ी सी अफीम, अपने स्तनसे दुग्ध निकालकर पिलादी। चाहिए था दुग्ध, मिला विष। नशेमें मग्न होगए, माँ ने समझा सो गया। जब दो या तीन घण्टेमें होश हुआ फिर रोने लगे तब मनमें माँ के आया, अरे! बालक भूखा है, दुग्ध पिलादो। यह दशा भोजनकी है, इसीसे सोने आदिका विचार करलो।

किसी दिन यदि क्षुधादिके वैषम्यसे शरीरमें कुछ विकृति हुई तब फिर क्या गोदीमें लेकर भंगिनके घर पहुँची। आज बेटा को कुदृष्टि लग गई, इसे झाड़से झाड़ दो। उसने अट्ट-पट्ट कर झाड़ दिया। अथवा यह नहीं किया तब जहाँ मुसलमान नमाज पढ़ते हैं, वह नमाज पढ़कर जब अपने गृहको जाते हैं, अनेक स्त्रियाँ गोदमें बच्चे लिए खड़ी रहती हैं। उनके बालकोंके मुखपर श्वाँसकी सभी फूँक लगाते हैं, उस समय मुखके कफांश भी बालक के मुखकमलपर पड़ते हैं। अथवा यदि चालाक हुआ तब स्त्री के नेत्रोंमें इंगित भावको प्रवेश कराके जो जो दुर्दशा उस स्त्री की होती है, वह जानती है। जो भारत अपने पवित्र भावोंके द्वारा जगतमें श्रेष्ठ था, आज जो उसकी अवनत दशा हो रही है सो उसका वर्णन करना हृदयको धक्का देना है।

बाल्यावस्थामें बालककी शिक्षा माताके ऊपर निर्भर है, माँ अपनी वेष-भूषासे ही अवकाश नहीं पाती। यह भी बोध नहीं, बालकोंके समक्ष पुरुषसे हास्यादि नहीं करना चाहिए, परन्तु क्या

लिखें ? बालक माता-पिताओंसे प्रायः विषय सेवनकी प्रणाली सीख जाते हैं। जहाँपर बाल्यावस्थामें ऐसे कुत्सित संस्कारोंकी शिक्षा मिल जाती है वहाँ उत्तरकालमें कहाँतक सुमार्गकी शिक्षा मिलेगी ? इसीसे अनुमान कर लो।

जब पाँच वर्षका हुआ स्कूल जाने लगा फिर गधाका 'ग' घोड़ाका 'घ' बिल्लीका 'ब' कुत्ताका 'क' आदि एक वर्षतक पढ़नेमें आया। परमात्माके स्मरणकी कथा छोड़ो। किसी तरहसे चार क्लास पास हुए, अंग्रेजी पढ़नेमें लग गए। अब रहने-सहनेका भी परिवर्तन होगया। जिस तिस प्रकारसे एन्ट्रेंस पास किया, पश्चात् कालेजका शरण लिया। यहाँपर रंगको छोड़कर अंग्रेज बन गए। जो लोग आंग्ल भाषाको नहीं जाननेवाले हैं, उन्हें डेमफूल कहनेमें सङ्कोच छूट गया। किसी प्रकार बी० ए०, एम० ए०, एल० एल० बी० डिग्रियाँ प्राप्त करलीं।

विवाहकी बात होने लगी, लड़की बी० ए० पास है, रंग गोरा है, गाना बजाना जानती है। १००००) २००००) रुपये दोगे, पहले लड़की देख लेवेंगे। विशेष क्या लिखें, जैसे-तैसे विवाह सम्पन्न हो गया। अब दम्पति हो गए, पिताजी कहते हैं, अपने यहाँ कौलिक रीतिसे व्यापार चला आ रहा है, उससे आजीविका करो, नहीं पढ़नेका फल यह नहीं। गवर्नमेंट सर्विस करेंगे, किसी भाग्योदयसे उत्तम सर्विस मिल गई तब तो महाशय और गृहिणी का ब मुश्किल निर्वाह होने लगा। यदि उत्तम सर्विस न मिली तब जो दशा होती है, वह सर्व साधारणको विदित है। इस तरह सारी समस्याएँ उसके सामने आती हैं। अपने पतिकी पत्नी, पुत्रकी माता, और बहूकी सास—इन तीनोंकी समस्याओंका भार लेकर उसे दुर्गम जीवन पथपर चलना होता है ! वह भी उस बुढ़ापेकी अवस्थातक जिसमें समस्याओंका अन्त नहीं होता। अस्तु !

भोजनकी समस्या

जिस भोजनकी आवश्यकता शरीर स्थितिके लिये आवश्यक है वह भी उलझी हुई है। स्त्रियोंका भोजन तब होता है जब पुरुष कर चुकते हैं। उनके बाद जब भोजन ठंडा हो जाता है तब स्त्रियाँ करती हैं। एक तो उनसे खाया ही नहीं जाता, यद्वा-तद्वा खा भी लिया तो वह सुपक्क नहीं होता।

रहन-सहन और धार्मिक समस्याएँ

सबसे अधिक कष्ट स्त्रियोंको गर्मीका होता है, क्योंकि मनुष्य तो कटिभागसे ऊपरी भागको निवारण रखते हैं। स्त्रियाँ तो हाथकी अँगुलीको भी निरावरण करनेमें आत्मीय अपमान समझती हैं। मुखको निरावरण करनेमें संकोच करती हैं। पुरुषोंने भी ऐसे प्रतिबन्ध लगा रक्खे हैं। कहाँतक कहा जावे, मंदिरमें जब वे श्रीदेवाधिदेवका दर्शन करती हैं, वहांपर पूर्णरूपसे दर्शनका लाभ नहीं ले सकतीं। यद्वा-तद्वा दर्शन करनेके अनन्तर यदि शास्त्र-प्रवचनमें पहुँच गईं, वहाँपर भी वक्ताके वचनोंका पूर्णरूपसे कर्णोंतक पहुँचना कठिन है। प्रथम तो कर्णोंपर वस्त्रका आवरण रहता है। तथा पुरुषोंसे दूरवर्ती उनका क्षेत्र रहता है। दैवयोगसे किसीके गोदमें बालक हुआ और उसने क्षुधातुर हो रुदन प्रारम्भ कर दिया, तब क्या कहें? सुनना तो एक ओर रहा, वक्ता प्रभृति मनुष्योंके वाग्-वाण प्रहार होने लगते हैं। "बालकवाली बाहर चली जावे, हमारे विघ्न मत करो।" इसे श्रवणकर शास्त्र श्रवणकी जो जिज्ञासा स्त्री-समाजमें थी, वह विलीन हो जाती है। अतः पुरुष वर्गको उचित है, जो जिससे जन्मा वह स्त्री ही तो है। उसके प्रति इतनी बलात्कारिता न करनी चाहिए। प्रत्युत सबसे उत्तम स्थान उन्हें शास्त्र-प्रवचनमें सुरक्षित रखना चाहिए।

महिला महत्त्व

यदि स्त्री-वर्ग शिक्षित होकर सदाचारिणी हो जावें, तब आज भारत क्या जितना जगत मनुष्योंके गम्य है, सभ्य हो सकता है आज जो समस्या उत्तमसे उत्तम मस्तिष्क वाले नहीं हल कर सके, अनायास हल हो जावेगी। इस समय सबसे कठिन समस्या 'जन-संख्याकी वृद्धि किस उपायसे रोकी जावे" यह है ? अनायास शिक्षित स्त्री-वर्ग उसे भी कार्यमें परिणत कर सकता है। जिस कार्यके करनेमें राजसत्ता भी हार मानकर परास्त हो गई, उसे सदाचारिणी स्त्री अपने पतियोंको यह उपदेश देकर उन्हें सुमार्गपर ला सकती है—"जब बालक गर्भमें आ जावे, तब आपका और हमारा कर्तव्य है कि जबतक वह बालक उत्पन्न होकर पाँच वर्षका न हो जावे, तबतक विषय-वासनाको त्याग देवें।" ऐसा ही प्रत्येक स्त्री सभ्य व्यवहार करे, इस प्रकारकी प्रणालीसे सुतरां वृद्धि रुक जावेगी ! इसके होनेसे जो लाखों रुपये डाक्टर, वैद्य, दुकानदार, शिक्षित वर्ग, विदेशी खिलौने आदिमें जाते हैं, वह बच जावेगें। तथा जो टी० वी० के चिकित्सागृह हैं, वह सुतरां अनावश्यक हो जावेंगे। अन्नकी जो कमी है, वह भी न होगी। दुग्ध खूब मिलने लगेगा। मदिरामें द्रव्यका व्यय न होगा, गृहवासकी पुष्कलता हो जावेगी। इस विषयका यदि पूर्णरूपसे वर्णन किया जावे तो एक महाभारत बन जावेगा। अतः आवश्यकता है—स्त्री-समाजको सभ्य बनानेकी। यदि वह समाज चाहे तब आज बड़े-बड़े मिलवालोंको चक्रमें डाल सकती है। उत्तमसे उत्तम धोती जिन मिलोंमें निकलती है, वह स्त्री-समाज पहनना बन्द कर देवे, तब मिलवालोंकी क्या दशा होगी ? सो उन्हें पता लग जावेगा, करोड़ोंका माल यों ही बरबाद हो जावेगा। यह कथा छोड़ो, आज स्त्री-समाज कांच की चूड़ी पह-

नना बन्द कर देवे और उसके स्थानपर चाँदी-सुवर्णकी चूड़ीका व्यवहार करने लगे तब चूड़ीवालोंकी क्या दशा होगी ? रोनेको मजदूर न मिलेगा। आज स्त्री-समाज चटक-मटकके आभूषणोंको पहनना छोड़ देवे तब सहस्रों सुनारोंकी दशा कौन कह सकता है ? इसी तरह यह पाउडर लगाना छोड़ देवे, तब विलायतकी पाउडर कम्पनियाँ समुद्रमें पाउडर फेंक देंगी। अतः स्त्री-समाजके शिक्षित सदाचारसे संसारके अनेक व्यापार बन्द हो सकते हैं। यही कारण है जो मनुष्य इन्हें सदाचारकी शिक्षा नहीं देते। दूसरे यदि इन्हें शिक्षा सदाचारकी दी जावे तो पञ्चम कालमें चतुर्थ कालका दृश्य आ सकता है। चतुर्थ कालमें यही तो था कि बहुल भावसे प्राणी सुमार्गमें प्रवृत्ति करता था। इसका यह अर्थ नहीं कि सामान्य मनुष्य पापमें लिप्त नहीं होते थे, पापकी प्रवृत्ति थी परन्तु सुमार्गका प्रचार होनेसे उनकी ओर जनताका लक्ष्य नहीं रहता था। यही कारण है कि स्त्रियोंमें अधिकांश प्रवृत्ति मोह रूप रहती है। अतः उनमें अनेक गुणशालिनी होनेपर भी बहुभाग समीचीन मार्गसे विमुख होनेके कारण उनकी गणना उत्तम जीवोंमें नहीं की जाती।

हमारा कर्तव्य

अब शिक्षाका प्रचार अधिक हो गया है। स्त्रियाँ भी पुरुषों जैसी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेमें आगे बढ़ रही हैं। समझदारी उनमें आ गई है। हमारा कर्तव्य है कि स्त्रियोंकी उलझी हुई समस्याओं के सुलझानेमें योग दें। जिससे वे अपने सदाचार और स्वाभिमानको सुरक्षित रखती हुई आदर्श बन सकें। सीता, मैनासुन्दरी, कौशिल्या और त्रिशला स्त्रियाँ ही तो थीं, उनके आदर्शोंसे आज विश्वमें भारतका मस्तक उन्नत है। अपनी बहू-बेटियों, बहिनों और माताओंके सामने ऐसे ही आदर्श रखिए तब अपने

घरको स्वर्ग देखनेकी कामना कीजिये।

(अषाढ़ बदी ७ सं० २००७)

८

धर्म प्रचारकी चार वर्षीय योजना

अच्छा यह होता कि एक ऐसा सुअवसर आता कि ५ निष्णात विद्वान् एक निरापद स्थानमें निवासकर धर्मके मार्मिक सिद्धान्तको निर्भीकताके साथ जनताके समक्ष रखते। तथा यह कहते कि आप लोग इसका निर्णय कीजिए। यदि आप लोगोंकी दृष्टिमें वह तत्त्व अभ्रान्त ठहरे तो उसका प्रचार कीजिये। यदि किसी प्रकारकी शङ्का रहे तब निर्णय करनेका प्रयास कीजिये। तथा जो सिद्धान्त लिखे जावें वहाँपर अन्यने किस रीतिसे उसे माना है यह भी दिग्दर्शन कराइये। सबसे मुख्य तत्त्व आत्मा का अस्तित्व है। इसके बाद अनात्मीय पदार्थपर विचार किया जावे। जैसे व्याख्यानों द्वारा सिद्धान्त दिखानेका प्रयास किया जाता है उससे अधिक लेखवद्ध प्रणालीसे भी दिखाया जावे। इन कार्योंके लिये २५०००) वार्षिक व्ययकी आवश्यकता है। चार वर्ष यह कार्य कराया जावे।

जो विद्वान् इस कार्यको करें उन्हें २००) नगद और भोजन व्यय दिया जावे। इनमें जो मुख्य विद्वान् हों उन्हें २५०) और भोजन व्यय दिया जावे। इस तरह चार विद्वानोंको ८००) और मुख्य विद्वान्को २५०) और कुल भोजन व्यय २५०) के लगभग होनेसे कुल १३००) मासिक हुआ। इसके साथ अंग्रेजी साहित्य के भी एक विद्वान् रखे जावें ४००) मासिक वेतन १००) मासिक

भोजन व्यय उन्हें दिया जावे। २००) मासिक भृत्यों (सेवक नौकरों) को दिया जावे। इस तरह २०००) दो हजार मासिक यह हुआ। एक वर्षमें २४०००) हुआ। १०००) वार्षिक डाक व्यय होगा।

इस तरह कुल २५०००) वार्षिक रुपयोंसे शान्तिपूर्वक काम चला तो बहुत कुछ प्रश्न सरल रीतिसे निर्णीत हो जावेंगे। अगर एक आदमी यह समझ लेवे कि एक गजरथ यही सही तो चार वर्षमें केवल एक लाख ही रुपया तो व्यय होगा परन्तु इससे बहुत कालके लिये धर्म अस्तित्वकी जो स्थायी सामग्री एकत्र होगी उसका मूल्य एक लाख नहीं, वह तो अमूल्य ही होगी।

●

९

सच्ची प्रभावना

१. वास्तवमें धर्मकी प्रभावना तो आचरणसे ही होती है। यदि हमारी प्रवृत्ति परोपकाररूप है तब अनायास लोग उसकी प्रशंसा करेंगे, और यदि हमारी प्रवृत्ति और आचार मलिन है तब उनकी श्रद्धा इस धर्ममें नहीं हो सकती।

२. निरन्तर रत्नत्रय तेजके द्वारा आत्मा प्रभावना सहित करने योग्य है तथा दान, तप, जिनपूजा, विद्याभ्यास आदि चमत्कारोंसे धर्मकी प्रभावना करनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि संसारी जीव अनादि कालसे अज्ञानान्धकारसे आच्छन्न हैं, उन्हें आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं, शरीरको ही आत्मा

मान रहे हैं, निरन्तर उसीके पोषणमें उपयोग लगा रहे हैं, तथा उसके जो अनुकूल हुआ उसमें राग और जो प्रतिकूल हुआ उसमें द्वेष करने लग जाते हैं। श्रद्धाके अनुकूल ही ज्ञान और चारित्र होता है, अतः सर्व प्रयत्नों द्वारा प्रथम श्रद्धाको ही निर्मल करना चाहिए। उसके निर्मल होने पर ज्ञान और चारित्र का भी प्रादुर्भाव होनेसे तीनों गुणोंका पूर्ण विकास हो जाता है। इसीका नाम रत्नत्रय है, यही मोक्षमार्ग है और यही आत्माकी निज विभूति है। जिसके यह विभूति हो जाती है वह संसारके बन्धनसे छूट जाता है, यही निश्चय प्रभावना है। इसकी महिमा वचनके द्वारा नहीं कही जा सकती।

३. प्रभावना अङ्गकी महिमा अपार है। परन्तु हमलोग उसपर लक्ष्य नहीं देते। एक मेलेमें लाखों रुपये व्यय कर देंगे, परन्तु यह न होगा कि एक ऐसा कार्य करें जिससे सर्व-साधारण लाभ उठा सकें।

४. पहले समयमें मुनिमार्गका प्रसार था, अतः गृहस्थलोग जब संसारसे विरक्त हो जाते थे, और उनकी गृहिणी (पत्नी) आर्या (साध्वी) हो जाती थीं, तब उनका परिग्रह शेष लोगोंके उपयोगमें आता था, परन्तु आज मरते-मरते भोगोंसे उदास नहीं होते! कहाँसे उन्हें आनन्दका अनुभव आवे? मरते-मरते यही शब्द सुने जाते हैं कि ये बालक आप लोगोंकी गोदमें हैं, इन्हें सँभालना, रक्षा करना आदि। यह दुरवस्था समाजकी हो रही है। तथा जिसके पास पुष्कल धन है वे अपनी इच्छाके प्रतिकूल एक पैसा खर्च नहीं करना चाहते। वास्तवमें धर्मकी प्रभावना करना चाहते हो तो जातीय पक्षपातको छोड़कर प्राणी-मात्रका उपकार करो, क्योंकि धर्म किसी जातिविशेषका पैतृक विभव नहीं अपितु प्राणीमात्रका स्वभाव धर्म है। अतः जिन्हें

धर्मकी प्रभावना करना इष्ट है उन्हें उचित है कि प्राणीमात्रके ऊपर दया करें, अहम्बुद्धि ममबुद्धिको तिलांजलि दे,तभी धर्मकी प्रभावना हो सकती है।

५. सच्ची प्रभावना तो यह है कि जो अपनी परणति अनादि-कालसे परको आत्मीय मान कलुषित हो रही है, परमें निजत्व-का अवबोधकर विपर्यय ज्ञानवाली हो रही है, तथा पर पदार्थों में राग-द्वेषकर मिथ्या चारित्रमयी हो रही है उसे आत्मीय, श्रद्धान, ज्ञान और चारित्रके द्वारा ऐसो निर्मल बनानेका प्रयत्न करो जो इतर धर्मावलम्बियोंके हृदयमें स्वयमेव समा जावे, इसीको निश्चय प्रभावना कहते हैं। अथवा—

१—ऐसा दान करो जिससे साधारण लोगोंका भी उपकार हो।

२—ऐसे विद्यालय खोलो जिनमें यथाशक्ति सभीको ज्ञान लाभ हो।

३—ऐसे औषधालय खोलो जिनमें शुद्ध औषधिसे सभी लाभ ले सकें।

४—ऐसे भोजनालय खोलो जिनमें शुद्ध भोजनका प्रबन्ध हो, अनाथोंको भी भोजन मिले।

५—अभयदानादि देकर प्राणियोंको निर्भय बनाओ।

६—ऐसा तप करो जिसे देखकर कट्टरसे कट्टर विरोधियोंकी तपमें श्रद्धा हो जावे।

७—अज्ञानरूपी अन्धकारसे जगत आच्छन्न है,उसे यथाशक्ति दूरकर धर्मके माहात्म्यका प्रकाश करना, इसीका नाम सच्ची (निश्चय) प्रभावना है। वर्तमानमें इसी तरहकी प्रभावना आवश्यक है।

८—पुष्कल द्रव्यको व्यय कर गजरथ चलाना, प्रीतिभोजनमें पचासों हजार मनुष्योंको भोजन देना और सङ्गीत मण्डलीके द्वारा गान कराकर सहस्रोंके मनमें धर्मकी प्राचीनताके साथ-साथ वास्तव कल्याणका मार्ग भर देना यह तो प्राचीन समयकी प्रभावना थी परन्तु इस समय इस तरहकी प्रभावनाकी आवश्यकता है—

१. हजारों भूखे पीड़ित मनुष्योंको भोजन कराना, सहस्रों मनुष्योंको वस्त्रदान देना।

२. प्रत्येक ऋतुके अनुकूल दानकी व्यवस्था करना।

३. जगह जगह सदावर्त खुलवाना।

४. गर्मीके दिनोंमें पानी पिलानेका प्रबन्ध करना (प्याऊ खोलना)।

५. जो मनुष्य आजीविका विहीन हैं उन्हें व्यापारादि कार्यमें लगाना।

६. स्थान स्थानपर धर्मशाला बनवाना जिनमें सभी तरह की सुविधा हो।

७. नवदुर्गा एवं दशहरा आदि पर्वों पर प्रतिवर्ष बलिदान होनेवाले निरपराध बकरे, भैंसे आदि मूक पशुओंको बलिदान होनेसे बचाना।

८. जनतामें धर्म प्रचारके लिए उपदेशक रखना और क्षेत्रों पर उनका महत्त्व समझनेवाले शास्त्रवाचक विद्वान् रखना।

९. वर्तमान समयमें तीर्थयात्रा व धार्मिक मेलोंमें अपनी सम्पत्तिका व्यय न करके शरणार्थियोंकी समस्या हल करनेमें सरकारकी सहायता करना।

१०

आदर्श मन्दिर

मेरी निजी सम्मति तो यह है कि एक ऐसा मन्दिर बनवाना चाहिये कि जिसमें सब मतवालोंकी सुन्दरसे सुन्दर मूर्तियाँ और उनके ऊपर सङ्गमर्मरमें उनका इतिहास लिखा रहे। जैसे कि दुर्गाकी मूर्तिके साथ दुर्गा सप्तशती। इसी प्रकार प्रत्येक देवताकी मूर्तिके साथमें सङ्गमर्मरके विशाल पटियेपर उसका इतिहास रहे। इन सबके अन्तमें श्री आदिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपने इतिहासके साथमें रहे और अन्तमें एक सिद्ध भगवान्‌की मूर्ति रहे। यह तो देव मन्दिरकी व्यवस्था रही। इसके बाद साधु वर्गकी व्यवस्था रहनी चाहिये। सर्वमतके साधुओंकी मूर्तियाँ तथा उनका इतिहास और अन्तमें साधु उपाध्याय आचार्यकी मूर्तियाँ एवं उनका इतिहास रहे। मन्दिरके साथमें एक बड़ा भारी पुस्तकालय हो जिसमें सब आगमोंका समूह हो प्रत्येक मतवालोंको उसमें पढ़नेका सुभीता रहे। हर एक विभागमें निष्णात विद्वान् रहे जो कि अपने मतकी मार्मिक स्थिति सामने रख सके। वह ठीक है कि यह कार्य सामान्य मनुष्योंके द्वारा नहीं हो सकता पर असम्भव भी नहीं है। एक करोड़ तो मन्दिर और सरस्वती भवनमें लग जावेगा और एक करोड़के व्याजसे इसकी व्यवस्था चल सकती है। इसके लिये सर्वोत्तम स्थान बनारस है। हमारी तो कल्पना है कि जैनियोंमें अब भी ऐसे व्यक्ति हैं कि जो अकेले ही इस महान् कार्यको कर सकते हैं।

धर्मके विकासके लिये तो हमारे पूर्वज लोगोंने बड़े-बड़े राज्यादि त्याग दिये—जैसे माताके उदरसे जन्मे वैसे ही चले गये। ऐसे ऐसे उपाख्यान आगमोंमें मिलते हैं कि राजाके विरक्त होनेपर सहस्रों विरक्त हो गये। जिनके भोजनके लिए देवोंके द्वारा सामग्री भेजी जाती थी वे दिगम्बर पदका आलम्बनकर शिक्षा-वृत्ति अङ्गीकार करते हैं। जिनके चलनेके लिए नाना प्रकारके वाहन सदा तैयार रहते थे वे युग प्रमाण भूमिको निरखते हुए नङ्गे पैर गमन करते हुए कर्म बन्धनको नष्ट करते हैं।

आगममें यहाँ तक लिखा है कि आदि प्रभुको ६ मास पर्यन्त अन्तरायके कारण चर्याकी विधि न मिली फिर भी उनके चित्तमें उद्वेग नहीं हुआ। ऐसे ही विशाल महानुभाव जगत्का कल्याण कर सकते हैं अतः जिनके पास वर्तमानमें पुष्कल द्रव्य है उन्हें धर्मके विकासमें व्ययकर एकबार प्रभावनाका स्वरूप संसारको दिखा देना चाहिए।

पर वास्तवमें बात यही है कि लिखनेवाले बहुत हैं और करनेवाले विरले हैं। जब कि लिखनेवालेको यह निश्चय होगया कि इस प्रकार धर्मकी प्रभावना होती है तब उसे उस रूप बन जाना चाहिये। पर देखा यह जाता है कि लेखक स्वयं वैसा बननेकी चेष्टा नहीं करते हैं। केवल मोहके विकल्पोंमें जो कुछ मनमें आया वह लेखबद्ध कर देते हैं या वक्ता बनकर मनुष्योंके बीच उसका उपदेश सुना देते हैं तथा लोगां द्वारा 'धन्य हो, धन्य हो' यह कहलाकर अपनेको कृतकृत्य समझ लेते हैं। क्या इसे वास्त-

विक प्रभावना कहा जाय ? वास्तविक प्रभावना यही है कि आत्मामें सम्यग्दर्शनादि गुणोंका विकास किया जाय। इस प्रभावनाका प्रारम्भ सातिशय मिथ्यादृष्टिसे शुरू होता है और पूर्णता चतुर्दशगुणस्थानके चरम समयमें होती है।

एक ऐसा मन्दिर नहीं देखा गया जो प्राणी मात्रको लाभका कारण होता। मूर्ति निरावरण स्थानमें होना चाहिये जिसका दर्शन प्रत्येक कर सके। खेदकी बात है जैसे इन लोगोंने बाह्य वस्तुको परिग्रह माना है अर्थात् जैसे मन्दिर आदिको अपना परिग्रह मानते हैं वैसे मन्दिरमें स्थापित भगवान्के बिम्बको भी परिग्रह माननेमें संकोच नहीं करते। यह तो दूर रहो, धर्मको भी अपना परिग्रह मान रखा है। ऐसा न होना चाहिए। जैन-धर्म कोई जाति विशेषका नहीं। यदि जाति विशेषका प्रभुत्व उसपर होता तब आम जनतामें उसका प्रचार व्याख्यानादि द्वारा करना उचित नहीं। धर्मका लक्षण व्यापक होना चाहिये जो बाधित न हो। जो परिणाम आत्माको संसार दुःखसे मुक्त करे और निज सुखमें स्थापित करे वही धर्म है। यह परिणाम जिसमें उदित हो जावे वही आत्मा मुक्त कहलाता है। यहाँपर जो विरोध परस्परमें है वह अभिप्रायकी विभिन्नताका है। अभिप्रायकी यथार्थ निर्मलता ही मोक्षमार्गका कारण है। हमको उचित तो यह है कि अपना मार्ग निर्मल करें। वही अभीष्ट स्थानपर हमें निराबाध पहुँचावेगा, उस मार्गपर चलनेका सभीको समान अधिकार है।

अपनी भूल

विचारकी बात है कि शूद्र अर्हंतादि पञ्चपरमेष्ठीका तो जाप्य कर सके, अन्तरङ्ग धर्मका पात्र हो सके, अनन्त संसारके कारण मिथ्यात्वको ध्वंस कर सके किन्तु ईंट चूनेके मन्दिरमें न आसके ! श्री चन्द्रप्रभ आदि तीर्थङ्करका स्मरण कर सके परन्तु उनकी जिसमें स्थापना है उस मूर्तिको न देख सके, यदि देखें तो बाहरसे देखें। बुद्धिमें नहीं आता, पाँच पापको त्याग सके, अणुव्रती हो सके, अणुव्रतके उपदेष्टाओंके दर्शन न कर सके, बलिहारी इस बुद्धि की !

(वैशाख सुदी ११ सं० २००७)

मुक्तिमंदिर

[वृद्ध और वृद्धाओं के लिए]

•

१

सम्यक्त्व

जैन दर्शनमें श्रद्धाको सर्व प्रथम स्थान प्राप्त है। इसी का नाम सम्यग्दर्शन है। यदि यह नहीं हुआ तो व्रत लेना नींवके बिना महल बनानेके सदृश है। इसके होते ही सब व्रतोंकी शोभा है। सम्यग्दर्शन आत्माका वह गुण है जिसका विकास होते ही अनन्त संसारका बन्धन छूट जाता है। आठों कर्मोंसे सबकी रक्षा करनेवाला यही है। यह ऐसा शूर है कि अपनी भी रक्षा करता है और शेष गुणोंकी भी।

सम्यग्दर्शनका लक्षण आचार्योंने 'तत्त्वार्थश्रद्धान' लिखा है। जैसा कि दशाध्याय तत्त्वार्थसूत्रके प्रथम अध्यायमें आचार्य गृद्धपिच्छने लिखा है—

'तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'

श्री नेमिचन्द्र स्वामीने द्रव्यसंग्रहमें लिखा है—

'जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं'

यही समयसारमें लिखा है तथा ऐसा ही लक्षण प्रत्येक ग्रन्थ में मिलता है, परन्तु पञ्चाध्यायीकर्ताने एक विलक्षण बात लिखी है। वे लिखते हैं कि यह सब तो ज्ञानकी पर्याय है। सम्यग्दर्शन आत्माका अनिर्वचनीय गुण है, जिसके होने पर जीवोंके तत्त्वार्थका परिज्ञान अपने आप हो जाता है वह आत्माका परिणाम सम्यग्दर्शन कहलाता है।

ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम आत्मामें सदा विद्यमान रहता है, संज्ञी जीवके और भी विशिष्ट क्षयोपशम रहता है। सम्यग्दर्शन के होते ही वही ज्ञान सम्यग्व्यपदेशको पा जाता है। पुरुषार्थ-सिद्धयुपायमें श्री अमृतचन्द्राचार्यने भी लिखा है—

'जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्॥'

अर्थात् जीवाजीवादि सप्त पदार्थोंका विपरीत अभिप्रायसे रहित सदैव श्रद्धान करना चाहिये.....इसीका नाम सम्यग्दर्शन है, यह सम्यग्दर्शन ही आत्माका पारमार्थिक रूप है। इसका तात्पर्य यह है कि इसके बिना आत्मा अनन्त संसारका पात्र रहता है।

वह गुण अतिसूक्ष्म है। केवल उसके कार्यसे ही हम उसका अनुमान करते हैं। जैसे अग्निकी दाहकत्व शक्तिका हमें प्रत्यक्ष नहीं होता केवल उसके ज्वलन कार्यसे ही उसका अनुमान करते हैं। अथवा जैसे मदिरा पान करनेवाला उन्मत्त होकर नाना कुचेष्टाएँ करता है पर जब मदिराका नशा उतर जाता है तब उसकी दशा शान्त हो जाती है। उसकी वह दशा उसीके अनुभवगम्य होती है। दर्शक केवल अनुमानसे जान सकते हैं कि इसका नशा उतर गया। मदिरामें उन्मत्त करनेकी शक्ति है पर हमें उसका प्रत्यक्ष नहीं होता, वह अपने कार्यसे ही अनुमित होती है। अथवा जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर सब दिशाएँ निर्मल हो जाती हैं उसी प्रकार सम्यग्दर्शनके होनेपर आत्माका अभिप्राय सब प्रकारसे निर्मल हो जाता है। उस गुणका प्रत्यक्ष मति-श्रुत तथा देशावधिज्ञानियोंके नहीं होता किन्तु परमावधि, सर्वावधि मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान से युक्त जीवोंके ही होता है। उनकी कथा करना ही हमें आता है, क्योंकि उनकी

महिमाका यथार्थ आभास होना कठिन है। बात हम अपने ज्ञान की करते हैं। यही ज्ञान हमें कल्याणके मार्गमें ले जाता है।

वस्तुतः आत्मामें अचिन्त्य शक्ति है और उसका पता हमें स्वयमेव होता है। सम्यग्दर्शन गुणका प्रत्यक्ष हमें न हो परन्तु उसके होते ही हमारी आत्मामें जो विशदताका उदय होता है वह तो हमारे प्रत्यक्षका विषय है। यह सम्यग्दर्शनकी अद्भुत महिमा है कि हमलोग बिना किसी शिक्षक व उपदेशकके उदासीन हो जाते हैं। जिन विषयोंमें इतने अधिक तल्लीन थे कि जिनके बिना हमें चैन ही नहीं पड़ता था, सम्यग्दर्शनके होनेपर उनकी एकदम उपेक्षा कर देते हैं।

इस सम्यग्दर्शनके होते ही हमारी प्रवृत्ति एकदम पूर्वसे पश्चिम हो जाती है। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यका आविर्भाव हो जाता है। श्री पञ्चाध्यायीकारने प्रशम गुणका यह लक्षण माना है—

'प्रशमो विषयेषूच्चैर्भावक्रोधादिकेषु च।
लोकासंख्यातमात्रेषु स्वरूपाच्छिथिलं मनः ॥'

अर्थात् असंख्यात लोकप्रमाण जो कषाय और विषय हैं उनमें स्वभावसे ही मनका शिथिल हो जाना प्रशम है। इसका यह तात्पर्य है कि आत्मा अनादि कालसे अज्ञानके वशीभूत हो रहा है और अज्ञान में आत्मा तथा परका भेदज्ञान न होनेसे पर्यायमें ही आपा मान रहा है, अतः जिस पर्यायको पाता है उसीमें निजत्वकी कल्पना कर उसीकी रक्षाके प्रयत्नमें सदा तल्लीन रहता है। पर उसकी रक्षाका कुछ भी अन्य उपाय इसके ज्ञानमें नहीं आता केवल पञ्चेन्द्रियोंके द्वारा स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण एवं शब्दको ग्रहण करना ही इसे सूझता है। प्राणीमात्र

ही इसी उपायका अवलम्बन कर जगत्में अपनी आयु पूर्ण कर रहे हैं।

जब बच्चा पैदा होता है तब माँके स्तनको चूसने लगता है। इसका मूल कारण यह है कि अनादि कालसे इस जीवके चार संज्ञाएँ लग रही हैं उनमें एक आहार संज्ञा भी है, उसके बिना इसका जीवन रहना असम्भव है। केवल विग्रहगतिके ३ समय छोड़कर सर्वदा आहार वर्गणाके परमाणुओंको ग्रहण करता रहता है ! अन्य कथा कहाँतक कहें ? इस आहारकी पीड़ा जब असह्य हो उठती है तब सर्पिणी अपने बच्चोंको आप ही खा जाती है। पशुओंकी कथा छोड़िये जब दुर्भिक्ष पड़ता है तब माता अपने बालकोंको बेचकर खा जाती है। यहाँ तक देखा गया है कि कूड़ा घरमें पड़ा हुआ दाना चुन चुन कर मनुष्य खा जाते हैं, जूठी पत्तलके दाने भी बीन बीनकर खा जाते हैं। यह एक ऐसी संज्ञा है कि जिससे प्रेरित होकर मनुष्य अनर्थसे अनर्थ कार्य करनेको प्रवृत्त हो जाता है। इस क्षुधाके समान अन्य दोष संसारमें नहीं। कहा भी है—

'सब दोषन मांही या सम नाहीं—

इसकी पूर्तिके लिये लाखों मनुष्य सैनिक हो जाते हैं। जो भी पाप हो इस आहारके लिये मनुष्य कर लेता है। इसका मूल कारण अज्ञान ही है। शरीरमें निजत्व बुद्धि ही इन उपद्रवोंकी जड़ है। जब शरीरको निज मान लिया तब उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य हो जाता है और जबतक यह अज्ञान है तभी तक हम संसारके पात्र हैं ?

यह अज्ञान कब तक रहेगा इस पर श्रीकुन्दकुन्द महाराजने अच्छा प्रकाश डाला है—

'कम्मे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं ।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥'

भावार्थ—जब तक ज्ञानावरणादि कर्मों और औदारिकादि शरीरमें आत्मीय बुद्धि होती है और आत्मामें ज्ञानावरणादिक कर्म तथा शरीरकी बुद्धि होती है अर्थात् जब तक जीव ऐसा मानता है कि ज्ञानावरणादिक कर्म और शरीर मेरे हैं तथा मैं इनका स्वामी हूँ तब तक यह जीव अज्ञानी है और तभी तक अप्रतिबुद्ध है। यदि शरीरमें अहम्बुद्धि मिट जावे तो आहारकी आवश्यकता न रहे। जब शरीरको शक्ति निर्बल होती है तभी आत्मामें आहार ग्रहण करनेकी इच्छा होती है। यद्यपि शरीर पुद्गलपिण्ड है तथापि उसका आत्माके साथ सम्पर्क है और इसी लिये उसकी उत्पत्ति दो विजातीय द्रव्योंके सम्पर्कसे होती है। पर यह निश्चय है कि शरीरका उपादान कारण पुद्गल द्रव्य ही है आत्मा नहीं। दोनोंका यह सम्बन्ध अनादि कालसे चला आता है इसीसे अज्ञानी जीव दोनोंको एक मान बैठता है। शरीरको निज मानने लगता है।

उस शरीरको स्थिर रखनेके लिये जीवके आहार ग्रहणकी इच्छा होती है और उससे आहार ग्रहण करनेके लिये रसना इन्द्रियके द्वारा रसको ग्रहण करता है। ग्रहण करनेमें प्रदेश प्रकम्पन होता है उससे हस्तके द्वारा ग्रास ग्रहण करता है। जब ग्रासके रसका रसना इन्द्रियके साथ सम्बन्ध होता है तब उसे स्वाद आता है। यदि अनुकूल हुआ तो प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करता जाता है। ग्रहणका अर्थ यह है कि रसना इन्द्रियके द्वारा रसका ज्ञान होता है, इसका यह अर्थ नहीं कि ज्ञान रसमय हो जाता है। यदि रस रूप हो जाता तो आत्मा जड़ ही बन जाता।

इस विषयक ज्ञान होते ही जो रसग्रहणकी इच्छा उठी थी वह शान्त हो जाती है और इच्छाके शान्त होनेसे आत्मा सुखी हो जाता है। सुखका वाधक है दुःख, और दुःख है आकुलता-मय। आकुलताकी जननी इच्छा है, अतः जब इच्छाके अनुकूल विषयकी पूर्ति हो जाती है तब इच्छा स्वयमेव शान्त हो जाती है। इसी प्रकार सब व्यवस्था जानना चाहिये। जब जब शरीर निःशक्त होता है, तव तब आहारादिकी इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छाके उदयमें आहार ग्रहण करता है और आहार ग्रहण करनेके अनन्तर आकुलता शान्त हो जाती है....। इस प्रकार यह चक्र वरावर चला जाता है और तब तक शान्त नहीं होता जब तक कि भेदज्ञानके द्वारा निजका परिचय नहीं हो जाता।

इसी प्रकार इसके भय होता है। यथार्थमें आत्मा तो अजर अमर है, ज्ञान गुणका धारी है, और इस शरीरसे भिन्न है फिर भयका क्या कारण है ? यहाँ भी वही वात है अर्थात् मिथ्यात्वके उदयसे यह जीव शरीरको अपना मानता है अतएव इसके विनाशके जहाँ कारणकूट इकट्ठे हुए वहीं भयभीत हो जाता है। यदि शरीरमें अभेदबुद्धि न होती तो भयके लिये स्थान ही न मिलता। यही कारण है कि शरीर नाशके कारणोंका समागम होनेपर यह जीव निरन्तर दुःखी रहता है।

वह भय सात प्रकारका है—१ इहलोक भय, २ परलोक भय, ३ वेदना भय, ४ असुरक्षाभय, ५ अगुप्तिभय, ६ आकस्मिक भय और ७ मरण भय। इनका संक्षिप्त स्वरूप यह है—

इस लोकका भय तो सर्वानुभवगम्य है। अतः उसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। पर लोकका भय यह है कि जब यह पर्याय छूटती है तब यही कल्पना होती है कि स्वर्गलोकमें जन्म हो तो भद्र—भला है, दुर्गतिमें जन्म न हो, अन्यथा नाना दुःखोंका पात्र होना पड़ेगा। इसी प्रकार मेरा कोई त्राता नहीं। असाताके

उदयमें नाना प्रकारकी वेदनाएँ होती हैं यह वेदना भय है। कोई त्राता नहीं किसकी शरणमें जाऊँ ? यह अशरण-असुरक्षाका भय है। कोई गोप्ता नहीं यही अगुप्ति भय है। आकस्मिक वज्र-पातादिक न हो जावे यह आकस्मिक भय है और मरण न हो जावे यह मृत्युका भय है।...इन सप्तभयोंसे यह जीव निरन्तर दुखी रहता है। भयके होनेपर उससे बचनेकी इच्छा होती है और उससे जीव निरन्तर आकुलित रहता है। इस तरह यह भय संज्ञा अनादि कालसे जीवोंके साथ चली आ रही है।

संसारमें जो मिथ्या प्रचार फैल रहा है उसमें मूल कारण राग द्वेषकी मलिनतासे जो कुछ लिखा गया वह साहित्य है। वही पुस्तकें कालान्तरमें धर्मशास्त्रके रूपमें मानी जाने लगीं। लोग तो अनादिकालसे मिथ्यात्वके उदयमें शरीरको ही आत्मा मानते हैं। जिनको अपना ही बोध नहीं वे परको क्या जानें ? जब अपना पराया ज्ञान नहीं तब कैसा सम्यग्दृष्टि ? यही श्री समयसारमें लिखा है—

परमाणुमित्तयं पि रागादीणं सुविज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणं यदु सव्वागमधरो वि ॥'

जो सर्वागमको जाननेवाला है, उसके रागादिकोंका अंशमात्र भी यदि विद्यमान है तो वह आत्माको नहीं जानता है। जो आत्माको नहीं जानता है वह जीव और अजीवको नहीं जानता। जो जीव-अजीवको नहीं जानता वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है ? कहनेका तात्पर्य यह कि आगमाभ्यास ही जीवादिकोंके जाननेमें मुख्य कारण है और आगमाभासका अभ्यास ही जीवादिकोंको अन्यथा जाननेमें कारण है। जिनको आत्मकल्याण-की लालसा है वे आप्तकथित आगमका अभ्यास करें। क्षेत्रोंपर

ज्ञानके साधन कुछ नहीं, केवल रुपये इकट्ठे करनेके साधन हैं। कल्पना करो यह धन यदि एकत्रित होता रहे और व्यय न हो तो अन्तमें नहींके तुल्य हुआ। अस्तु, इस कथासे क्या लाभ?

•

२

मिथ्यात्व

पर पदार्थको आत्मीय मानना ही मिथ्यात्व है। यद्यपि पर पदार्थ आत्मा नहीं हो जाता तथापि मिथ्यात्वके प्रभावसे हमारी कल्पनामें आत्मा ही दीखता है। जैसे जो मनुष्य रज्जुमें सर्प-भ्रान्ति हो जानेके कारण भयसे पलायमान होने लगता है परन्तु रज्जु रज्जु ही है और सर्प सर्प ही है। ज्ञानमें जो सर्प आ रहा है वह ज्ञानका दोष है ज्ञेयका नहीं इसीको अन्तर्ज्ञेय कहते हैं, इस अन्तर्ज्ञेयकी अपेक्षा वह ज्ञान अप्रमाण नहीं क्योंकि यदि अन्तर्ज्ञेय सर्प न होता तो वह पलायमान नहीं होता। उस ज्ञानको जो मिथ्या कहते हैं वह बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा ही कहते हैं। इसीलिए श्रीसमन्तभद्र स्वामीने देवागमस्तोत्रमें लिखा है—

'भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिन्हवः।
बहिःप्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभश्च ते ॥'

अर्थात् यदि अन्तर्ज्ञेयकी अपेक्षा वस्तु स्वरूपका विचार किया जावे तो कोई भी ज्ञान अप्रमाण नहीं, क्योंकि जिस ज्ञानमें प्रतिभासित विषयका व्यभिचार न हो वही ज्ञान प्रमाण है। जब हम मिथ्याज्ञानके ऊपर विचार करते हैं तब उसमें जो अन्तर्ज्ञेय भासमान हो रहा है वह तो ज्ञानमें है ही। यदि ज्ञानमें सर्प न

होता तो पलायमान होनेकी क्या आवश्यकता थी ? फिर उस ज्ञानको जो मिथ्या कहते हैं वह केवल बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा ही कहते हैं क्योंकि बाह्यमें सर्प नहीं है रज्जु है। अतएव स्वामीने यही सिद्धान्त निश्चित किया कि बाह्य प्रमेयकी अपेक्षा ही ज्ञानमें प्रमाण और प्रमाणाभासकी व्यवस्था है। अन्तरङ्ग प्रमेयकी अपेक्षा सब ज्ञान प्रमाण ही हैं।

यही कारण है कि जब हम ज्ञानमें शरीरको आत्मा देखते हैं तब उसीमें निजत्वकी कल्पना करने लगते हैं। उस समय हमें कितने ही प्रकारसे समझानेका प्रयत्न क्यों न किया जावे सब विफल होता है, क्योंकि अन्तरङ्गमें मिथ्यादर्शनकी पुट विद्यमान रहती है। जैसे कामला रोगीको शङ्ख पीला ही दीखता है। उसे कितना ही क्यों न समझाया जावे कि शङ्ख तो शुक्ल ही होता है, आप बलात्कार पीत क्यों कह रहे हैं ? पर वह यही उत्तर देता है कि आपकी दृष्टि विभ्रमात्मक है जिससे पीले शङ्ख-को शुक्ल कहते हो।

इससे यह सिद्ध हुआ कि जबतक मिथ्यादर्शनका सद्भाव है तबतक पर पदार्थसे आत्मीय बुद्धि नहीं जा सकती। जिन्हें सम्यग्ज्ञान अभीष्ट है उन्हें सबसे पहले अभिप्रायको निर्मल करनेका प्रयत्न करना चाहिये। जिनका अभिप्राय मलिन है वे सम्यग्ज्ञानके पात्र नहीं, अतः सब परिग्रहोंमें महान् पाप मिथ्या-त्व परिग्रह है। जबतक इसका अभाव नहीं तबतक आप कितने ही व्रत तप संयमादि ग्रहण क्यों न करें मोक्षमार्गके बाधक नहीं। इस मिथ्यात्वके सद्भावमें ग्यारह अङ्ग और नौ पूर्वका तथा बाह्यमें मुनिधर्मका पालन करनेवाला भी नव ग्रैवेयकसे ऊपर नहीं जा सकता। अनन्तबार मुनि लिङ्ग धारण करके भी इसी संसारमें रुलता रहता है।

मिथ्यात्वका निवचन भी सम्यक्त्वकी तरह ही दुर्लभ है,

क्योंकि ज्ञानगुणके विना जितने अन्य गुण हैं वे सब निर्विकल्पक हैं। ज्ञान ही आत्मामें एक ऐसी शक्ति है कि जो सबकी व्यवस्था बनाये है—यही एक ऐसा गुण है जो परकी भी व्यवस्था करता है और अपनी भी। मिथ्यात्वके कार्य जो अतत्त्वश्रद्धानादिक हैं वे सब ज्ञानकी पर्याय हैं। वास्तवमें मिथ्यात्व क्या है? यह मति श्रुत ज्ञानके गम्य नहीं। उसके कार्यसे ही उसका अनुमान किया जाता है। जैसे वातरोगसे शरीरकी सन्धि-सन्धिमें वेदना होती है। उस वेदनासे हम अनुमान करते हैं कि हमारे वातरोग है। वातरोगका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। ऐसे ही कुगुरु कुदेव और कुधर्मके माननेका जो हमारा परिणाम होता है उससे मिथ्यात्वका अनुमान होता है। वास्तवमें उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। अथवा शरीरमें जो अहम्बुद्धि होती है वह मिथ्यात्व के उदयमें होती है अतः उस अहम्बुद्धिसे मिथ्यात्वका अनुभव होता है। वस्तुतः उसका प्रत्यक्ष नहीं होता, क्योंकि वह गुण निर्विकल्पक है। इस तरह यह परिग्रह आत्माके सम्पूर्ण परिग्रहोंका मूल है। जबतक इसका त्याग नहीं तबतक आत्मा संसारका ही पात्र रहता है। इसके जानेसे ही आत्मा मोक्षमार्गके पथपर चलनेका अधिकारी हो सकता है। जबतक सम्यग्दर्शन न हो तबतक यह जीव न तो गृहस्थ धर्मका अधिकारी हो सकता है और न ऋषिधर्म का। ऊपरसे चाहे गृहस्थ रहे, चाहे मुनिवेष धारण कर ले, कौन रोक सकता है।

जन्मसे शरीर नग्न ही होता है अनन्तर जिस वातावरणमें इसका पालन होता है तद्रूप इसका परिणमन हो जाता है। देखा गया है कि राजाओंके यहाँ जो बालक होते हैं उनको घाम और शीतसे बचानेके लिए बड़े-बड़े उपाय किये जाते हैं। उनके भोजनादिकी व्यवस्थाके लिए हजारों रुपये व्यय किये जाते हैं। उनको जरा-सी शीत बाधा हो जानेपर बड़े-बड़े वैद्यों व डाक्टरों

की आपत्ति आ जाती है। वही बालक यदि गरीबके गृहमें जन्म लेता है तो दिन-दिन भर सरदी और गरमीमें पड़ा रहता है फिर भी राजबालककी अपेक्षा कहीं अधिक हृष्ट पुष्ट रहता है। प्राकृतिक शीत और उष्ण उसके शरीरकी वृद्धिमें सहायक होते हैं। यदि कभी उसे जूडो-सरदी सताती है तो लौंग घिसकर पिला देना ही उसकी नीरोगताका साधक हो जाता है। जो जो वस्तुजात धनाढ्योंके बालकोंको अपकारक समझे जाते हैं। वही वस्तुजात निर्धनोंके बालकोंके सहायक देखे जाते हैं। जगत्की रीति ऐसी विलक्षण है कि जिसके पास कुछ पैसा हुआ लोग उसे पुण्यशाली पुरुष कहने लगते हैं, क्योंकि उनके द्वारा सामान्य मनुष्योंको कुछ सहायता मिलती है और वह इसलिये मिलती है कि सामान्य मनुष्य उन धनाढ्योंकी असत् प्रशंसा करें। यह लोग जो कि धनाढ्यों द्वारा द्रव्यादि पाकर पुष्ट होते हैं चारण लोगोंका कार्य करते हैं। यदि यह न हो तो उनकी पोल खुल जावे। बड़े-बड़े प्रतिभाशाली कविराज जरा-सी द्रव्य पानेके लिये ऐसे ऐसे वर्णन करते हैं कि साधारणसे साधारण धनाढ्यको इन्द्र, धनकुबेर तथा दानवीर, कर्ण आदि कहनेमें भी नहीं चूकते! यद्यपि वह धनाढ्य लोग उन्हें धन नहीं देना चाहते तथापि अपने ऐबों-दोषोंको छिपानेके लिये लाखों रुपये दे डालते हैं। उत्तम तो यह था कि कवियोंकी प्रतिभाका सदुपयोग कर स्वात्माकी परिणतिको निर्म्मल बनानेकी चेष्टा करते परन्तु चन्द चांदीके टुकड़ोंके लोभसे लालायित होकर अपनी अलौकिक प्रतिभा विक्रय कर देते हैं। ज्ञान प्राप्तिका फल तो यह होना उचित था कि संसारके कार्योंसे विरक्त होते पर वह तो दूर रहा, केवल लोभके वशीभूत होकर आत्माको बाह्य पदार्थोंका अनुरागी बना लेते हैं। अस्तु,

मिथ्यात्व परिग्रहका अभाव हो जानेपर भी यद्यपि परिग्रह-

का सद्भाव रहता है तथापि उसमें इसकी निजत्व कल्पना मिट जाती है, अतः सब परिग्रहोंका मूल मिथ्यात्व ही है। जिन्हें संसार वन्धनसे छूटनेकी अभिलाषा है उन्हें सर्व प्रथम इसीका त्याग करना चाहिए, क्योंकि इसका त्याग करनेसे सब पदार्थोंका त्याग सुलभ हो जाता है।

•

३

सम्यग्दर्शन

सम्यग्दर्शनका अर्थ आत्मलब्धि है। आत्माके स्वरूपका ठीक-ठीक बोध हो जाना आत्मलब्धि कहलाती है। आत्मलब्धि के सामने सब सुख धूल है। सम्यग्दर्शन आत्माका महान् गुण है। इसीसे आचार्योंने सबसे पहले उपदेश दिया—"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है।" आचार्यकी करुणा बुद्धि तो देखो, मोक्ष तब हो जब कि पहले बन्ध हो। यहाँ पहले बन्धका मार्ग बतलाना था फिर मोक्षका, परन्तु उन्होंने मोक्ष-मार्गका पहले वर्णन इसीलिए किया है कि ये प्राणी अनादि कालसे बन्धजनित दुःखका अनुभव करते-करते घबड़ा गये हैं, अतः पहले उन्हें मोक्षका मार्ग बतलाना चाहिये। जैसे कोई कारागारमें पड़कर दुखी होता है, वह यह नहीं जानना चाहता कि मैं कारागारमें क्यों पड़ा? वह तो यह जानना चाहता है कि मैं इस कारागारसे कैसे छूटूँ? यही सोचकर आचार्यने पहले मोक्षका मार्ग बतलाया है।

सम्यग्दर्शनके रहनेसे विवेक-शक्ति सदा जागृत रहती है,

वह विपत्तिमें पड़ने पर भी कभी न्यायको नहीं छोड़ता। रामचन्द्रजी सीताको छुड़ानेके लिये लङ्का गये थे। लङ्काके चारों ओर उनका कटक पड़ा था। हनुमान आदिने रामचन्द्र जीको खबर दी कि रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है, यदि उसे विद्या सिद्ध हो गई तो फिर वह अजेय हो जायगा। आज्ञा दीजिये जिससे कि हम लोग उसकी विद्याकी सिद्धिमें विघ्न डालें।

रामचन्द्रजीने कहा—"हम क्षत्रिय हैं, कोई धर्म करे और हम उसमें विघ्न डालें, यह हमारा कर्तव्य नहीं है।"

हनुमानने कहा—"सीता फिर दुर्लभ हो जायँगी।"

रामचन्द्रजीने जोरदार शब्दोंमें उत्तर दिया—"एक सीता नहीं दशों सीताएँ दुर्लभ हो जायें, पर मैं अन्याय करनेकी आज्ञा नहीं दे सकता।"

रामचन्द्रजीमें इतना विवेक था, उसका कारण उनका विशुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन था।

सीताको तीर्थ-यात्राके बहाने कृतान्तवक्र सेनापति जङ्गलमें छोड़ने गया, उसका हृदय वैसा करना चाहता था क्या ? नहीं, वह स्वामीकी आज्ञा परतन्त्रतासे गया था। उस समय कृतान्त-वक्रको अपनी पराधीनता काफी खली थी। जब वह निर्दोष सीताको जङ्गलमें छोड़ अपने अपराधको क्षमा माँग वापस आने लगता है तब सीताजी उससे कहती हैं—"सेनापति ! मेरा एक सन्देश उनसे कह देना। वह यह कि जिस प्रकार लोकाप्रवादके भयसे आपने मुझे त्यागा, इस प्रकार लोकापवादके भयसे धर्म को न छोड़ देना।"

उस निराश्रित अपमानित दशामें भी उन्हें इतना विवेक बना रहा। इसका कारण क्या था ? उनका सम्यग्दर्शन। आज कलकी स्त्री होती तो पचास गालियाँ सुनाती और अपने

समानताके अधिकार बतलाती। इतना ही नहीं, सीताजी जब नारदजीके आयोजन द्वारा व कुशलके साथ अयोध्या वापस आती हैं, एक वीरतापूर्ण युद्धके बाद पिता-पुत्रका मिलाप होता है, सीताजी लज्जासे भरी हुई राजदरबारमें पहुँचती हैं, उन्हें देखकर रामचन्द्रजी कह उठते हैं—"तुम विना शपथ दिये, विना परीक्षा दिये यहाँ कहाँ ?"

सीताने विवेक और धैर्यके साथ उत्तर दिया—"मैं समझी थी कि आपका हृदय कोमल है पर क्या कहूँ ? आप मेरी जिस प्रकार चाहें शपथ लें।"

रामचन्द्रजीने कहा—"अग्निमें कूदकर अपनी सचाईकी परीक्षा दो।"

बड़े भारी जलते हुए अग्निकुण्डमें सीताजी कूदनेको तैयार हुई। रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे कहते हैं कि सीता जल न जाय।"

लक्ष्मणजीने कुछ रोषपूर्ण शब्दोंमें उत्तर दिया—"यह आज्ञा देते समय नहीं सोचा ? वह सती हैं, निर्दोष हैं, आज आप उनके अखण्ड शीलकी महिमा देखिये।"

उसी समय दो देव केवलीकी वन्दनासे लौट रहे थे, उनका ध्यान सीताजीका उपसर्ग दूर करनेकी ओर गया। सीताजी अग्निकुण्ड में कूद पड़ीं, कूदते ही सारा अग्निकुण्ड जलकुण्ड बन गया ! लहलहाता कोमल कमल सीताजीके लिए सिंहासन बन गया। पुष्पवृष्टिके साथ "जय सीते ! जय सीते !" के नादसे आकाश गूँज उठा ! उपस्थित प्रजाजनके साथ राजा रामके भी हाथ स्वयं जुड़ गये, आँखोंसे आनन्दके अश्रु बरस उठे, गद्गद् कण्ठसे एकाएक कह उठे—"धर्मकी सदा विजय होती है, शील व्रतकी महिमा अपार है।"

रामचन्द्रजीके अविचारित वचन सुनकर सीताजीको

संसारसे वैराग्य हो चुका था, पर "निःशल्यो व्रती" व्रती को निःशल्य होना चाहिये। इसीलिए उन्होंने दीक्षा लेनेसे पहले परीक्षा देना आवश्यक समझा था। परीक्षामें वह पास हो गईं।

रामचन्द्रजीने उनसे कहा—"देवि! घर चलो, अब तक हमारा स्नेह हृदयमें था पर लोक-लाजके कारण आँखोंमें आ गया है।"

सीताजीने नीरस स्वरमें कहा—"नाथ! यह संसार दुःख-रूपी वृक्षकी जड़ है, अब मैं इसमें न रहूँगी। सच्चा सुख इसके त्यागमें ही है।"

रामचन्द्रजीने बहुत कुछ कहा—"यदि मैं अपराधी हूँ तो लक्ष्मणकी ओर देखो, यदि यह भी अपराधी है तो अपने बच्चों लव-कुशकी ओर देखो और एक बार पुनः घरमें प्रवेश करो।" पर सीताजी अपनी दृढ़तासे च्युत नहीं हुईं। उन्होंने उसी समय केश उखाड़कर रामचन्द्रजीके सामने फेंक दिये और जंगलमें जाकर आर्या हो गईं। यह सब काम सम्यग्दर्शनका है, यदि उन्हें अपने आत्मबलपर विश्वास न होता तो वह क्या यह सब कार्य कर सकती थीं? कदापि नहीं!

अब रामचन्द्रजीका विवेक देखिये जो रामचन्द्र सीताके पीछे पागल हो रहे थे, वृक्षोंसे पूछते थे कि क्या तुमने मेरी सीता देखी है? वही जब तपश्चर्यामें लीन थे सीताके जीव प्रतीन्द्रने कितने उपसर्ग किये पर वह अपने ध्यानसे विच-लित नहीं हुए। शुक्ल ध्यान धारणकर केवली अवस्थाको प्राप्त हुए।

सम्यग्दर्शनसे आत्मामें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण प्रकट होते हैं जो सम्यग्दर्शनके अविनाभावी हैं। यदि आपमें यह गुण प्रकट हुए हैं तो समझ लो कि

हम सम्यग्दृष्टि हैं। कोई क्या बतलायगा कि तुम सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि। अप्रत्याख्यानावरण कषायका संस्कार छह माहसे ज्यादा नहीं चलता। यदि आपको किसीसे लड़ाई होने पर छह माहके बाद तक बदला लेनेकी भावना रहती है तो समझ लो अभी हम मिथ्यादृष्टि हैं। कषायके असंख्यात लोक प्रमाण स्थान हैं उनमें मनका स्वरूप यों ही शिथिल हो जाना प्रशम गुण है। मिथ्यादृष्टि अवस्थाके समय इस जीवको विषय कषायमें जैसी स्वच्छन्द प्रवृत्ति होती है वैसी सम्यग्दर्शन होने पर नहीं होती। यह दूसरी बात है कि चरित्रमोहके उदयसे वह उसे छोड़ नहीं सकता हो पर प्रवृत्तिमें शैथिल्य अवश्य आ जाता है।

प्रशमका एक अर्थ यह भी है जो पूर्वकी अपेक्षा अधिक ग्राह्य है—"सद्यः कृतापराधी जीवोंपर भी रोष उत्पन्न नहीं होना" प्रशम कहलाता है। वहुरूपिणी विद्या सिद्ध करते समय रामचन्द्रजीने रावण पर जो रोष नहीं किया था वह इसका उत्तम उदाहरण है।

प्रशम गुण तब तक नहीं हो सकता जबतक अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी क्रोध विद्यमान है। उसके छूटते ही प्रशम गुण प्रकट हो जाता है। क्रोध ही क्या अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी मान माया लोभ—सभी कषाय प्रशम गुणके घातक हैं।

संसार और संसारके कारणोंसे भीत होना ही संवेग है। जिसके संवेग गुण प्रकट हो जाता है वह सदा आत्मामें विकारके कारणभूत पदार्थोंसे जुदा होनेके लिए छटपटाता रहता है।

सब जीवोंमें मैत्री भावका होना ही अनुकम्पा है। सम्यग्दृष्टि जीव सब जीवोंको समान शक्तिका भारी अनुभव करता है। वह जानता है कि संसारमें जीवकी जो विविध अव-

स्थाएँ हो रही हैं उनका कारण कर्म है, इसलिए वह किसीको नीचा-ऊँचा नहीं मानता वह सबमें समभाव धारण करता है।

संसार, संसारके कारण, आत्मा और परमात्मा आदिमें आस्तिक्य भावका होना ही आस्तिक्य गुण है। यह गुण भी सम्यग्दृष्टिके ही प्रकट होता है, इसके बिना पूर्ण स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए उद्योग कर सकना असम्भव है।

ये ऐसे गुण हैं जो सम्यग्दर्शनके सहचारी हैं और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषायके अभावमें होते है।

●

४

रामबाण औषधियाँ

१. सबसे उत्तम औषधि मनकी शुद्धता है, दूसरी औषधि ब्रह्मचर्यकी रक्षा है, तीसरी औषधि शुद्ध भोजन है।

२. यदि भवभ्रमण रोगसे बचना चाहो तो सब औषधियोंके विकल्प जालको छोड़ ऐसी भावना भाओ कि यह पर्याय विजातीय दो द्रव्योंके सम्बन्धसे निष्पन्न हुई है फिर भी परिणमन दो द्रव्योंका पृथक्-पृथक् ही है। सुधाहरिद्रावत् एक रंग नहीं हो गया, अतः जो भी परिणमन इन्द्रिय गोचर है वह पौद्गलिक ही है। इसमें सन्देह नहीं कि हम मोही जीव शरीरकी व्याधिका आत्मामें अवबोध होनेसे उसे अपना मान लेते हैं, यही ममकार संसारका विधाता है।

३. कभी अपने आपको रोगी मत समझो। जो कुछ चारित्रमोहसे अनुभूति क्रिया हो उसके कर्ता मत बनो। उसकी निन्दा करते हुए उसे मोहकी महिमा जानकर नाश करनेका सतत प्रयत्न करते रहो।

४. जन्म भर स्वाध्याय करनेवाला अपनेको रोगी समझ सबकी तरह विलापादिक करे यह शोभास्पद नहीं। होना यह चाहिये कि अपनेको सनत्कुमार चक्रवर्तीकी तरह दृढ़ बनाओ। "व्याधिका मन्दिर शरीर है न कि आत्मा" ऐसी श्रद्धा करते हुए राग-द्वेषके त्यागरूप महामन्त्रका निरन्तर स्मरण करो यही सच्ची और अनुभूत रामबाण औषधि है।

५. वास्तवमें शारीरिक रोग दुःखदायी नहीं। हमारा शरीर-के साथ जो ममत्वभाव है वही वेदनाकी मूल जड़ है। इसके दूर करनेके अनेक उपाय हैं, पर दो उपाय अत्युत्तम हैं—

१—एकत्व भावना (जीव अकेला आया, अकेला जायगा)

२—अन्यत्व भावना (अन्य पदार्थ मुझसे भिन्न हैं)

इनमें एक तो विधिरूप है और दूसरा निषेधरूप है। वास्तवमें विधि और निषेधका परिचय हो जाना ही सम्यक्-बोध है।

६. जिसको हमने पर्याय भर रोग जाना और जिसके लिये दुनियाँके वैद्य और हकीमोंको नब्ज दिखाया। उनके लिखे बने या पिसे पदार्थोंका सेवन किया और कर रहे हैं, वह वास्तव रोग नहीं है। जो रोग है उसको न जाना और न जाननेकी चेष्टा की और न उस रोगके वैद्यों द्वारा निर्दिष्ट रामबाण औषधिका प्रयोग किया। उस रोगके मिट जानेसे यह रोग सहज ही मिट जाता है। वह रोग है राग और उसके सद्वैद्य हैं वीतराग जिन। उनकी बताई औषधि हैं १ समता, २ पर-पदार्थोंसे ममत्वका त्याग और ३ तत्त्वज्ञान। यदि इस त्रिफलको शान्तिरसके साथ सेवन कर कषाय जैसी कटु और मोह जैसी खट्टी वस्तुओंका परहेज किया जाय तो इससे बढ़कर रामबाण औषधि और कोई नहीं हो सकती।

७. राग रोग मिटानेकी यही सच्ची रामबाण औषधि है

कि—प्रत्येक विषय जो शान्तिके बाधक हैं उनका परित्याग करो चित्तसे उनका विकल्प मेंटो, सब जीवोंके साथ अन्तरङ्गसे मैत्रीभाव करो और प्रत्येक प्राणीके साथ अपने आत्माके सदृश व्यवहार करो।

८. आत्माको असन्मार्गसे रक्षित रखना, यही संसार रोग दूर करनेकी रामबाण औषधि है।

९. परिग्रह ही सब पापोंका कारण हैं, इसकी कृशता ही रागादिकके अभावमें रामबाण औषधि है।

१० सच्ची औषधि परमात्माका स्मरण है। इससे बड़ी कोई रामबाण औषधि नहीं है।

गागरमें सागर

[सर्वसाधारण के लिये]

•

जिनेन्द्र कुमार जैन

गागर में सागर

इस भव वनके मध्यमें जिन विन जाने जीव।
भ्रमण यातना सहनकर पाते दुःख अतीव ॥१॥
सर्वहितङ्कर ज्ञानमय कर्मचक्र से दूर।
आत्म लाभके हेतु तस चरण नमूं हत क्रूर ॥२॥

आत्मज्ञान

कब आवे वह शुभग दिन जा दिन होवे सूझ।
पर पदार्थको भिन्न लख होवे अपनी बूझ ॥३॥
जो कुछ है सो आपमें देखो हिये विचार।
दर्पण परछाहीं लखत श्वानहिं दुःख अपार ॥४॥
आतम आतम रटनसे नहिं पावहिं भव पार।
भोजनकी कथनी किये मिटे भूख क्या यार ॥५॥
यह भवसागर अगम है नाहीं इसका पार।
आप सम्हाले सहज ही नैया होगी पार ॥६॥
केवल वस्तु स्वभाव जो सो है आतम भाव।
आत्मभाव जाने बिना नहिं आवे निज दाव ॥७॥
ठीक दाव आये बिना होय न जिनका लाभ।
केवल पांसा फेंकते नहिं पौ बारह लाभ ॥८॥
जिसने छोड़ा आपको वह जगमें मति हीन।
घर घर माँगे भीखको बोल बचन अति दीन ॥९॥
आत्म ज्ञान पाये बिना भ्रमत सकल संसार।
इसके होते ही तरे भव दुख पारावार ॥१०॥

जो कुछ चाहो आत्मा ! सर्व सुलभ जग बीच।
स्वर्ग नरक सब मिलत है भावहिं ऊँचरु नीच ॥११॥

आज घड़ी दिन शुभ भई पायो निज गुण धाम।
मनकी चिन्ता मिट गई घटहिं विराजे राम ॥१२॥

ज्ञान

ज्ञान बराबर तप नहीं जो होवे निर्दोष।
नहीं ढोलकी पोल है पड़े रहो दुख कोष ॥१३॥

जो सुजान जाने नहीं आपा परका भेद।
ज्ञान न उसका कर सके भव वनका विच्छेद ॥१४॥

सर्व द्रव्य निज भावमें रमते एकहि रूप।
याही तत्त्व प्रसादसे जीव होत शिव भूप ॥१५॥

भेद ज्ञान महिमा अगम वचन गम्य नहिं होय।
दूध स्वाद आवे नहीं पीते मीठा तोय ॥१६॥

दृढ़ता और सदाचार

दृढ़ताको धारण करहु तज दो खोटी चाल।
बिना नाम भगवानके काटो भवका जाल ॥१७॥

सुखकी कुञ्जी

जगमें जो चाहो भला तजो आदतें चार।
हिंसा चोरी झूठ पुन और पराई नार ॥१८॥

जो सुख चाहत हो जिया ! तब दो बातें चार।
पर नारी पर चूगली परधन और लबार ॥१९॥

गरीबी

दीन लखे सुख सबनको दीनहिं लखे न कोय।
भली विचारे दीनता नर हु देवता होय ॥२०॥

आपत्ति

विपत्ति भली ही मानिये भले दुखी हो गात।
धैर्य धर्म तिय मित्र ये चारउ परखे जात ॥२१॥

नम्रता

ऊँचे पानी न टिके नीचे ही ठहराय।
नीचे हो जी भर पियै ऊँचा प्यासा जाय ॥२२॥

भूलने योग्य भूल

भव बन्धनका मूल है अपनी ही वह भूल।
याके जाते ही मिटे सभी जगतका शूल ॥२३॥

हम चाहत सब इष्ट हो उदय करत कछु और।
चाहत हैं स्वातन्त्र्यको परे पराई पौर ॥२४॥

सङ्कोच

हाँ में हाँ न मिलाइये कीजे तत्त्व विचार।
एकाकी लख आत्मा हो जावो भव पार ॥२५॥

इष्ट मित्र संकोच वश करो न सत्पथ घात।
नहिं तो वसु नृपसी दशा अन्तिम होगी तात ॥२६॥

राग

भवदधि कारण राग है ताहि मित्र ! निरवार ।
या विन सब करनी किये अन्त न हो संसार ॥२७॥

राग द्वेष मय आत्मा धारत है बहु वेष ।
तिनमें निजको मानकर सहता दुःख अशेष ॥२८॥

जगमें वैरी दोय हैं एक राग अरु दोष ।
इनहींके व्यापार तें नहिं मिलता सन्तोष ॥२९॥

मोह

आदि अन्त बिन बोध युत मोह सहित दुख रूप ।
मोह नाश कर हो गया निर्मल शिवका भूप ॥३०॥

किसको अन्धा नहिं किया मोह जगतके बीच ।
किसे नचाया नाच नहिं कामदेव दुठ नीच ॥३१॥

जगमें साथी दोय हैं आतम अरु परमात्म ।
और कल्पना है सभी मोह जनक तादात्म ॥३२॥

'एकोऽहं' की रटनसे एक होय नहिं भाव ।
मोह भावके नाशसे रहे न दूजा भाव ॥३३॥

मंगलमय मूरति नहीं जड़ मन्दिरके माँहिं ।
मोही जीवोंको समझ जानत नहिं घट माँहि ॥३४॥

परिग्रह

परिग्रह दुखकी खान है चैन न इसमें लेश ।
इसके वशमें हैं सभी ब्रह्मा विष्णु महेश ॥३५॥

लोभ

ज्ञानी तापस शूर कवि कोविद गुण आगार।
केहिके लोभ विडम्बना कीन्ह न इह संसार ॥३६॥

सन्तोषी जीवन

इक रोटी अपनी भली चाहे जैसी होय।
ताजी बासी मुरमुरी रूखी सूखी कोय ॥३७॥
एक वसन तन ढकनको नया पुराना कोय।
एक उसारा रहनको जहाँ निर्भय रहु सोय ॥३८॥
राजपाटके ठाठसे बढ़कर समझे ताहि।
शीलवान सन्तोषयुत जो ज्ञानी जग माँहि ॥३९॥